अस्सियोत्तर कहानियों में अवाम की संघर्ष चेतना

(ASSIYOTTAR KAHAANIYOM MEIN AVAAM KI SANGHARSH CHETANA)

thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

for the award of the degree

of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

जोयिस टोम

JOYICE TOM

Supervising Teacher

Prof. (Dr) M. Shanmughan

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

Cochin-682002

January-2011

Certificate

*This is to certify that this is a bonafide record of research work carried out by **Mr. Joyice Tom,** under my supervision for Ph.D degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university*

Dr. M. Shanmughan
Supervising Teacher

Dept. of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Cochin-682022

Place *Cochin*
Date 24-1-2011

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of **Dr. M. Shanmughan,** Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin-682022, and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university.

Joyice Tom

Dept. of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Cochin-682022

Place Cochin
Date 27/1/11

पुरोवाक

भारतीय सन्दर्भ काफी कलुषित है । सब कहीं दंगा-फसाद, भीषण मार-काट, बमबारी एवं विघटनवाद है । बारी-बारी में आये विभिन्न सरकारों के भ्रष्टाचार तथा जनविरोधी तानाशाही है । भूमण्डलीकरण के नये माहौल में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दलाली नेतृत्व की नकाब उतर चुकी है । कालाधन एवं दलाली का धन संसद की दीवारों के भीतर ही कहीं चुप्पा-चुप्पी खेलने लगे हैं और सबसे ज्यादा खून अब संसद की सीढियों से उतर कर बह रही है । राजनीति वाकई रक्तनीति बन गयी हैं और प्रजातंत्र एक वागा विहीन वागाडंबर, जिसकी शोभायात्रा में अवाम की तरापा कहीं गुमशुदा है ।

जनता के मूँह पर चाहे ताला लग गया हो, उसकी उदासीन निगाहों ने सब कुछ देखा है। उम्मीदों के टूटने के दर्द को धीरज से झेला है । खुदपरस्ती का पहला पाठ जनता ने अपने नेताओं से सीखा होगा । फलस्वरूप समाज में व्यक्ति अकेला होने लगा । उसे अपनी अस्मिता के सामने प्रश्न चिह्न दिखने लगा । वह समाज में अपनी विरासत को ढूँढने लगा । अपनी विशालकाय सामाजिक अहमियत को छोड़ ऐसे छोटे-छोटे समूहों की खोज करने लगा जिसे वह पहचानता है और जिसमें वह पहचाना जाता है । नतीजतन बहुजन समाज फुटकल टापुओं में बिखरने लगा, जिनके सामने सच्चाई एवं अधिकार भी एकतरफा हैं । यह माहौल साम्प्रदायिकता एवं प्रांतीयता की नाज़ुक चिंगारियों को अनुकूल बयार समान महसूस हुआ । नतीजतन दूसरे सिरे से साम्प्रदायिक दंगे, मार-काट, बारी-बारी में भारत के सीने पर बम विस्फ़ोट !

समकालीन भारतीय समाज वाकई टापुओं का गुच्छा है, जिसको बन्धाये गये प्रशासन की नाज़ुक तनी डोर कभी भी, कहीं भी नफरत की आग में जल-भुनकर राख हो सकती है । खालिस्थान, गोरखालैंड, तेलुंगाना, कश्मीर, भारत की संवैधानिक एकता बिखराव के कगार पर है । चाहे अनचाहे व्यक्ति पर अस्मिताएँ थोपी जा रही हैं । खून के रंग को जहाँ नज़रन्दाज़ ही किया जाता है, उधर खून के ढंग की वरीयता प्रामाणित होती है । उसके अनुसार कोई सवर्ण, कोई दलित, कोई आर्य, कोई अनार्य, कोई द्रविड, कोई हिन्दू,

कोई मुसलमान बनाई जाती है । नारी को कला में भी अपना अपमान दिखने लगा है और कलाकार देशनिकाला हो जाता है । अल्लाह के बन्दों को खुदा का तौहीन नागवार है । ईस्वर की संतानों को भगवान का अपमान असह्य है । मगर इनसान की कदरदानी दोनों को घट्टी खीर है । काटो तो खून बहता ज़रूर है और खून कभी यह देखकर नहीं बहा है कि माथे पर तिलक है या टोपी और बम कभी यह देखकर नहीं फ़टा है कि मूँह में खुदा है या राम !

लड़ाई चाहे जिसकी भी हो,बदला आखिर किसकी भी हो मरता ज़रूर अवाम ही है । हर किसी की गलती का मोल चुकाता भला अवाम ही है । सत्ता की जनविरोधी शासन की कीमत चुकाता अवाम। अखबारों के भीतरी पन्नों में कैद होकर दम घुटता बेनाम अवाम । राजनीती के विज्ञापन बनता बेहूदा, बेमोल, बेज़ुबान, मेहनतकश अवाम, जो हर कहीं है लेकिन सत्ता से दूर । समाज में उसकी दशा इस कदर घृणास्पद है कि मानो अवाम पर नज़र पडना ही क्या, स्वयं अवाम महसूस करना भी गुनाह है । वह हाशिये की ज़िन्दगी गुज़ारने केलिये मजबूर है ।

जाहिर है कि मौजूदा समाज विविधता ग्रसित है और इतना विविध है कि उसे अपनी समग्रता में देखना और समझना बमुश्किल काम है । कदाचित साहित्य में भी विषयपरक विविधता की यही वजह है, और वजह वाजिब भी । हालाँकि साहित्य में दलित, नारी, किसान, मज़दूर जैसे विभजनों का मूल उद्देश्य साहित्य को, उसके मानिन्द समाज को समग्रता से पहचानना है, न कि एक दूसरे के बरक्स खड़ा करना । लेकिन वक्त तो बिखराव का है ही । इसलिये शंकित हूँ कि कही ना कहीं साहित्य उस मूल उद्देश्य से चूक तो नहीं गया है । विभजनों के घने पहियों के नीचे फंसकर बेपनाह अवाम रौंदा तो नहीं जा रहा है । समाज की तरफ सहित्य में भी वह वाकई हाशिये-नसीब तो नहीं हो रहा है । इसलिये वर्गपरक,वर्णपरक, लिंगपरक जैसे अनेकों अस्मिताओं में विभजित मेहनतकश अवाम के संघर्षों में छिपी बुनियादी एकता को परखना अनिवार्य बन गया है । यह शोध-प्रबन्ध उसके लिये एक सरल प्रयास है । मैं ने इसका शीर्षक **'अस्सियोत्तर कहानियों में अवाम की संघर्ष**

चेतना' रखा है । अध्ययन की सुविधा केलिये यह पाँच अध्यायों में विभजित है । अंत में उपसंहार है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का पहला अध्याय है-**अवाम की संघर्ष चेतना सैद्धांतिक एवं ऐतिहासिक सर्वेक्षण** । यह अध्याय दो खंडों में विभजित है जैसे 'अवाम की संघर्ष चेतना ऐतिहासिक सर्वेक्षण तथा अस्सियोत्तर भारतीय परिवेश का परिदर्शन । पहले खंड में अवाम की परिकल्पना,अवाम की संघर्ष चेतना में कार्यरत दर्शन जैसे मार्क्सवाद, अम्बेदकरवाद, नारीवाद आदि की संकल्पनाओं को प्रस्तुत किया है । अवाम को संघर्ष करने की चेतना प्रदान करने में इन दर्शनों की भूमिका पर विचार किया गया है । इस खंड में आगे अस्सी-पूर्व की कहानियों में चित्रित अवाम का तथा प्रतिकूल वातावरण में उनके संघर्ष या प्रतिक्रिया के अन्दाज़ों को एकत्रित किया गया है । इसमें प्रेमचन्द, यश्पाल, फणीस्वरनाथ रेणु, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, अमरकांत, शेखर जोशी आदि लेखकों की चर्चित कहानियों को परखा गया है ।

दूसरे खण्ड में अस्सियोत्तर सामाजिक,राजनैतिक,आर्थिक तथा धार्मिक पहलुओं को एकत्रित किया गया है । भारत की संवैधानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एकता को ठेस पहूँचाते हुए सांप्रदायिक दंगे,भ्रष्टाचार,विघटनवाद आदि की अनेक मिसाल सामने आयी । इस खंड में प्रमुख घटनाएँ एकजुट हैं ।

दूसरा अध्याय है-**किसान व मज़दूरों का संघर्ष** । इस अध्याय में किसान तथा मज़दूरों के संघर्ष पर केन्द्रित कहानियों पर विचार किया गया है । किसानों का संघर्ष, कारखाना मज़दूरों का संघर्ष, दिहाडी मज़दूर, घरेलू नौकर, कूडा-कचरा बीनने वाले लोग, सामान-सब्जी वगैरह बेचने वाले, रिक्षा चालक आदि मेहनतकश अवाम के संघर्ष भरी ज़िन्दगी का अध्ययन अलग से हुआ है ।

तीसरा अध्याय दलित समस्या पर केन्द्रित है । इसका शीर्षक **'अस्सियोत्तर कहानियों में दलित संघर्ष'** रखा गया है । इस अध्याय में कहानियों में चित्रित दलित संघर्षों पर विचार

किया गया है । दलित कहानियाँ दलित चेतना का निदर्शन हैं । ये सचेत दलित मन की कामनाओं का अंकन करती हैं । यह अध्याय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, शारीरिक व मानसिक आदि बुनियादी स्तरों में दलित संघर्ष को परखने की कोशिश है ।

चौथा अध्याय नारी समस्या पर केन्द्रित है । इसका **'अस्सियोत्तर कहानियों में नारी का संघर्ष'** है । दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ नारी का शोषण नहीं होता । लेकिन इस अध्याय में निम्न मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय नारियों पर केन्द्रित कहानियों को ही चुन लिया गया है, जो अवाम की परिकल्पना के अंतर्गत आती हैं । नारी समाज वर्गपरक, जातिपरक, लिंगपरक आदि तीनों प्रकार से शोषित है । अस्सियोत्तर परिवेश में संघर्षरत नारी जीवन की कई मिसाल विद्यमान है । यह अध्याय उनके बहुस्तरीय संघर्ष का अध्ययन है । परम्परा एवं रूढियों के खिलाफ संघर्ष, पुरुषवर्चस्विता के खिलाफ संघर्ष, यौन शोषण के खिलाफ संघर्ष, परिवार में संघर्षरत औरत, भ्रष्टाचार के खिलाफ नारी का संघर्ष, भूख से संत्रस्त नारी मन का संघर्ष आदि शीर्षकों में यह विभक्त है ।

पाँचवाँ अध्याय है- **संघर्ष के कुछ और आयाम** । इस अध्याय में ऐसे कुछ प्रसंगों को जोड़ा गया है, जिनकी अवाम के परिप्रेक्ष्य में खासियत है जैसे विस्थापन,वृद्धजन समस्या,शिक्षित युवा पीढ़ी का संघर्ष, बच्चों का संघर्ष आदि ।

उपसंहार में प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों को संक्षेप में एकत्रित किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो. एम.षण्मुखन के निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है । उनकी प्रेरणा से ही यह कार्य संपन्न हुआ है । उन्होंने मुझे अपने अधीन शिक्षा पाने का सुअवसर दिया । मुझे बेटा समान पहचाना । मुझे लिखना सिखाया और वक्त बे वक्त मेरी गलतियों को सुधारने का जोखिम उठाया । मेरे शोधकार्य को सफल बनाने केलिये उनकी सारी कोशिशों के सामने मैं नतमस्त हूँ ।

मेरे इस शोध कार्य के विषय विशेषज्ञ डॉ. के. वनजा जी के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मेरे शोध कार्य को सही दिशा निर्देशन करने में वे हमेशा सजग रही हैं। उनके नेह का में हमेशा पात्र रहा हूँ और आगे भी उसका उम्मीदमन्द हूँ।

शंकित हूँ कि हिन्दी विभागाध्यक्ष मोहनन जी के प्रति कृतज्ञता कैसे अदा करूँ। वे मेरी प्रेरणा हैं, मेरा बल हैं।

विभाग के अन्य अध्यापकों के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने मेरी काफी मदद की है।

हिन्दी विभाग के और यहाँ के पुस्तकालय के कर्मचारियों को भी में धन्यवाद अदा करता हूँ, जिन्होंने इस शोधकार्य को सुगम बनाने के लिये काफी सहयोग दिया है।

अपने प्रिय मित्रों के प्रति मैं आभार हूँ। उन्होंने मुझे हमेशा हौसला दिलाया है।

निर्मला कॉलेज मुवाट्टुपुषा के अध्यापक प्रिय विश्वनाथन जी एवं अन्य गुरुजनों को भी इस शुभ अवसर पर याद कर रहा हूँ, जिन्होंने भाषा एवं साहित्य की तरफ मेरी रुची बढ़ायी है।

मेरे स्वर्गीय पिताजी के अलावा माताजी, भाई, बहन एवं बहनोई, नाना और नानी का भी मैं स्मरण कर रहा हूँ।

मैं यह शोध-प्रबन्ध विद्वानों के सामने सविनय प्रस्तुत कर रहा हूँ। अनजाने आ गई कमियों तथा गलतियों केलिये क्षमाप्रार्थी हूँ।

सविनय

जोयिस टोम

हिन्दी विभाग
कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिक विस्वविद्यालय
कोच्ची-22
तारीख :

विषय सूची

पहला अध्याय

अवाम की संघर्ष चेतना: सैद्धांतिक एवं ऐतिहासिक सर्वेक्षण

क.अवाम की संघर्ष की चेतना : सैद्धांतिक एवं ऐतिहासिक सर्वेक्षण

अवाम की परिकल्पना- संघर्ष चेतना-अवाम की संघर्ष चेतना में कार्यरत दर्शन- मार्क्सवाद-दलित चिंतन-नारीवाद - हिन्दी कहानी क्षेत्र में अवाम की संघर्ष चेतना के विभिन्न आयाम - प्रेमचन्द की कहानियों में अवाम - यशपाल - फणीस्वर्नाथ रेणु - भीष्म साहनी – अमरकांत – कमलेश्वर- शेखर जोशी

ख.अस्सियोत्तर भारत के परिवेश का परिदर्शन

इन्दिरा गाँधी हत्या तथा सिख विरोधी दंगा - अयोध्याकाण्ट - चरार-ए-शरीफ पर हमला - भ्रष्टाचार का नया पर्व - संसद पर हमला - गोध्रा काण्ड - प्राकृतिक दुरघटनाएँ- भोपाल दुर्घटना - महाराष्ट्र में भूचाल - प्लेग की वापसी - कार्गिल की लडाई - उडीसा में तूफ़ानी हमला - गुजरात भूचाल - सुनामी का हमला - सामाजिक परिद्-श्य - आर्थिक परिदृश्य- निष्कर्ष

दूसरा अध्याय

किसान व मज़दूरों का संघर्ष

किसानों का संघर्ष - अस्सियोत्तर कहानियों में किसानों का संघर्ष - मज़दूरों का संघर्ष: पूर्व पीढी - अस्सियोत्तर कहानियों में मज़दूरों का संघर्ष - कारखाना मज़दूरों का संघर्ष - घरेलू नौकरों का संघर्ष -दिहाडी मज़दूरों का संघर्ष - कूडा-कचरा बीनने वालों का संघर्ष- सामान-सब्जी वगैरह बेचनेवालों का संघर्ष - रिक्षा चालकों का संघर्ष - कुछ और आयाम - निष्कर्ष

तीसरा अध्याय

अस्सियोत्तर कहानियों में दलित संघर्ष

दलित व अवाम - दलितों का जीवन सन्दर्भ - अस्सियोत्तर दलित कहानियों में संघर्ष चेतना - ज़मीन्दारी शोषण नीति तथा दलितों की संघर्ष चेतना - सवर्ण अधिकारियों के कुचक्र तथा दलितों के संघर्ष ब्राह्मण वर्चस्व के खिलाफ दलितों का संघर्ष राजनैतिक शोषण के खिलाफ दलितों का संघर्ष सजातीय शोषण का चित्रण - आर्थिक स्तर पर दलितों के ऊपर ज़्यादती एवम उनकी संघर्ष चेतना - शारीरिक व मानसिक तौर पर शोषण तथा दलितों का संघर्ष - सामाजिक तौर पर दलितों पर ज़्यादती एवं उनका संघर्ष - धार्मिक क्षेत्र की ज़्यादती और दलितों का संघर्ष – निष्कर्ष

चौथा अध्याय

अस्सियोत्तर कहानियों में नारी का संघर्ष

नारी व अवाम - नारी का समकालीन परिदृश्य - अस्सी-पूर्व की कहानियों में नारी का संघर्ष -अस्सियोत्तर कहानियों में नारी संघर्ष के विभिन्न आयाम - परंपरा एवं रूढियों के खिलाफ नारी का संघर्ष - पुरुष वर्चस्विता के खिलाफ नारी का संघर्ष - परिवार में संत्रस्त नारी का संघर्ष - यौन शोषण के खिलाफ नारी का संघर्ष - भ्रष्टाचार के खिलाफ नारी का संघर्ष- भूख के खिलाफ नारी का संघर्ष – निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय

संघर्ष के कुछ और आयाम

विस्थापितों का संघर्ष - वृद्धजन संघर्ष - शिक्षित युवा पीढी का संघर्ष - बालजन संघर्ष – निष्कर्ष

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

पहला अध्याय

(क) अवाम की संघर्षचेतना सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक सर्वेक्षण

(ख) अस्सियोत्तर भारत के परिवेश का परिदर्शन

खण्ड-क

अवाम की संघर्षचेतना : सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक सर्वेक्षण

मनुष्य सामाजिक प्राणी है । समाज में ही उसके शारीरिक एवं बौद्धिक इकाइयों का विकास होता है । यह विकास मानव-मानव में अलग-अलग मात्रा में है । इसलिये समाज में कोई सहज ही सबल है ओर कोई दुर्बल । यह एक प्राकृतिक अवस्था है, जिसके आधार मानुषिक क्षमतायें हैं, जैसे कि बुद्धी और शक्ति । यह एकदम सहज है और एक हद तक सनातन भी । आदिम सत्ता इन क्षमताओं पर केन्द्रित थी । समय के बदलते मनुष्य ने अर्थ की परिकल्पना की और एक अर्थ केन्द्रित सत्ता की प्रतिस्थापना की। उस सत्ता ने बहुजन समाज की कुल भौतिक संपत्ती को व्यक्ति केंद्रित कर दिया । नतीजतन प्राकृतिक व्यवस्था बदली । पूँजी सर्वप्रथम मानी जाने लगी । कुल जमा पूँजी के आधार पर समाज का बंटवारा होने लगा । सत्ता पारंपरीय बन गयी कोई जन्म से सत्तासीन, सबल या खास बन गया तथा कोई सहज ही अवाम । इस तरह समाज दो प्रमुख वर्गों में विभजित हुए जैसे उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग ।

विज्ञान की प्रगति ने औद्योगिक क्राँति मचा दी । जनता शिक्षित होने लगी । समाज का एक बडा हिस्सा आधुनिक बन गया । इसने वर्ग विभाजन में मध्य वर्ग नाम से एक और कडी को जोड दिया । इस तरह बहुजन समाज उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग, आदि तीन विभागों में बंट गया । कालोपरांत इसके अनेक प्रभेद हुए जो निम्न लिखित हैं[1]

1. **उच्च वर्ग-** जो आर्थिक और सामाजिक तौर पर निश्चिन्त हैं । सभी सुख-सुविधाओं के बीच शान से रहनेवाले बडे-बडे उद्योगपति, नवधनाठ्य, भूस्वामी आदि इस विभाग में आते हैं । ये समाज को निर्घारित करते हैं ।

2. **उच्च मध्य वर्ग-** प्रशासन से जुडे सभी अधिकारी लोग इस श्रेणी में आते हैं जो शासन की बागडोर संभालते हैं । इनके साथ सामान्य उद्योगपति भी आते हैं।ये भी आर्थिक तौर से निश्चिन्त हैं । ये भी भोग विलास के अधिकारी हैं ।

---

1 मृदुल जोशी, समकालीन हिन्दी कविता में आम आदमी, पृ-17

3. **मध्य मध्य वर्ग-** उच्च मध्य वर्ग और निम्न मध्य वर्ग के बीच एक वर्ग और है जो मध्य मध्य वर्ग कहे जाते हैं। ये हमेशा उच्च वर्ग एवं उच्च मध्य वर्ग की तरफ देखते रहते हैं। छोटी-छोटी विलासवृत्तियाँ इनको भी नसीब हैं। छोटे-मोटे अधिकारि लोग, छोटे-छोटे खेत-खलिहानों के मालिक, किसान आदि इसमें आते हैं।
4. **निम्न मध्य वर्ग-** ये लोग शैक्षिक तौर पर सफल हैं, लेकिन अपनी बुनियादी ज़रूरतों के लिये अर्थोपार्जन में ये हमेशा संघर्षरत हैं। विलासिता इनकी सोच के बाहर हैं। दफ्तरों के छोटे-छोटे कर्मचारि, चपरासी आदि इस श्रेणि में आते हैं।
5. **निम्न वर्ग-** अपने जीवन की बुनियादी ज़रूरतें जैसे अन्न, कपडा, मकान आदी के लिये ये हमेशा संघर्षरत हैं। ये अपने शारीर के बल पर जीते हैं। समाज के परिवर्तन के साथ अपने आप को जोडने में ये असमर्थ रहते हैं। रिक्षा वाले, ताँगे वाले, मोची, धोबी, बुनकर लोग, बूट-पोलिश करने वाले, टीन-टपरा तथा कूडा-कबाड बेचकर जीवन यापन करनेवाले, मकान बनानेवाले मज़ूर, विस्थापन के शिकार आमजन सभी इस श्रेणि में आते हैं।

इस आर्थिक विभाजन में निम्न वर्ग एवं निम्न मध्य वर्ग ही अवाम की परिकल्पना के अन्तर्गत आती हैं जो आर्थिक तौर पर हमेशा असुरक्षित हैं।

अवाम की परिकल्पना

'अवाम' फारसी से हिन्दी भाषा में प्रयुक्त शब्द हैं। 'common man' अँग्रेज़ी में इसका समानार्थी शब्द हैं जिसका मतलब हैं -'one man who has no title'[1]। यानि जिसका कोई

---

1 oxford dictionary

खास नाम या पहचान नहीं, वही अवाम है । यह आम आदमी का समानार्थी शब्द है । तारा पाँचाल की राय में "जो भी अपनी ज़िन्दगी को मामुली से मामुली और निचले स्तर पर चलाने के लिये बहुत कुछ ईमानदारी से जीते हैं, खटते हैं और मेहनत करने पर भी मज़लुम और मजबुर का जीवन जीते हैं । ये लोग ही आम आदमी की श्रेणी में आते हैं ।"[1] ज्ञानप्रकाश विवेक की राय में "सबसे ज्यादा जो आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर हैं, वही आम आदमी हैं" [2]। कमलेश्वर ने लिखा हैं कि "आदमी वह हैं जो कहीं भी किसी भी क्षेत्र का नियन्ता नहीं है पर हर किसी क्षेत्र की आधारशिला है ।"[3] आम आदमी की परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिन्दी कविता को परखते हुए मृदुल जोशी ने लिखा है- "हतदर्प हताश और जीवन संघर्ष में अनवरत जूझते शोषित व्यक्ती को ही हम आम आदमी की वर्गीकृत सीमा के अन्दर पाते हैं ।"[4] मीनाक्षी पाहवा की राय् आम आदमी वह है-"जो अपने ही अधिकारों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर संघर्षरत हो, जो हमेशा प्रभुत्व का निशाना बनता रहे, जो हमेशा हारता भी रहे लेकिन जीने की हौसला भी न छोडे, जो जीवन की असंगतियों-विसंगतियों को झेलकर भी जीवन के प्रति आस्था न छोडे वही आम आदमी है ।"[5]

---

1 तारा पाँचाल, समकालीव हिन्दी कहानी, मीनाक्षी पाहवा, पृ167

2 ज्ञान प्रकाश विवेक

3 कमलेश्वर,1977 की हिन्दी कहानी की भूमिका,सं.ऋषिकुमार चतुरवेदि

4 मृदुल जोशी,समकालीन हिन्दी कविता में आम आदमी,पृ,16

5 मीनाक्षी पाहवा,समकालीन हिन्दी कहानी,आम आदमी के सन्दर्भ में,पृ.2

विद्वानों ने ज्यादातर आर्थिक परिवेश को अवामियत का आधार माना है । लेकिन इसके कुछ और पहलुएँ भी हैं जिन्हें छोडा नहीं जा सकता।श्री बजरंग तिवारी ने समाज में मौजुद कई उदाहरण प्रस्तुत कर अवाम की परिकल्पना का एक विशाल दायरा खींचा हैं -" संघर्षशील आम जन की परिभाषा संकुचित नहीं है । इसमें किसान तो आते ही है, भूमिहीन मज़दूर, शहरी श्रमिक भी शामिल हैं। साथ ही इसमें पितृसत्ता, जाति और गरीबी की झेलती प्रतिकूल परिस्थितियों में फंसी स्त्रियां हैं, सरकार विकास अभियान में फँसे आदिवासि हैं, परिवार, समाज और समूचे परिवेश में व्याप्त संवेदन्हीनता, क्रूरता झेलते बच्चे हैं । कठिन परिश्रम करते पहाडी लोग हैं और सब कुछ दाँव पर लगा देनेवाले नक्सल संगठनों के सदस्य भी हैं ।"[1] इन्हों ने शारीरिक व मानसिक कम्ज़ोरियं तथा समाजिक एवं सांस्कृतिक पिछडापन को जोडकर अवाम को पूर्ण इकाई बनाया है । संक्षेपतः शारीरिक व मानसिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पिछडापन के शिकार जन साधारण ही अवाम है जो अपनी बुनियादी ज़रूरतें जैसे अन्न, कपडा, मकान आदि की खातिर नित संघर्षरत है । वे पूरे समाज में निस्सारता, निरीहता, सादगी एवं निहत्थेपन का पुंज है ।

साहित्य समाज का यथातथ्य नहीं है । प्रेंचन्द के शब्दों में " अगर हम यथार्थ को हूबहू खींचकर रख दें तो उसमें कला कहाँ है । कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है । कला दिखती तो यथार्थ है लेकिन यथार्थ होती नहीं । उसकी खूबी यही है कि यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो "[2] अतः साहित्य में तथा यथार्थ में अंतर है । अवाम के परिप्रेक्ष्य में भी यह लागू है । सहित्यकार समाज से तथ्य को स्वीकारते है; तदनुकूल पात्रों की सृजना करते हैं, जिनके साथ पाठकों का साधारणीकरण संभव हो और उन्हें विचाराभिव्यंजना समेत

1 बजरंग बिहारी तिवारी,संघर्षशील जन की कहानियों का फलक,हंस,आगस्त 2006

2 प्रेमचन्द,भूमिका,पृ.6

पाठकों के सम्मुख परोसते हैं। जाहिर है कि साहित्य में अवाम के रूपायन में सृजनकार की खास भूमिका रहती है, जो अवाम की जय-परजयों को निर्धारित करती है। गोया अवाम की साहित्यिक एवं सामाजिक अभिव्यक्ति में बुनियादी फरक हैं। समाज में संघर्षरत अस्मिताहीन अवाम हाशिये पर खडा है। लेकिन साहित्य में सृजनाकार की लेखकीय गरिमा उसे एक खासियत प्रदान करती है। नतीजतन वह सहानुभूती एवं विद्रोह के अलग-अलग संवेदनाओं के तहत अस्मितासीन व्यक्तित्व बन जाता है। वह लडाई लड सकता है।

संघर्ष चेतना

संघर्ष केलिये अंग्रेज़ी में 'conflict', 'struggle' आदि शब्द प्रयुक्त हैं। अतःसंघर्ष द्वंद्व है या प्रतिकूल वातावरण में प्रत्येक मानव मन का वैचारिक एवं वैकारिक प्रतिक्रिया है।[1] श्री देवेन्द्र इस्सर लिखते हैं -"सृजन और संहार की शक्तियाँ प्रत्येक युग में परस्पर संघर्ष में रही हैं। और इसमें निरंतर प्रगती भी होती रही है "[2] जाहिर है कि संघर्ष समाज को विकास की तरफ ले जाता है। यह संघर्ष साहित्यिक स्तर की भी बुनियाद है जो समाज एवं साहित्य के बीच मिलन सेतु है। डॉ.महीप सिंह की राय में साहित्य " व्यापक परिवर्तनकामी, स्वल्प परिवर्तनकामी, यथास्थितिकामी और परिवर्तन विरोधी शक्तियों के आपसी टकराव का वह दस्तावेज़ बनता है "[3] जो परिवर्तन को शब्द देता है। दर असल यह टकराव, द्वन्द्व, या संघर्ष

---

1 ऑक्सफोर्ड डिक्श्नरि

2 श्री देवेन्द्र इस्सर,मूल्य संक्राँति और युग चेतना,समकालीन सहित्य चिंतन,सं.डॉ.रामदरश मिश्र,डॉ.महीप सिन्ह,पृ.12

3 डॉ,महीप सिन्ह,साहित्य और सामाजिक परिवर्तन, समकालीन सहित्य चिंतन,सं.डॉ.रामदरश मिश्र,डॉ.महीप सिन्ह,पृ.23

ही साहित्य को गति प्रदान करता है -" किसी न किसी तरह की द्वन्द्व या संघर्ष की स्थिति के बिना रचना में गति नहीं आती । "[1]

संघर्ष के कई आयाम है जैसे व्यक्ति संघर्ष एवं समाज संघर्ष । एक भरी सभा में एक नन्हा सा बच्चा जब गिरता है, वह रोने लगता है । रोने की वजह अक्सर दर्द नहीं होता बल्कि अपने स्वत्व को लगी ठेस है । उससे उपजी आत्मवेदना रुदन बतौर बाहर निकलती है । यह व्यक्ति संघर्ष के लिये उदाहरण है । जो दुर्बल है अपने संघर्ष पर दूसरों की बलि चढाता है जैसे ऑफीस में उच्च अधिकारी की डाँट-फट्कार का गुस्सा बीवी-बच्चे या जानवरों पर उतारना । जो बेसहारा है संघर्ष उसकेलिये अपने ही भीतर की दर्दनाक अनुभूति है । नतीजतन जीवन जड तुल्य बन जाता है । सबल डांट का बदला डांट,मार का बदला मार से देता है । कहानियों में वैयक्तिक संघर्षों के कई दस्तावेज़ हैं । प्रेमचन्द की 'पूस की रात' कहानी के हल्कू द्वारा अपना ही खेत नीलगायों से चरा दिये जाना, अमरकांत की 'ज़िन्दगी और जोंक' कहानी का 'रजुआ' दूसरों को चिढाकर गाली सुनना और उससे अपनी पहचान कायम रखना, कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएँ' कहानी के नायक द्वारा अपनी पत्नी से अपनी पहचान पूछे जाना, जितेन्द्र भाटिया की 'शहादतनामा' कहानी के नायक द्वारा अमरजीत की मौत की असलियत छिपा देना, मृदुला गर्ग की 'हरी बिन्दी' की नायिका की नीली चुडीदार के साथ हरी बिन्दी लगा देना, ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'रिहाई' कहानी छुटकू की तरह अन्यायी के सिर पर पत्थर दे मारना सभी वैयक्तिक संघर्ष के लिये उदाहरण हैं । ये सारे

---

1 डॉ.देवराज, साहित्य और संघर्षशीलता, समकालीन सहित्य चिंतन,सं.डॉ.रामदरश मिश्र,डॉ.महीप सिन्ह,पृ.9

संघर्ष वैयक्तिक होकर भी साहित्य में सामाजिक हस्तक्षेप बनकर उपस्थित हैं । अतः पाठकगण कहानी में अपनी प्रतिछवि पाने लगते हैं। इस तरह साहित्य एवं उसमें परिलक्षित संघर्ष समाज सापेक्ष बन जाता है ।

जो संघर्ष समाज सापेक्ष है, वह जनसंघर्ष है । इसके तहत संघर्ष के ज़रिये समाज में बदलाव या परिवर्तन का मकसद कार्यरत है । समाज एक नियत व्यवस्था का नाम है । मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था की कई विडंबनाएँ हैं । समाज वर्ग, जाति, धर्म, विचारधारा, संस्कृति, भाषा आदि कई विभजनों की अलग अलग दायरों में फँसा हुआ है। भारत की विशाल राजनीतिक तथा सामाजिक एकता के धागे से पिरोकर भी इन विभजनों की अपनी अहमियत हैं । क्योंकि ये सारे विभिन्न सांस्कृतिक एवं वैचारिक विरासत के नागरिकों के अलग अलग पुंज है जो एक ही मुल्क के समान अधिकारी हैं । इसलिये इनके बीच आपसी संघर्ष सहज है जो जन संघर्ष है । इसके कई आयाम है जैसे वर्ग संघर्ष, जाति संघर्ष, लिंग संघर्ष, धर्म संघर्ष आदि । पाकिस्तान-श्रीलंका का जातीय संघर्ष, सिंगूर, नन्दिग्राम में भूमि केलिए संघर्ष, अपनी संस्कृति को कायम रखने केलिए तथा अपने कानूनन अधिकारों केलिये आदिवासियों का संघर्ष, कश्मीर की स्वतंत्रता एवं आज़ादी केलिए लडाई, खालिस्थान वाद, हिन्दु-मुस्लिम उग्रवाद आदि भी तथाकथित जनसंघर्ष के लिये उदाहरण हैं ।

जनसंघर्ष एक ऐसा हथियार है, जो समाज को जितना आगे ले सकता है, उतना पीछे भी। मनुष्य में सहज ही एक पशुतावृत्ति मौजूद है । मानवीयता उसे कमज़ोर देती है । हालांकि अनुकूल वातावरण में वह बाहर निकलती है जिससे खून खराबा सम्भव है । हिन्दू मुस्लिम दंगों में इसका बुरा असर दिखाई देता है । इसलिये जनसंघर्ष गम्भीर मसला है । श्री रामशरण जोशी की राय में "आतंकवाद में भी जनसंघर्ष की भावनाएं वा कोशिशें प्रतिबिम्बित होती हैं । बगैर जनसमर्थन वा हिस्सेदारी के आतंकवादी अभियानों को लंबे समय तक चलाये रखना लगभग असम्भव है ।"[1]

1 श्री.रामशरण जोशी,समयांतर,फर्वरि,2008,पृ.2

संक्षेप में संघर्ष परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच द्वन्द्व है । यह जितना आंतरिक एवं भौतिक है उतना वैकारिक एवं वैचारिक भी । यह परिवर्तन का मूल है ।

चेतना

चेतना केलिये अंग्रेज़ी में consiousness शब्द प्रयुक्त है । consiousness conscious शब्द से उद्धृत है । इसका शाब्दिक अर्थ है -awake and aware of one's surroundings and identity [1] अतः प्रत्येक मानव के अपने स्वत्व एवं परिवेश से अवगत होना या जागृत होना तथा प्रतिरोध के लिये सज्ज होना चेतना है । कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतीकवाद के अनुसार चेतना पदार्थ की उपज है । यानी वाद- विवादों के संवाद से चेतना जागृत होती है । मृदुला गर्ग की राय में "चेतना का सम्बन्ध वर्ग, वर्ण, धर्म, या लिंग से नहीं, दृष्टि से है, जो अनुभूती की ऐतिहासिक, सामाजिक और वैयक्तिक यात्रा में से विकसित होती है।"[2] ।अतः चेतना, दृष्टि की उपज है, जो मनुष्य को अपनी अनुभूतियों एवं विचारों से उपलब्ध होती है ।

प्रत्येक मानव को अपने ज्ञान का एक बडा हिस्सा अपनी सामाजिक, वैचारिक एवं सांस्कृतिक विरासत के तौर पर मिलता है । थोडा बहुत वह अपने आसपास से और समसामयिक जीवन यथार्थों से हासिल करता है । इन दोनों के बीच निरंतर संघर्ष बतौर उसे जो नया ज्ञान या पहचान होती है, चेतना उसी का नाम है । संक्षेप में चेतना विचार- भावादियों के संघर्ष की उपलब्धि है, जिसमें प्रत्येक की सामाजिक, वैचारिक एवं सांस्कृतिक विरासत की खास भूमिका रहती है । चेतना और संघर्ष, दोनों अन्योन्याश्रित हैं । संघर्ष चेतना की और चेतना विद्रोह की जननी है ।

---

1 ऑक्स्फोर्ड दिक्षनरि

2 मृदुला गर्ग,मर्द आलोचना,आधुनिक हिन्दी कहानी,नारी चेतना,पृ.206

अवाम की संघर्ष चेतना में कार्यरत दर्शन

प्रत्येक दार्शनिक अपनी अद्वितीय धिषणा बल के ज़रिये अपने समसामयिक समाज की अलग अलग व्याख्याएँ देते रहे हैं । ये कभी अवाम के पक्ष में हैं तो कभी विपक्षीय बन जाती हैं। हालांकि अवाम की संघर्ष चेतना के रूपायन में इनकी बडी भूमिका होती है । अवाम की संघर्ष चेतना में कार्यरत दर्शनों में मार्क्सवाद, अम्बेद्‌करवाद और नारीवाद का अलग योगदान है ।

मार्क्सवाद

" समाज को समझने और बदलने तथा शोषण हीन समाज का निर्माण करने के विज्ञान का नाम मार्क्सवाद है ।"[1] मार्क्सवादी दर्शन अर्थ एवं श्रम पर आधारित है । मार्क्स के अनुसार बहुजन समाज उच्चवर्ग, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग आदि तीन बुनियादी स्तरों में विभजित है । पहला वर्ग शोषकों का है। वे पूंजी के अधिकारी है । दूसरा वर्ग शिक्षित तथा औहदे प्राप्त पीढी का है और अंतिम वर्ग सर्वहारा का है जो अपनी मेहनत के ज़रिये सब कुछ पैदा करते हैं । उच्वर्ग एवं मध्यवर्गों द्वारा समाज में निम्नवर्ग का शोषण होता रहता है। मार्क्स की राय में वर्गों की उपस्थिति प्रागैतिहासिक काल से नहीं है । बल्कि सामाजिक विकास के दौरान सत्तासीन हुए हैं। मार्क्स इतिहास को साक्षी मानता है -"आदिम साम्यवादी युग् में किसी प्रकार के वर्ग नहीं थे। सभी व्यक्ति समान आकांक्षाओं और आवश्यकताओं से प्रेरित थे । इन आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूरती केलिये व्यक्ति समान कार्यों का संपादन करते थे । इसके बाद निरंतर दास, सामंत और पूँजीवादी युगों में वर्ग बने रहे । इन वर्गों में स्थाई भेद के कारण संघर्ष होते रहे ।"[2] इस तरह मार्क्स ने संघर्ष के ज़रिये सामाजिक

---

1 राम विलास शर्मा,मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य,पृ.265

2 राम विलास शर्मा,मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, पृ.265

विकास की अवधारणा प्रस्तुत की है । उनकी राय में संघर्ष एक गतिशील प्रणाली है, जो समता सम्पन्न समाज की प्रतिस्थापना में ही समाप्त होती है । वह समाज वर्गहीन होगा । पूँजी वैयक्तिक न होकर पूरे समाज की उपलब्धि मानी जायेगी ।

वर्गहीन समाज की स्थापना वर्गसंघर्ष से ही सम्भव होती है । उच्चवर्ग एवं निम्नार्ग यानी शोषक एवं शोषितों के बीच निरंतर संघर्ष होता रहता है । पूजीपति इसलिये शोषण करते हैं ताकि पूँजी बढती जाए । शोषित इसलिये शोषित है कि उनके महनत के अलावा और कोई चारा नहीं रहता । मार्क्सवाद के अनुसार इस बदहालत से उबरने केलिये सर्वप्रथम मेहनतकश अवाम को संगठित होना चाहिये । संगठित होने से एक वर्गवादी चेतना का उदय होता है, जो विद्रोह एवं क्राँति की प्रेरणा देती है । वह पूँजीवादी सत्ता के खिलाफ लडने की ताकत प्रदान करती है । नतीजतन समाज में समता और शांति अमल होती है ।

मार्क्स की राय में दुनिया के सभी पदार्थ परिवर्तनशील हैं । इस परिवर्तन का आधार पदार्थों के आपसी संघंष ही है । इसे द्वन्द्वात्मक भौतीकवाद कहा गया है । परिवर्तन की अवस्था में एक वस्तु दूसरे वस्तू में बदल जाती है । पुराने वस्तु पर नयापन आ जाता है। द्वन्द्वात्मक भौतीकवाद के अनुसार यह प्रक्रिया प्रगति और विकास की परिचायक होती है । " द्वन्द्वत्मक भौतिकवाद विकास की प्रक्रिया को आधार बनाता है । सृष्टि निरंतर विकासशील है और यह विकास की प्रक्रियाभौतिक पदार्थों अथवा प्रक्रियाओं के पूर्ण सम्बन्ध की ही अवस्था में होती है । परिवर्तन की अवस्था में एक वस्तु दूसरे वस्तु में बदल जाती है। विकास की प्रक्रिया अनंत है । एक वस्तु की जगह दूसरी वस्तु आ जाती है और यह प्रक्रिया निरंतर चलती है । द्वन्द्वत्मक भौतीकवाद के अनुसार यह प्रक्रिया प्रगति और विकास की परिचायक है, जो निरंतर बढती और विकसित होती है । भौतिक जगत विकास का ही स्वरूप है, जिसमें व्यक्ति के आर्थिक जीवन के साथ उसकी सामाजिक पृष्टभूमि अंतर्निहित होता है ।

सभी वस्तुओं की निषेधात्मक और विधेयात्मक स्थितियाँ होती है ।"[1] इस तरह मार्क्स ने संघर्ष को अपने सिद्धाँत की तथा परिवर्तन की धुरी मान ली है ।

---

1 राजेन्द्र मिश्र,समकालीन साहित्य और विचारधाराएँ,पृ.66

उच्चवर्ग एवं निम्नवर्ग, विरोधी शक्तियाँ है । इन विरोधी शक्तियों के आपसी संघर्ष वर्गसंघर्ष हैं । वर्ग संघर्ष के दौरान जो नई वर्गव्यवस्था होगी, वह समतासम्पन्न होगी लेकिन यह अवस्था भी स्थायी नहीं है । नया वर्ग पर जब सत्ता केंद्रित होती है धीरे धीरे उसकी अन्दाज़ में परिवर्तन आने लगता है । वह पूँजीवाद को प्रश्रय देने लगता है । केवल अपने विकास पर ध्यान देने लगता है । नतीजतन दूसरे वर्ग की प्रगती में बाधा पडने लगती है और असमानता पलने लगती हैं । इससे नयी चेतना जन्म लेती है और संघर्ष के नये आयाम जुडने लगते हैं । इस तरह मार्क्स के अनुसार संघर्ष एक गतिशील प्रणाली है जो परिवर्तन का पूर्वाभास देता है ।

मार्क्स ने एक सपना देखा जिसमें आर्थिक विभिन्नताओं से परे समाज के सभी नागरिक समान अधिकारी है । सपने को हकीकत में बदलने केलिये मेहनतकश अवाम से उसकी विरासत-मेहनत तथा संघर्ष को ज़रिया बनाया गया; और ऐसा एक सिद्धांत का रूपायन किया जिसके तहत श्रम तथा संघर्ष के लगातार इस्तेमाल से पूँजीवादी व्यवस्था के कायापलट का बमुश्किल काम काफी अनिवार्य हो जाता है । मार्क्सवाद ने मेहनतकश अवाम को उसके वजूद का एहसास दिलाया । कदम से कदम मिलाकर स्वयं प्रगति की तरफ बढने का हौसला दिया । आर्थिकता एवं भौतिकता की सीमारेखाएँ हैं फिर भी अवाम को मुक्ति का सपना दिखाने में मार्क्स्वाद की अहम भूमिका है ।

दलित चिंतन

आर्थिक धरातल एवं भौतीकवादि दृष्टिकोण मार्क्सवाद को सार्वलौकिक उपादेयता प्रदान करती है । लेकिन भारतवर्ष का विशेष सन्दर्भ थोडा भिन्न है । भारतीय समाज जातिपरक विभाजन के खेमे में है, जिसकी जडें भारत की मृण्मय संस्कृति तक फैली हुई है । इसलिये जातिप्रथा की आदि एवं व्याप्ति का सही दिशांकन करना बमुश्किल है ।

'आदिम वैदिक समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि चार बुनियादी वर्गों में विभजित था ।'[1] विभाजन कर्म के आधार पर हुए थे । ये गाँवों में बसते थे । कुछ लोग गाँव के बाहर भी रहते थे जो विभाजन के बाहर थे । ज़माने के साथ विभाजन का आधार भी बदल गया । जाति कर्म के आधार पर नहीं बल्कि जन्म के आधार पर माने जाने लगे । इस तरह समाज में असमानताएँ पलने लगा । ब्राह्मण का बेटा वह चाहे निरक्षर हो, ब्राह्मण बनने लगा और शूद्र का बेटा शूद्र । नतीजतन धर्म रूढी में परिवर्तित होती गई । वह शोषकों के हाथ का सबसे तीखा हथियार बनता गया ।

गाँव के बाहर जो बसते थे वे अछूत माने जाते थे । उनकी परम्परा आज दलित शब्द से अभिहित होती है । अछूत से दलित तक की यात्रा को डॉ.दिनेश राम ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है -'वर्ष1933 में महात्मा गाँधी ने इन्हें 'हरिजन' नाम दिया जिनका हरिजनों ने जमकर विरोध किया । फलस्वरूप अछूतों ने अलग अलग अपना नामकरण किया आदि-द्रविड, आदि-आन्ध्र, आदि कर्णाटक और आदि-हिंदु इत्यादि । अपने संघर्ष के दौरान अछूतों के लिये 'दलित' शब्द का इस्तेमाल सबसे पहले जोतिबा फूले ने ही किया । यह शब्द आज अधिकाँश क्षेत्रों में अछूतों के लिये ग्राह्य हो गया । अंग्रेज़ों ने अपनी सुविधा के लिये इस वर्ग को औट केस्ट (out caste) 'एक्स्टीरिअर केस्ट (exterior caste) और डिप्रेस्ड केस्ट (dipressed caste) का नाम दिया । इन सब नामों के अतिरिक्त एक नाम अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति भी है जो संविधान द्वारा दिया गया है । आज अछूतों के लिये सर्वाधिक ग्राह्य और प्रचलित नाम है 'दलित' जो धीरे -धीरे पूरे भारतवर्ष में अछूतों द्वारा स्वीकार किया जा रहा है ।

---

1 एस. आबिद हुस्सैन,the national culture of india

स्वयं अपने जन्म को रोकना किसी से सम्भव नहीं । कोई भी व्यक्ति अपनी विरासत को नहीं बदल सकता । जन्म तथा विरासत प्रत्येक पर थोपा गया है । किसी केलिये वह मुबारख है तो किसी के सम्मुख मुसीबत । दलितों के लिये दोनों मुसीबत ही है जो उनके जीने की अभिलाषा को ठंडा कर देती हैं । इसी वजह वह समाजनिकाला बन जाता है जिसमें उसका कोई कसूर नहीं है । इस दर्द भरे एहसास को अंकित करते हुए डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं -वह कौनसी बात है जो आदमी को सर्वाधिक दंश देती है । यथार्थ अनुभव बतता है कि आदमी को सबसे बडा दर्द तभी होता है जब उसमें और दूसरों में उन कारणों के तहत फरक किया जाता है जिसमें उनका कोई वश नही है ।"[1] दलित चिंतन का उद्देश्य इस नाजायज़ बोझ को दलितों के कन्धे से उतारना है ।

" आधुनिक भारत में दलित चिंतन का आरम्भ महात्मा जोतिबा फूले से होता है ।"[2] जातिप्रथा का मूल- वर्णाश्रम व्यवस्था- पर उन्होंने अपने विचारों की तीर चलाई । वर्णाश्रम व्यवस्था के विभिन्न इकाइयाँ जैसे कर्मफल, पुनर्जन्म, मोक्ष का सिद्धाँत आदि की कडी आलोचना की । उनकी राय में ये दलितों को गुलाम रखने के उद्देश्य में सवर्णों द्वारा रचित साजिश है । उन्हों ने वेद, पुराण, स्मृति जैसे ग्रंथों का तिरस्कार किया । पूरे समाज के लिये प्रगतिशील मूल्यों के नये विकल्प को प्रस्तुत किया -"अपने आंदोलन में जोतिबा फूले वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध कर रहे थे तो उसके बरक्स एक नई समाज व्यवस्था का विकल्प भी प्रस्तुत कर रहे थे जिसमें आधुनिक प्रगतिशील मूल्यों -स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व, की बात कही गयी है । उन्होंने एक ऐसी समाज की कल्पना की जहाँ किसी भी प्रकार का जातिभेद, सम्प्रदायभेद न हो और जहाँ मानवाधिकार के सुरक्षित रहने की गैरंटी हो ।"[3]

---

1 डॉ.शिवकुमार मिश्र,वर्ग और वर्ण सन्दर्भ:दलित विमर्श,वर्तमान साहित्य,पृ.11

2 दिनेश राम,समकालीन हिन्दी कहानी और अम्बेदकरवादी आंदोलन,पृ-20

3 दिनेश राम,समकालीन हिन्दी कहानी और अम्बेदकरवादी आंदोलन,पृ.30

महात्मा जोतिबा फूले ने दलितों को शिक्षित होने का आह्वान किया । उन्होंने अपने विचारों को प्रचरित करने केलिये साहित्यकार की भी भूमिका निभाई है । त्रितीय रत्ना, गुलामीगिरि आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं । सार्वजनिक सभा की स्थापना में उनकी महत्वपूर्ण योगदान है ।

दलित आंदोलन के सन्दर्भ में जोतिबा फूले के बाद डॉ.भीमराउ अम्बेदकर का नाम प्रमुख है । उन्होंने पूर्वजों की विचार्धारा को आगे बढाया । उन्होंने दलितों को शिक्षित होने, संगठित होने तथा संघर्ष करने का आह्वान किया । उन्होंने भारतीय संविधान को अपने योगदानों से सम्पन्न बनाया। उन्होंने भारतीय संविधान में देश के सारे अल्पसंख्यक समाजों के लिये आरक्षण की सुविधा प्रदान कर दी जो दलितों केलिये काफी गुणदायक रहा। उन्होंने दलितोत्थान के लिए राज्यसमाजवाद की वकालत की । विधान सभा में कानून मंत्री के रूप में अम्बेदकर ने दलितों के लिये आवाज़ उठाया लेकिन हिन्दु कोड बिल पर अपनी असहमति दिखाते हुए उन्हें त्यागपत्र देना पडा । 1959 में हिन्दु धर्म की विडंबनाओं के प्रति विद्रोह स्वरूप अपने हज़ारों अनुगामियों के साथ उन्होंने बौद्ध धर्म का वरण किया । डॉ.अम्बेदकर ने एक ऐसे वर्णविहीन समाज की कल्पना की जिसमें आधुनिक मानवीय तथा वैज्ञानिक मूल्यों का समावेश है, जिसका चरित्र स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व का है । उनके मत में जनतंत्र केवल सरकार का ही एक रूप नहीं है बल्कि मौलिक रूप से वह संगठित ढंग से रहने की रीति है। वह परस्पर आदान-प्रदान का अनुभव है । वह आवश्यक तौर पर अपने साथियों के प्रति आदर तथा सत्कार की भावना है ।[1] अम्बेदकर के अनुसार बिना सामाजिक रसतंत्र के सरकार और राजनीति की भूमिकाएँ अधूरी होती हैं । उन्होंने गरीबी के उन्मूलन के लिये उत्पादन में वृद्धि तथा राष्ट्र के बहिर्मुखि विकास के लिए राष्ट्रीयकरण की नीति की वकालत की । वे भूमि का राष्ट्रीयकरण कर उत्पादन की प्रणाली को एक सामूहिक पद्धति

1 डॉ.बि.आर.जाटव,गाँधी लोहिया अम्बेदकर,पृ87

बनाने के पक्षधर थे । उनके अनुसार जब तक राज्य खेती और उद्योग के क्षेत्र में समाज के गरीब तबकों के लिये आर्थिक संसाधन नहीं जुडा पायेगा, तब तक आर्थिक समृद्धि का होना कठिन है । समाज में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के लिए वे राज्य की अहम भूमिका मानते थे ।

डॉ. अम्बेदकर सामाजिक न्याय के प्रबल समर्थक थे । उनके अनुसार- "सामाज न्याय का पैमाना मात्र भौतिक उन्नति नहीं है, मात्र शारीरिक भूख प्यास मिटाना नहीं है, कुछ सुख-सुविधाएँ और सरकारी नौकरियाँ देना नहीं है, बल्कि इससे भी अथिक महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत के लोगों अथवा सभी वर्गों और धर्मों के लोगों के उन मानवीय मूल्यों तथा अधिकारों को स्थापित करना है।जिनसे समाज की व्यवस्था न्यायोचित बने और राष्ट्रीय समरसता की दिशा में अभिवृद्धि हो ।"[1] उनके विचार मात्र अमुक जनविभाग पर केन्द्रित नहीं बल्कि समस्त शोषित एवं दमितों के लिये थे । फिर भी विचार के मूल में जतिगत असमानता का उन्मूलन ही प्रमुख था।उनका असर ज्यादतर दलित समाज तक सीमित रखने की वजह यही है । सुभाष गातडे की राय में -"अम्बेदकर के आँदोलन का सबसे स्पष्ट प्रभाव यही रहा है कि सभी दलित जातियों में शिक्षा के प्रति रुचि बढी । इन पढे-लिखे दलितों में कईओं ने सरकारी नौकरी, सार्वजनिक उद्यम, और अध्यापक का पेशा अपनाया । इस समज का अच्छा-खासा हिस्सा अब पहली पीढी की तरह् मध्यवर्ग नहीं है।"[2] फिर भी दलितों के मन में सदियों की गुलामी की छींटें मौजूद है। दलितोद्धार अब भी गहन समस्या है ।

1दिनेश राम,समकालीन हिन्दी कहानी और अम्बेदकरवाद

2 सुभाष गातडे,,नये फायदे ,पुरानी गुलामी,वर्तमान साहित्य,मार्च,2009

दलित चिंतन सदियों की गुलामी का विस्फोटन है । समाज में इंसान की हैसियत से जीने के दलित मन की कामनाओं को यह वाणी देता है । पढ-लिखकर अपने पैरों पर खडा होने के लिये और संगठित होकर समाज से समान अधिकार माँगने के लिये काबिल बनने का आह्वान देता है । स्वयं शोषक न बने, किसी के शोषण का शिकार भी न बने, दलित चिंतन ऐसी संवेदना प्रदान करता है । अवाम को अपने आप से तथा समाज से नित संघर्षरत रहने का सन्देश देता है ।

नारीवाद

नारी पूरे मानव कुल की आधी आबादी है । फिर भी दोयम दर्जे की नागरिक मानी जाती है । मातृसत्ता की जगह पितृसत्ता की प्रतिस्थापना से लेकर नारी की यही दुर्दशा है । पर आधुनिक युग में नारी अपने परिवेश से सजग होने लगी है । समाज में एक नागरिक के रूप में अपनी भूमिका को समझने लगी है । अपने पैरों पर खडे होने की क्षमता हासिल करने लगी है । नारी का यह आत्मज्ञान ही दर असल नारीवाद है ।

नारीवाद का सैद्धानतिक विरासत पाश्चात्य की है । अपनी सार्वलौकिकता उसे भारत तक खींच लाया है हालांकि भारतीय नारीवाद तथा पाश्चात्य नारीवाद में खास अंतर है । नारीवाद के उग्र नारीवाद, उदार नारीवाद, समाजवादी नारीवाद आदि प्रभेदों में पश्चात्य उग्रनरीवाद को प्रश्रय देते हैं, जो पुरुष विरोधी है । " उग्र नारीवाद का पूरा चिन्तन पुरुषविरोधी है ।"[1] भारत की सामाजिक व्यवस्था की नींव परिवार पर है, जहाँ पुरुष और नारी की अपनी अपनी अलग अलग भूमिकाएँ हैं । पुरुष से हट्कर नारी की और नारी से परे पुरुष की उपस्थिति पूरे समाज की संतुलन बिगाड सकती है । इसलिये भारतीय नारी चिंतन

1 ओमप्रकाश शर्मा,समकालीन महिला लेखन,पृ.35

ने ज्यादातर उदारता को प्रश्रय दिया, जो संगत है ।–" पश्चिम में नारीमुक्ति अंदोलन पुरुष और पुरुषों के वर्चस्व के खिलाफ था, वहीं भारतीय सन्दर्भ में नारीमुक्ति अभियान समाज की जर्जरित और दोहरे मानदंडों की पोषक मान्यताओं के विरोध में चलाया ।"[1] भारतीय सन्दर्भ में नारीमुक्ति का अर्थ नारी की पुरुष से मुक्ति का नहीं, बल्कि उन सडी-गली रूढियों से मानवमात्र की मुक्ति है, जिसमें पुरुष भी उतनी प्रभावित है जितनी नारी । नारीमुक्ति का अर्थ नकारात्मक कदापि नहीं बल्कि सकारात्मक है । वास्तव में यह एक परिवेश तथा मानसिकता का प्रतिरोध है जो पितृसत्तत्मक समाज एवं पुरुष मानसिकता की देन है ।

पितृसत्तात्मक समाज ने नारी को कभी अपनी परिधि से बाहर निकलने का मौका नहीं दिया । कभी पाशविकता, कभी भावुकता तो कभी दिमागी मूल्यबोध का शिकार बनाकर वह नारी का उपभोग करता रहा । नारी के कोमल पहलुओं को मान्यता देते हुए उसे आर्या, सुभगा, पूज्या, पतिव्रता, सति-सावित्री, सध्वि, आदि उपाधियों के खेमे से बाहर न आने दिया । नारी ने भी उस दिमागी प्रवंचना से अनजान आपे में सिकुडती चली आयी । जब कभी किसी मतिशील औरत को गलती महसूस हुई, तो उसे पछाडने में भी पुरुषवर्चस्विता कभी पीछे नहीं रही । उसके लिये कुलटा, छिनाल, कर्कश, व्यभिचारिणी, शूद्रा, जैसे शब्दों का भी यथावसर प्रयोग करता रहा । इस वजह से स्त्री अस्मिता मात्र पुरुष की खेमे में सिमटती रही । " पितृसत्तात्मक व्यवस्था के शोषण का यह आलम था कि स्त्री एक जीवित सम्पत्ति में बदल गयी, जिसे जब चाहे तब कैश किया जा सकता था । यहाँ तक कि खरीदा बेचा जा सकता था ।"[2] पुरुषसत्ता की इस रहस्यमयी चाल को समझने में नारी अक्सर असमर्थ रही । उसके पास न सत्ता की सुविधा थी न शिक्षा की उपलब्धि । वह अपने

1गीता सोलंकी,नारीचेतना और कृष्ना सोबती के उपन्यास,पृ29

2 वीणा यादव,हिन्दी कहनी में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति,पृ3

पैरों पर लगी बेडी को पाजेब समझकर चूमती आयी । अगली पीढी को वजूद बतौर उसे सौंपती आयी । गोया नारी को गुलामी की चकमा विरासत में मिलने लगीं । उसका मन सर्वंसहा होता गया । नारी मुक्ति का सब से बडा गतिरोध यह मानसिकता है -" नारी मुक्ति की राह का सबसे बडी बाधा नारी के मन-मस्तिष्क में पुरुषवादी मूल्यों का वह अनुकूलन है, जो उसके शोषण को सहज, स्वाभाविक व उचित ठहराकर नारी दासत्व को परम्परा, मर्यादा, शील, कुल-सम्मान व पतिव्रत जैसे पवित्र मूल्यों के आवरण में प्रस्तुत करता है ।"[1] स्त्री को उसकी पुरुषवादी मूल्यबोध से मुक्त कराना नारीवाद का उद्देश्य है ।

भारतीय नारी चिंतन पुरुष के खिलाफ नहीं है । उसके अनुसर पुरुष भी व्यवस्था का उपादान है । अपने पूर्वजों के बनाये गये रास्ते पर रगडता एक मोहर मात्र है । वह शिकारी नहीं स्वयम शिकार है । समाज में जिस तरह नारी बनाई जाती है, ठीक उसी तरह पुरुष भी बनाया जाता है । विख्यात नारी चिंतक सिमोन द बोअर की राय में- "उसकी नियति में तो पुरुष होना ही लिखा है । अतः अनिच्छा से भी वह शोषक हो जाता है और स्त्री शोषित । स्त्री अहेरी के जाल में फसी हुई एक शिकार।कभी वह विद्रोह करती है, क्रूर हो जाती है किंतु अन्याय और दमन की साझेदारी तो है ही, अतः गलती वास्तव में पुरुषों की ही बनाई व्यवस्था की है ।"[2] गोया नारीवाद पुरुष की निस्सहायता समझता है । भारतीय नारी चिंतक भी इस तथ्य को मानते है -" नारीवाद पुरुष का विरोधी नहीं है, उस पुरुष प्रवृत्ति का विरोध यह

---

1 1गीता सोलंकी, नारीचेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास,पृ30

2 सीमोन द बोआर,स्त्री उपेक्षिता,342

करता है, जो नारी को व्यक्ति नहीं वस्तुरूप में देखता है।"[1] गीता सोलंकी की राय में -" पूरा दोष न पुरुषों का है, न स्त्रियों का । सच्चाई यह है कि परिवेश, संस्कार, पुरुषप्रधान समाज की मानसिकता ने स्त्री-पुरुष दोनों की विचारधारा को निश्चित दायरे में बाँध दिया है ।"[2] अतः नारीचिंतन ने दोहरे दायित्व को अपनाया है । नारी को उसके शोषण के बाडे से निकालना तथा उसके सहयात्री, पुरुष को उसकी गलतियों का एहसास दिलाना । लेकिन यह काम आसान नहीं है।

अपने दुमुखे दायित्व को नारी को चाहिये कि वह स्वयं सुषुप्ति से जागे, स्वावलम्बी बने और अपना नया इतिहास रचे । आर्थिक स्वावलम्बन नारीमुक्ति का अहम मुद्दा है । आर्थिक स्वावलम्बन से नारी स्वयमेव पुरुषवर्चस्विता से बाहर निकल सकती है –" स्त्री अगर आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हो तो उसपर ज़ुल्म नहीं होंगे और होंगे भी तो बहुत कम होंगे । स्वावलंबी बनने से स्त्री का स्वाभिमान बढता है उसका आत्मसम्मान भी ।"[3] स्वावलंबन स्त्री में स्वाभिमान पैदा करता है । स्वाभिमान उसे चेतना सम्पन्न बनाता है । चेतना उसे सक्षम बनाती है और संगठित होने की प्रेरणा देती है । स्त्री शक्तीकरण के लिये स्वाभिमान, स्वावलंबन तथा संगठन ज़रूरी है ।

भारत के मध्यवर्गीय एवं निम्नमध्यवर्गीय नारी जीवन में नारीवादी चिंतन का प्रभाव अवश्य पडा है । इनके मन में पारिवार के प्रति गहन आस्था है । अपने जीवन में ये औरतें पुरुष से बस इतनी ही कामना करती हैं कि वह जितना स्वयं मानव समझता है उतना उन्हें

---

1 डॉ,सौ मंगल कप्पीकेरे,साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं में नारी,पृ56

2 गीता सोलंकी,वारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास,पृ.37

3 रमणिका गुप्ता,स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने,पृ15

भी समझे। घर व बच्चों की ज़िम्मेदारियों को उस पर थोपने के बगैर वह भी थोडा हिस्सा बाँटे । अपने कर्मक्षेत्रों में समान वेतन पाने में उसे ज़रा मदद करे । अपनी शारीरिक कमज़ोरी का लाभ वह स्वयं न उठाये और किसी को न उठाने दे । सर्वोपरि पुरुष के कदम से कदम मिलाने की उसकी क्षमता का अंगीकार करे । बस अपनी पहचान में भारतीय नारी जीवन खुश है ।

वैसे भी बराबरी के वैधानिक अधिकार भारतीय नारी को प्राप्त है, आवश्यकता उन्हें सामाजिक मान्यता एवं व्यावहारिकता प्रदान करने की है । उसके लिये आवश्यक है कि पुरुष अपना सोच बदले । पुरुषमानसिकता में सुधार के बिना समाज में सुधार असम्भव है। जिस प्रकार पुरुष अपनी जीवनशैली, अपना रोज़गार स्वयं निश्चित करता है, उसी प्रकार स्त्री को भी करने दे । एक ही छत के नीचे आपसी ताल-मेल का संतुलन करके रहना अधिक सुखद होता है, (बनिस्बत स्त्री को अपने अनुसार चलाने के अहंकार को पुष्ट करने केलिये तैयार न रहे।) पुरुष यदी स्त्री के लिये सच्चा सहचर बन जाए, सच-मुच सुख-दुख का सहभागी बनकर उसके विकास में बाधक बनने के बरक्स सहायक बने तो सारे द्वन्द्व तथा अलगाव स्वयमेव समाप्त हो जायेंगे ।

नारीवाद का प्रखर स्वर प्रतिशोध का नहीं, प्रतिरोध का है । पुरुषवर्चस्विता के खिलाफ तथा खुद की हीनताबोध के खिलाफ निरंतर संघर्षरत रहने के लिये नारीवाद आह्वान देता है । नित संघर्ष से वह स्वयं काबिल बने, आर्थिक स्वावलम्बन से आत्म को पहचानें । पर कहीं अपने विकास संघर्ष के दौरान वह पुरुष का प्रतिस्पर्धी न बनें बल्कि पुरुष मानसिकता पर सीमित रहें ताकि आगामी पीढियों के सम्मुख स्वयं दोषी न रहे । गोया नारीवाद नारी एवं उसके नितसंघर्ष को प्रश्रय देता है ।

हिन्दी कहानी में अवाम की संघर्ष चेतना के विभिन्न आयाम

हिन्दी कहानी जगत विभिन्न आंदोलनों से सम्पन्न है जैसे प्रगतिवादी कहानी, नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी समांतर कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, जनवादी

कहानी और समकालीन कहानी । सभी अन्दोलनों की अपनी अपनी खूबियाँ और खामियाँ है । खास तौर पर अवाम की कसौटी पर इनकी तुलना विवादास्पद है ।

पूर्व प्रेमचन्द युगीन कहानियाँ मनोरंजन पर केन्द्रित थी । इसलिये अवाम एवं उनका संघर्ष नहीं के बराबर थे फिर भी माधवप्रसाद सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' जैसी कहानियाँ अपवाद है । किशोरीलाल गोस्वामी, अचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बंगमहिला, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि उस दौर के प्रमुख कहानीकार है ।

प्रेमचन्द की कहानियों में मेहनतकश अवाम एक संपूर्ण इकाई बनकर कहानी जगत पर उतरता है । कहानियाँ किसान-मज़दूरों को वाणी देती है । इस दौर का एक और महान कहानीकार जयशंकर प्रसाद है । उनकी कहानियाँ ज्यादातर ऐतिहासिक, दार्शनिक तथा भावात्मक थी । इसलिये ज्यादातर अवाम से दूर । आचार्य चतुर्सेन शास्त्री, रायकृष्णदास, बेचेन शर्मा उग्र, वाचस्पति पाठक, विनोदशंकर व्यास, विस्वाम्भर्नाथ जिज्जा, जि.पि.श्रीवास्तव, राजा राधिकारमण सिंह, विश्वम्भर्नाथ शर्मा कौशिक, पँडित ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्दवल्लभ पंत, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि अन्य प्रमुख कहानीकार हैं ।

प्रेमचन्द के बाद प्रगतिवादी दौर में कहानी मार्क्सवाद पर केन्द्रित होती है । अवाम को 'सर्वहारा' की उपाधी मिलने लगती है । फिर कहानी मनो वैज्ञानिक धरातल को अपनाती है, लेकिन यह आशाजनक नहीं रहा । यश्पाल जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि इनके तहत आते प्रमुख कहानीकार हैं ।

स्वतंत्रतप्राप्ति के साथ हुए भीषण मार-काट, निराशा तथा बेकारी अस्तित्ववादी दर्शन की तरफ लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया । यह नयी कहानी की शुरुआत थी । नयी कहानी आंदोलन ज्यादतर शिक्षित मध्यवर्गीय जीवन याथार्थों पर केंद्रित था । मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, निर्मल वर्म, राँगेय राघव, मार्कण्डेय, फणीस्वर्नाथ रेणु, धर्मवीर

भारती, अमरकांत, रामकुमार, भीष्म साहनी, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी, कृष्णा सोबती, आदि नई कहानी आंदोलन के प्रमुख कहानीकार हैं ।

1960 के बाद हिन्दी कहानी जगत पर अकहानी आंदोलन का आविर्भाव हुआ । सेक्स और निरर्थकता बोध को 'नये मूल्य' का नाम देकर कहानी में पिरोने की कोशिश की गई । गंगा प्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र कलिया, दूधनाथ सिंह, प्रयाग शुक्ल, सुधा अरोडा, रमेश बक्षी, ज्ञानरंजन, रमेष बक्षी, श्रीकाँत वर्मा, विजय मोहन सिंह, विश्वेश्वर आदि इस आंदोलन के प्रवर्तक रहे ।

कहानी क्षेत्र में अपनी अस्मिता को मज़बूत बनने के इरादे से 1964 में सचेतन कहानी का आविर्भाव हुआ, जिसके तहत जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है । लेकिन वह भी अल्पायू रहा । महीप सिंह, मनहर चौहान, सुरेन्द्र अरोडा, राम कुमार भ्रमर आदी इस आंदोलन के प्रवर्तक रहे । सचेतन कहानी के बाद श्री अम्रुत राय के नेतृत्व में सहज कहानी तथा राकेश वत्स के नेतृत्व में सक्रिय कहानी अदि आंदोलन चले । दोनों फुटकल ही रहे ।

अकहानी की प्रतिक्रिया स्वरूप कमलेश्वर के नेतृत्व में 1964 के आसपास समांतर कहानी आंदोलन भी शुरू हुआ था । समांतर कहानी का प्रमुख मुद्दा आम आदमी का रहा। इसमें मध्यवर्गीय एवं निम्न वर्गीय स्थितियों तथा उनकी समस्याओं -विषमताओं का अंकन हुआ । समान्तर कहानी का प्रचार मुख्यतः सारिका पत्रिका के माध्यम से हुआ। पत्रिका के रुकने के साथ आँदोलन भी समाप्त हो गयी । कमलेश्वर, कामता नाथ, रमेश उपाध्याय, मधुकर सिंह, धर्मेन्द्र गुप्त, इब्राहिम शरीफ, से.रा.यत्री, सुधीर, सतीश जमाली, दामोदर सदन, श्रवण कुमार, नरेन्द्र कोहली, हिमाँशु जोशी, मणि मधुकर, निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग आदि का नाम उल्लेखनीय हैं ।

हिन्दी कहानी जगत में अवाम के पक्ष में आये सभी आंदोलन विवादों के कटघरे में हैं। "अकहानी असामान्य और अतिरंजनापूर्ण चरित्रों के इर्द गिर्द बुनी गयी। सचेतन कहानी में सभी वर्गों के पात्र चित्रित हुये लेकिन मामूली आदमी ने सचेतन साहित्यकारों को बहुत अधिक आकर्षित नहीं किया। फिर आया मामूली आदमी (आम आदमी) की हड्डियों पर अपने स्वार्थ का कबाब सेंकने वाला समांतर कहानी आँदोलन। इस आदमी के केंद्र में स्थित आम आदमी खोजकर निकाला हुआ और बहुत कुछ गठा हुआ था।"[1] प्रगतिवादी कहानी पर नारेबाज़ी का दोष पहले से लगा हुआ था। समांतर कहनी भी इसका अपवाद न रही।

आम आदमी के दावे पर आये समांतर कहानी आंदोलन पर सबसे अधिक आरोप लगाया गया। इस आंदोलन के ढोंग पर श्री भैरवप्रसाद की उक्ति उल्लेखनीय है -"दिखाने को तो दिखाओ कि आम आदमी की पक्षधर है, लेकिन किसके विरोध में यह पक्षधरता है, इस सवाल से साफ बच जाओ। फिर पक्षधरता का क्या मतलब हो सकता है, सिवय हवा में लाठी भाँजने के। यह दृश्य कितना अद्भुत है की आम आदमी की लाठी तो बडे ज़ोरों से भाँजते रहे है लेकिन किसी को चोट नहीं लगती। आम आदमी को इतना बडा धोखा कोई पूँजीपति के चाकर कवि ही दे सकते है। इनका काम ही क्रांति-क्रांति चिल्लाकर क्रांति की पीठ में छुरा भोंकना है।"[2] पंकज बिष्ट ने खुलकर बताया है कि-"समांतर कहानी में लफ्फाजी होती है और कहानियाँ पत्रकारिता के दबाव में लिखी जाती हैं।"[3]

1 डॉ.वेदप्रकाश अमिताभ,हिन्दी कहानी का समकालीन परिदश्य,पृ.23

2 भैरवप्रसद गुप्त,साहित्य में आम आदमी,अवकाश,पृ.67।

3 पंकज बिष्ट,जनवादी कहानी,सँ.रमेश उपाध्याय,पृ.82

यह सच है कि इन अलग अलग आंदोलनों ने एक हद तक कहानी सहित्य को विकास की और बढाने के साथ उसकी डिग्रिटी को फीका भी कर दिया है। कहानी लेखन को पेशेवर बना दिया। जीविकोपार्जन स्वरूप किसी न किसी आंदोलन से जुडे रहने के लिये कहानीकारों को मजबूर कर दिया। नतीजतन कहानी में से कृत्रिमता की बू आने लगी। इस मौका परस्ती अन्दाज़ को सूचित करते हुए मधुरेश लिखते हैं –" हिन्दी कहानी सम्बन्धी आंदोलन ने जहाँ रचनात्मक सक्रियता और ऊर्जा का माहौल बनाया वहीं लोगों को ऐसा लगता था कि इन छोटे-छोटे आंदोलनों में बहकर कहानी अपनी मूल गंतव्य से सरक गयी है। कहानी इस यथार्थ का अंकन नहीं कर पा रहीं है जिससे प्रतिबद्ध होकर उसने अपनी विकास-यात्रा शुरू की थी और जिसके लिये प्रेमचन्द ने उसके लगभग आरम्भ में ही अनथक संघर्ष करके उसे एक प्रौढ परिपक्व रूप दिया था। जो लोग इन आंदोलनों में शामिल थे, वे तो अच्छी बुरी कहानियाँ लिखकर अपने आप को कहानी सम्बन्धी चर्चा पर बने रहे, लेकिन बहुत से ऐसे लोग थे जो आंदोलन से जुडे न होने पर भी सार्थक और महत्वपूर्ण लेखन कर रहे थे। आंदोलनों की गहमा-गहमी इन लोगों को हाशिये पर ठेल दिया या कभी-कभी अपनी ज़रूरतों के तहत उनका इस्तेमाल किया गया।"[1] प्रत्येक लेखक का अपना अलग दृष्टिकोण होता है जो, उसे अलग अस्मिता प्रदान करता है। अपने अलग दृष्टिकोण के सहारे ही वह प्रत्येक समस्या पर विचार सकता है। इसलिये एक ही समस्या पर लेखकों की अलग अलग मत हो सकते हैं। लेकिन इन अभिमतों में कहीं किसी बात पर सहमती भी सम्भव है। इन वैचारिक विभिन्नताओं को नज़रन्दाज़ कर समानताओं के तहत लेखकों को किसी नारे के के पीछे जुडाने से लेखक की तूलिका गुलामी स्वीकारने में मजबूर होती है। लेखक को समझौता करना पडता है। अपने ज़मीर से मूँह मोडना पडता है। फलस्वरूप उसकी रचना में

1 मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास,पृ135

कृत्रिमता आने लगती है । वह अपने आप को दोहराने लगता है। यह लेखक का पतन है । यह उसे पाठकों से अलगाता है ।

कुछ हस्तियाँ ऐसे भी हैं जिन्होंने केवल अपनी आत्मा की सुनी है । उनकी संवेदना सीधे पाठक से हृदय संवाद कर पायी है हाशिये पर खडा होकर भी उनकी तूलिका सार्थक हुई । ऐसे लेखकों की एक परम्परा हिन्दी कहानी जगत पर मौजूद है जिसके शुभारम्भ प्रेमचन्द से होता है। उन्होंने अन्य लेखकों की तुलना में अपने आप को सदा अवाम के संघर्ष से जुडा रखा । विभिन्न आँदोलनों से परे उनकी कहानियों में अवाम का प्रतिफलन ढूँढना समीचीन है । आगे उनका अध्ययन है ।

प्रेमचन्द की कहानियों में अवाम

प्रेमचन्द की कहानियों में अवाम का बहु आयामी प्रस्फुटीकरण मिलता है । हालांकि प्रेमचन्द के प्रारम्भिक दौर की कहानियाँ आदर्शवादी हैं, लेकिन धीरे-धीरे उनकी तूलिका यथार्थवाद से गुज़रते हुए अंतिम दौर तक आते आते विद्रोही बन जाती है । अवाम के परिप्रेक्ष्य में इनकी खास भूमिका है ।

'ठाकुर का कुआँ' की गंगी, ठाकुर के कुए से पानी लेने का साहस करती है । वह अपने जीवन यथार्थों के प्रति सजग है । इसलिये सोचती है-" हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊँच हैं ? इसलिये कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं । यहाँ तो जितने हैं एक से एक छोटे हैं । चोरी ये करें, झूठे मुकदमे ये करें.......किस किस बात में है हमसे ऊँचे ।"[1] गंयी को अपने और ठाकुर के बीच केवल एक तागे का फरक दिखती है । आदमी-आदमी में ऊँच-नीच का भेदभाव वह नही समझ सकती । उसके लिये अपना जीवन संघर्ष और बीमार पति की प्यास ही मुख्य है। इसलिये वह तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं को ललकारकर ठाकुर के कुए से

---

1 ठाकुर का कुआँ, प्रेमचन्द

पानी भरने का जोखिम ले लेती है । लेकिन विद्रोही होकर भी कहानी में उसकी पराजय चित्रित है । उसे पानी छोडकर भागना पडता है ।

'सदगति' कहानी का दुखी चमार सभी प्रकार के शोषण का शिकार होकर मरता है। आखिरी दम तक उसे होश न आयी कि समाज के संभ्रांत्वर्ग के ज़रिये उसका शोषण हो रहा है । दुखी की लाश को रस्सी से बाँधकर खिसकाते हुए गाँव के बाहर ले जाया जता है । उधर उसके शरीर को गीदड, गिद्ध तथा कुत्ते और कौए नोचते हैं । संरचना की मार्मिकता के बावजूद कहानी का कोई पात्र सचेत न बनता है सिवाय गाँव का एक गोंड जाति का एक आदमी जिसने चमारों को पुलीस का नाम देकर लाश के पास जाने से रोकता है ।

'मृतकभोज' की रेवती अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को समझ सकती है-"बिरादरी ने तब हमारी बात न पूछी, जब हम रोटियों को मोहताज थे । मेरी माता मर गयी, कोई झाँकने तक न गया । मेरा भाई बीमार हुआ, किसी ने खबर तक न ली । ऐसी बिरादरी के मुझे परवाह नहीं है ।"[1] धर्म की आड पर शोषण तथा बिरादरी की खोखली रिशतेदारी को रेवती समझ सकती है, अपनी असहमती प्रकट कर सकती है । लेकिन कहानी में रेवती आत्महत्या करती हुई चित्रित है ।

दर असल बात यह है कि प्रेमचन्द यथार्थ एवं कल्पना के बीच सामंजस्य चाहते थे। उनकी ही राय में -"अगर यथार्थ को हूबहू खींचकर रख दें तो उसमें कला कहाँ है । कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है । कला दिखती तो यथार्थ है, लेकिन यथार्थ होती नहीं । उसकी खूबी यह है की वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो ।"[2] इसी वजह उनकी कहानी में कोई ना कोई जीवन से सजग है, लेकिन कहानी के अंत में उसका विद्रोह

[1] मृतक भोज, प्रेंचन्द

[2] भूमिका, मानसरोवर, प्रेमचन्द

पराजित रह जाता है। प्रेमचन्द की इच्छा रही कि अपने पात्रों की पराजय के ज़रिये पाठकों में सहानुभूति जगें और यों परिवर्तन की पहल बने।

प्रेमचन्द के अंतिम दौर की कहानियों में उनकी यह उम्मीद खो जाती है। 'सवा सेर गेहूँ', 'पूस की रात', 'कफन' जैसी कहानियों में मनोविश्लेषण का प्रभाव भी है। 'सवा सेर गेहूँ' में कडी मेहनत के बावजूद ऋण मुक्त होने में असमर्थ 'शंकर' की मानसिकता यों चित्रित है -"शंकर आशाहीन होकर उदासीन हो गया। वह ज़रूरतें, जिन्हें वह साल भर तक टाल रखा था, अब द्वार पर खडी होनेवाली भिखारिणी नहीं थी, बल्कि छाती पर सवार होने वाली पिशाचिनियाँ थी; अपनी भेंट लिये बिना जान नहीं छोडतीं। कपडों में चकत्तियों के लगने की भी एक सीमा होती है। अब शंकर को चिट्ठा मिलता तो वह रुपये नहीं जमा करता, कभी कपडे लाता, कभी खाने की कोई वस्तु। जहाँ पहले तम्बाखू ही पिया करता वहाँ अब गंजे और चरस का चस्का भी लगा। उसे अब रुपये अदा करने की कोई चिंता नहीं थी, मानो उसके ऊपर किसी का एक पैसा भी नहीं आता। पहले जूडी चढी होती थी, पर वह काम करने अवश्य जाता था, अब काम पर न जाने केलिये बहाना खोजा करता।" यहाँ शंकर अपनी निष्क्रियता से अपना विरोध अदा करता है। कहानी के अंत में आकर प्रेमचन्द को 'फुट्नॉट'देना पडा कि -'पाठक यह कोई कपोलकल्पित न समझिये। यह सत्य घटना है। ऐसे शंकरों से और विप्रों से दुनिया खाली नहीं।' स्वयं शंकर से कोई प्रकट विद्रोह के बगैर विनती स्वरूप लेखकीय उपस्थिति ही प्रेमचन्द को जंचती है।

इसका विकास या विद्रोह 'पूस की रात', 'कफन' जैसी कहानियों में द्रुष्टिगोचर है। कफन के घीसु-माधव चारित्रिक स्तर पर इतना गिर चुके हैं कि उस औरत के कफन के लिए एकत्रित पैसे से दारू पीते हैं, जिसने खून पसीनाकर दोनों के पेट भरती आयी हैं। 'पूस की रात' का

हलकू भी किसानों के सभी आदर्शो को भूलकर फसल को नीलगायों के मुख में छोडता है । दोनों प्रतिक्रियाओं में जो चेतना निहित है वह तिरस्कार की है । दोनों अपनी जगह संगत है, अल्बत्ता ।

दरअसल अपने अंतिम दौर की ये कहानियाँ खुद के खिलाफ उनका विद्रोह हैं । पूर्वलिखित अपनी तमाम कहनियों के प्रति उनका कारगर विद्रोह । हालांकि उनका विद्रोह किसी व्यक्ति के प्रति नहीं था, बरक्स एक सडी-गली व्यवस्था के प्रति था, जिसके तहत अवाम की कुल सम्पत्ति-मेहनत, मूल्यहीन बन जाती है । यद्यपि प्रेमचन्द ने ज्यादातर सहानुभूति को ही अपनाया है । लेकिन उनके पास जो नरम दिल था वह अवाम का तरापा सुन सकता था ।

यशपाल

यशपाल प्रेमचन्द के ही परम्परा का लेखक है । "प्रेमचन्द के कथ्य को यशपाल ने नहीं अपनाया। किंतु यशपाल की संवेदना को प्रेमचन्द की संवेदना का ही गुणात्मक परिवर्तन कहा जाना चाहिये ।"[1] यशपाल ने अपनी कहानियों में वर्गसंघर्ष,मनोविश्लेषण और पैनी व्यंग्य को प्रश्रय दिया । अतः मार्क्स के साथ-साथ फ्रोयड के विचारों से भी वे प्रभावित थे ।

यशपाल समाज से ऐसे पात्रों को चुनते हैं जो बिलकुल अवाम की कोटि में आते हैं, किंतु उनकी लेखनी की जादूगरी पाठकों के सम्मुख उसे खास बना देता है । 'हिंसा', 'कर्मफल' जैसी कहानियाँ उदाहरण हैं । 'हिंसा' में एक बेकार मुसलमान का चित्रण हुआ है, जिसने एक ब्रिगेडियर का खून किया है, जिससे उसकी किसी भी तरह की दुशमनी नहीं थी या जो उससे बिलकुल अपरिचित था । वह आदमी कई दिनों से बेकार घूम रहा था, उसकी बीवी उसे

1 बच्चन सिंह,आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ.372

छोड चुकी थी । बिकने के वास्ते उसके पास एक खंजर थी जिसकी कोई माँग नहीं थी । वह इस ज़िन्दगी से हार चुका था । इसलिये मौत के बाद बहिश्त पहूँचकर 'दूध और शहद की दरिया के किनारे, खजूरों के बाग में अपनी दाढी में हूरों से सुगन्ध मलवाने के खयाल' कर रहा था । मुसीबत यह थी कि अपने धर्म की सीख के अनुसार बहिश्त पहुँचना 'गाज़ी' बनने से ही सम्भव था । उसके लिये एक काफिर को मारना चाहिये था । उस अनपढ गँवार की दृष्टि में सबसे बडा काफिर वह ईसाई ब्रिगेडियर था । इसलिये उसने ब्रिगेडियर को मारा । यह घटना सही-गलत, ज़िन्दगी-मौत जैसी अनेक घटनाओं पर प्रश्नचिह्न डालती है । कहानी इसी सवाल के साथ समाप्त होती है -"क्या हिंसा-अहिंसा का विवेचन हम इरादे से या विचार से कर सकते हैं ? अवाम का यह हिंसात्मक तेवर तथा मूल्य पर प्रश्नचिन्ह् यशपाल की कहानियों का अलग अन्दाज़ है ।

समाज में वेश्याएँ घृणा योग्य समझी जाती हैं । लेकिन वेश्यावृत्ति उनकी मनमानी नही मजबूरी है । भूख उनके सम्मुख बडी समस्या है । 'दुखी-दुखी' कहानी में इसकी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति हुई है । कहानी में एक खाते-पीते परिवार का लडका अपनी यात्रा के दौरान सारा धन खोकर एक वेश्या की कोठरी से खाने केलिये मजबूर हो जाता है । कहानी से पाठक भूख की समस्या की अनजाने पहलुओं से अवगत हो जाते हैं । कहानी अवाम की बुनियादी समस्या भूख पर केंद्रित है ।

'कर्मफल' कहानी अमीरों के ऐशो-अराम तथा अवाम की ज़रूरत की विवेचनात्मक तुलना है । कहानी में बिन्दी का बच्चा भूख से मर चुका है । लेकिन विडम्बना है कि उस मूसलधार बारिश में एक अमीर के दालान पर वह अपने मरे बच्चे के लिये रो भी नहीं सकती चूँकि अमीर की बीमार बेटी की नींद में खलल पडेगी । इधर गरीबों से अपना दुख जताने का अधिकार भी छीन लिया जाता है । 'दुख का अधिकार' कहानी में भी समान सन्दर्भ चित्रित

है । एक माँ अपने बेटे की अकाल मृत्यु के ठीक अगले ही दिन तरबूज़े बेचने बाज़ार चली आती है, ताकि अपनी बहु तथा पोतों के हलक के नीचे श्वास आ जाये । यद्यपि समाज उसको छिनाल कहता है, उसे अपनों की ज़िन्दगी की परवाह है । अपने दिल को वह कबके कडा बन बैठी है ।

'पराया सुख' कहानी में अपनी ही ज़िन्दगी को किसी गैर की अमानत होते हुए पाकर निस्सहाय खडी निम्न मध्यवर्गीय औरत का चित्रण है । जीवन को किनारा लगाने में उस औरत को धनिक सेठी की मदद लेनी पडती है । सेठी बदले में कुछ नहीं माँगता बल्कि अपने अदृश्य पाश से उर्मिला की कोख पर ताला लगा देता हैं । अतः उर्मिला आगे कभी माँ नहीं बन सकती । क्योंकि सेठी ऐसा नहीं चाहता । सेठी जब चाहे जहाँ चाहे उनके दिये कपडे पहनकर ऊर्मिला को उनके सामने आना पडता है । इस अजीबोगरीब माहौल को यशपाल ने यों प्रस्तुत किया हैं -"सेठी कितना संयमी, कितना उदार, कितना विशाल हृदय है.........उसने किस तरह सब कुछ दे दिया है........उर्मिला ने सेठी को कुछ भी दिया नहीं । देने का मौका और साहस भी नहीं । सेठी ने सब चीज़ों पर अधिकार कर लिया है और कितनी सरलता से । मानो सब चीज़ों की एक चाबी होती थी, जिसे उठाकर अपने जेब में रख लिया हो। उस जाल से बाहर निकलने का कोई चाल न उर्मिला के लिये, न बल्लू के लिये न मदन केलिये है । मानो वे सब बिक गये है ।"[1] एक तरफ सेठी की बौद्धिक उपनिवेश का घुटन, दूसरी तरफ ऐशो-आराम के प्रति लालस अपना मन। दोनों के द्वन्द्व के बीच हतप्रभ उर्मिला की तस्वीर बहुत ही त्रासद है ।

अवाम का तरापा आखिर भूख से उबरने केलिये है । यश्पाल की कहानियों में इसकी तीखी अभिव्यक्ति हुई है । यथार्थ की प्रखरता कभी-कभार अतियथर्थवाद की बू निकालती है

1 यशपाल,पराया सुख,

'अभिशप्त' कहानी में एक पाँच साल का लडका अपने नवजात भाई को मार देता है । कत्ल की वजह थी कि 'उसकी अम्मा आटे का खोल नन्हें को ही खिलाती थी' । पाँच साल का वह लडका जनम-मरण का फरक नहीं जानता लेकिन भूख से वाकिफ है । 'आदमी का बच्चा' कहानी में भी समान प्रकरण है । माली की बच्ची जब भूख से मरती है, मालिक की बेटी 'डोली' पूछती है –"आया हम भी भूख से मर जायेंगे ?" आया उसकी घूँघराली लटों को हाथों से सहलाती हुई बताती है-'भूख के मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे!' और अपने लल्लू की याद में उसकी गला रूँघने लगता है ।"[1] वह औरत हालातों का मारा है । ज़माना उसे स्वयं कमीना मानने की नसीहत देता है । अवाम की हीनताबोध का यह दस्तावेज़ है । कहानी में कुत्ते के पिल्ले को गरम पानी में डुबोकर मार दिये जाते हैं यह देखकर 'डोली', मेहतर के बच्चे को भी मार देने की बात बताती है । लेकिन माल्किन गुस्से से कहती है -"दिस ईज़ वेरी सिल्ली डोली-कभी आदमी के बच्चे के लिये ऐसा कहा जाता है।" कुत्ते से भी बदतर ज़िन्दगी है, पर अवाम को कुत्ते की मौत भी नहीं नसीब होता ! कैसी विडम्बना है । एक तरफ अवाम की दुरवस्था का त्रासद चित्रण है तो दूसरी तरफ मध्यवर्गीय खोखलापन पर करारा व्यंग्य है भी कहानी में प्रस्तुत है ।

यशपाल की ज्यादातर कहानियाँ समस्या प्रधान है । उनमें कल्पना और विचार को प्रमुखता दी गयी है । इसलिये कभी- कभार उनकी कहानियों में एकरसता की ऊब महसूस होती है । उनकी कहानियों में अवाम के जीवन यथार्थ मार्मिक ढँग से अंकित हैं । यथार्थ से वे संघर्षरत हैं लेकिन किस तरह उबरा जाय, उससे अनजान हैं ।

---

1 यशपाल आदमी का बच्चा

फणीश्वर्नाथ रेणु

नयी कहानी के दौर में अपनी अलग अन्दाज़ की वजह् से मान्यता प्राप्त कहानीकार है श्री फणीश्वरनाथ रेणु । वे प्रेमचन्द की ही परम्परा के हस्ताक्षर हैं । हालांकि प्रेमचन्द की तरह् अवाम के शोषित-पीडित मानसिकता तथा वातावरण से परे उनके रागात्मक जीवन ही उनकी कहानियों की विशेषता है । मधुरेश की राय में -"रेणु की कहानियों का संसार मुख्य ऐसे लोगों से निर्मित है, जो गाँव की तरफ किसी हद तक रोमानी मोह् से ग्रस्त हैं और जिन्हें गाँव का सांस्कृतिक लोक, तत्विक वैभव बहुत गह्राई से छूता और बाँधता है।"[1] इस रोमानियत की वजह् से उनकी कहानियाँ अलग अन्दाज़ की हैं ।

रेणु की कहानियों में अवाम का जीवन सन्दर्भ चाहे जितना भी निम्नतर हो, अभावग्रस्तता को वे बडी सह्जता से अपनाते हैं । 'रसप्रिया' कहानी के पंचकौटी मृदंगिया का जीवन भिखारी के समान व्यतीत हो रहा है । पर उसे कोई चिंता नहीं अखरती । उसके सम्मुख सबसे बडी समस्या रमपतिया की उजडी हुई ज़िन्दगी है जिसकी एक वजह् वह् स्वयं है । संवदिया हरगोबिन का धर्मसंकट बडी बहुरिया का गाँव से चाले जाने का है, जिसे वह गाँव की लक्ष्मी मानता है । उस समस्या के सामने वह् अपनी पेशा भी भूलता है । दिन काटने की उसे परवाह् नहीं ।

'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुल्फाम' के हीरामन को गाडीवानी से बढकर कुछ भी नहीं। मन में प्रेम पाने की ललक है और ज़िन्दगी में प्रेमिका का अभाव, पर हीरामन उसे समझ नहीं सकता । मौके पर मारना उसे नहीं आता, इसलिये हीराबाई के प्रेम से वह् हाथ थो बैठता है और ऐसे हालातों से बचे रह्ने केलिये कसम लेने लगता है-अब कंपनी की

---

1 मधुरेश,नई कहानी:पुनर्विचार,पृ.103

लदनी........लालपान की बेगम का मानो बैल गाडी में बैठकर मेले में जाना ही ज़िन्दगी है।

आर्थिक कमी पर टिकी है अवाम की बुनियाद, पर रेणु की कहानियाँ अर्थ की निस्सारता दर्शाती है । पंचकौटी मृदंगिया अपनी कुल सम्पत्ति की छोटी पोटली बनाकर मोहना को सौंपकर चला जाता है । 'उच्चाटन' का रामविलास धन से ज्यादा परिवारिक सुख को मान्यता देता है । 'एक आदिम रात की महक' कहानी का कर्मा 'टिशन बाबु' के साथ जाना मना करता है, जहाँ उसकी ज़िन्दगी बदलने की सम्भावना थी, ताकि अपनी पहचान बनाये रखे जो उस टिशन से जुडी हुई है । 'आत्मसाक्षी' के गणपत को ज़मीन और वज़ीर के बीच चुनौती करना पडता है, लेकिन वह भी अर्थ को अनर्थ दिखाकर नौकरानी की कुटी की ज़िन्दगी को सीने से लगाता है ।

रेणु ने अवाम की भावात्मक तथा निर्मल इकाइयों को ही उकेरा है । इसलिये उनकी कहानियों में जीने की समस्या नहीं के बराबर है । हालांकि अवाम के सन्दर्भ में जितना प्रेमचन्द को नही छोडा जा सकता उतना रेणु को भी । दोनों की शैली एवं विचार चाहे जितना भी अलग क्यों न हो, "ये दोनों मिलकर ही साधारण आदमी का संपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करते हैं ।"[1]

भीष्म साहनी

भीष्म साहनी की कहानियाँ यथार्थ की ठोस धरातल पर खडी हैं । कहानीकार स्वयं दृष्टा की किरदार निभाते हुए पाठको से संवाद करते हैं और एक असरदार मायाजाल से पाठकों का ध्यान अपने पात्रों की तरफ खींच लेते हैं, लेकिन कहानी की सहज बढाव के साथ पात्र अप्रधान होते चले जाते हैं और उसकी तुलना में कथावस्तु या समस्याएँ मज़बूत बन जाती हैं ।

1 भारत यायावर, भूमिका,फणीस्वरनाथ रेणु:चुनी हुयी रचनाएँ

भीष्म साहनी ने अपनी कहानियों में मानव को सहज मानव की नज़रों से देखा है। इसलिये उनकी कहानियों की संवेदना अवाम की है । 'वाङ्‌चू' कहानी भारत-चीन युद्ध की विभीषिका के दौरान एक अदना चीनी आदमी पर घटित बुरी राजनीति का दृष्टांत है । वाङ्‌चू है तो अदुन्द आदमी लेकिन समाज उसे 'चीनी' की निगाहों से देखते हैं। चीनी होना या भारतीय, यह उसकी या किसी की बस की बात नहीं है । इनसान का जनम पाया है तो इनसान ही होकर रहना चाहिये, जिसकी कोशिश वाङ्‌चू स्वयं करता है लेकिन पगला ज़माना उसे चीनी की निगाहों से देखने के आदी है । कहानी में यह विडम्बना उजागर होती है ।

मौत की खौफ किस तरह इंसान को हैवान बना देता है, इसका मार्मिक चित्रण 'अमृत्सर आ गया है' में मिलता है । पाकिस्तानी सरहदों के भीतर जो हिन्दू केवल चूहे के बराबर था, सरहद पार होते ही शेर बन जता है । जान बचाने भागते मुसलमान का सर फोडने में कोई धरम उसे नहीं रोकता । नसों में विष दमकती हालतों में अवाम की जीने की ललक इस कहानी में गुंजायमान है । 'पाली' कहानी में भी ऐसा दृष्टांत है । हिन्दु के बच्चे को छूने तक इनकार करनेवाला मौलवि, उसे मुसलमान बनाये जाने पर अपनी गोदी में सुलाता है । धर्म की अंतःसत्ता ही इनसान और भगवान के साथ तदात्म्य है । और उसका सरल उपाय- सहजीवियों के प्रति ममता और प्रेम हैं । लेकिन समकालीन मतान्धता मानव-मानव में फरक करना ही सिखाता हैं । कहानीकार ने इस विडम्बना पर करारा व्यंग्य कसा है ।

'चीफ की दावत' की बूढी माँ के प्रति कोई अध्येता सँवेदनाहीन नहीं हो सकता । उपभोगवादी समाज में कहीं गुम होती तरल रिश्ते तथा स्वयं सामग्री बनते मामूली अदमी की निरीहता कहानी को भावप्रवण कर देती है ।मध्यवर्ग की उत्कर्षेच्छा पर यह कहानी कडी आलोचना करती है ।

भीष्म साहनी की कहानियों का अवतरण सहज है । पाठकों को कथ्य का अनुगमन स्वाभाविक तथा कथन सारगर्भित लगता है । अपनी लेखनी के बारे में लेखक स्वयं लिखते हैं - "मेरी अधिकांश कहानियाँ यथार्थपरक रही हैं, मात्र व्यक्ति केन्द्रित अथवा व्यक्ति के अंतर्मन पर कीन्द्रित नहीं रही हैं, कहीं न कहीं मेरे पात्रों के व्यवहार तथा गतिविधि पर बाहर की

गतिविधी का गहरा प्रभाव रहा है । बल्कि यदि यह कहें कि जिस विसंगति तथा अंतर्विरोध को लेकर कहानी लिखी गयी, वह मात्र व्यक्ति की स्थिति का अंतर्विरोध न होकर उसके आसपास के सामाजिक जीवन का अंतर्विरोध होकर, उसके व्यक्तिगत जीवन में लक्षित होता है तो कहना अधिक उपयुक्त होगा ।"[1] समाज ओर व्यक्ति के बीच उपर्योक्त लेखकीय हस्तक्षेप की वजह से उनकी कहानियों में सामंजस्य की सही उपस्थिति उपलब्ध है जो सोच प्रदान करती है । वह सोच चेतना पैदा करती है जो पूर्णतया पाठकों की अनुभूति क्षमता पर निर्भर है ।

अमरकांत

अमरकांत की कहानियों में ज़िन्दगी का बडा मोल है । ज़िन्दगी, चाहे कितनी भी विडम्बनाओं के अधीन हो, अमरकांत का अवाम उसे जीना चाहता है ।

'ज़िन्दगी और जोंक' कहानी का 'रजुआ' निरक्षर, नीरीह प्राणि है । गाँव में वह सबका है लेकिन उसका कोई नहीं है । जब चाहे जहाँ चाहे कोई भी उसका लाभ उठा सकता है । बदले में कुछ दें तो खुश, न दें तो भी खुश । गलती के आरोप पर कोई भी उसे मार सकता है । कोई ऐतराज़ नहीं, शिकायत नहीं । लेकिन ज़रा भी प्रेम तथा आदर-सम्मान उसके हिस्से में हरगिज़ नहीं । दूसरों को अपनी याद दिलाने के लिये वह उन्हें चिढाकर गालि सुनता है, फिर 'घी-घी' कर हँसता है । बीमार पडने पर लोग उसे पागल कुत्ते की तरह भगा देते है, दिलो-जान से चाहने लगते है कि भला वह मर जाये । लेकिन सारे तिरस्कार के बावजूद रजुआ जीना चाहता है । अपने सिर आये मौत को टालने के लिये अपनी मौत की खबर वह खुद गाँव भेजता है, ताकि अपने अन्धविश्वास वह ज़िन्दा रहे था। किसी भी कीमत जीने की ललक अपनी तीव्रता के साथ कहानी में कूट कूट कर भरी है ।

---

1 भीष्म साहनी,भूमिका,दस प्रतिनिधि कहानियाँ

'दोपहर का भोजन' में बिखराव के कगार पर स्थित निम्न मध्यवर्गीय परिवार को सँभालती नारी का किरदार अदा है, भले वह झूठ के सहारे ही क्यों न हो। भोजन के वक्त परिवार के सभी सदस्यों को इकट्ठा होना चाहिये, जो परिवार की एकता केलिये अनिवार्य है। वह एकता स्वयमेव नहीं होती, बल्कि मेहनत और लगन से ही होती है। अतः प्रत्येक सदस्य के द्वारा अपनी भूमिका सक्षम होने पर ही एकता होती है। लेकिन जैसा प्रतिकूल माहौल में सब कुछ उलटा ही होता है, सिभेश्वरी के परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी भूमिका में नाकाम है। इसलिये एक दूसरे से मूँह छिपाते हैं। असफल भी सही, सिद्धेश्वरी अपने बिखरे परिवार को एकजुट करने में व्यस्त है। डिप्टी कलक्टरी के 'शकलदीप बाबू' भी अपनी जी तोड मेहनत के बावजूद हार से उम्मीद खो बैठे बेटे को हौसला दिलाते है।

अवाम पर परिवार की ज़िम्मेदारी है। 'आदमी अपने तो भूखा रख सकता है। लेकिन बच्चों को भूखा नहीं देख सकता'। चाहे जितनी भी मुसीबत आ जाये उसे काम करने निकलना पडता है। हालातों का आतंक उसके मन में गहराई से है, फिर भी आगे बढना ही उनकी नियति है।'मौत का नगर' कहानी में राम भी इसी वजह से दंगे के ठीक अगले ही दिन काम करने बाहर निकलता है। रास्ते में बीच-बीच राम की अपने समान इनसानों से मुलाकात होती है, जिनको परिवार की चिंता सताती है। उनमें हिन्दु भी है और मुसलमान भी। उन मामूली आदमियों की नज़रों में न संप्रदाय है न सांप्रदायिकता। उन्हें बस मेहनत की और परिवार की फिक्र है। दंगे को बुरे वक्त का असर मानना उन्हें अखरता नहीं। कहानी में राम को हिन्दुओं की बस्ती में एक मुसलमान को हौसला देता हुआ चित्रित है और एक मुसलमान को राम को विश्वास दिलाते हुए भी। सांप्रदायिक दंगे के माहौल में यह कहानी आशावादी है।

अमरकांत की कहानियों में अवाम की ज़िन्दगी चाहे जितनी भी उपेक्षा भरी हुई हो वे उसे जीना चहते हैं। मुसीबतों को झेलने के लिये वे ताकतवर हैं। बच्चा आखिर गिर-गिर कर

ही चलना सीखता है, यह कोई अमरकांत की कहानियों से सीखे । लाखों पराजयों के बावजूद अमारकांत का अवाम घोषणा करता है मानो –फिर भी उम्मीद है उन्हें एक और ज़िन्दगी की । कन्धे पर बोझ, पैरों में बेडियाँ; पर हाथों में है ज़िन्दगी का लगाम ! अमरकाँत की कहानियाँ यह सबक देती हैं ।

कमलेश्वर

कमलेश्वर की ज्यादातर कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन यथार्थ पर केंद्रित है। हालाँकि 'देवा की माँ', 'माँस का दरिया' जैसी अनोखी कहानियाँ उन्हें अवाम के पक्षधर साबित करती हैं ।

देवा की माँ खुद पे जी रही है । पति छोड चुकी है, बेटा पढाई के बाद अफडा-लफ़डा करता हुआ बेकार घूम रहा है । माँ दरियाँ बुनकर घर पालती है । इसी बीच सरकारी लफडे में फँसकर बेटा जेल चला जाता है । माँ को पती की मदद माँगनी पडती है, लेकिन वह निष्ठुर उसे भगाता है । तबसे माँ अपना माथा सूना छोडती है । लेकिन पती की बीमारी की खबर पाकर वह दोबारा सिन्दूर पहनने लगती है । दर असल माँ अपने पति को चाहती थी । सिंदूर पोंछने का मतलब है पति का मर जाना । सिन्दूर पोंछते ही पती का बीमार पडना माँ को परेशान करती है । इस तरह नारी मन की अंतःस्थलियों से होकर कहानी गुज़रती है ।

वेश्यावृत्ति नारीजीवन की घृणित पहलू है । वेश्या जब तक सयानी रहती है, तब तक कमाती रहती है । जवानी खतम तो कमाई भी खतम । अपने यौवन में चाहे वह कितनों के बदन की हवस बुझा दी हो, बूढापे में उसकी पेट की हवस बुझाने कोई भी आशिक नहीं पधारेंगे । गोया ज़िन्दगी पहाड सी महसूस होने लगती है ।'माँस का दरिया' की जुगनू की भी यही हकीकत है । एक तरफ बढती उम्र, थकता बदन, गिरती आशिकों की कतारें, ऊपर से जाँघिये पर पका हुआ फोडा भी । बेचारी मन-हारे को कोई मनुहार भी नही मिलता । इन हालातों में कुढती नारी मनो-व्यापारों को कहानी वाणी देती है।

शेखर जोशी

शेखर जोशी की कहानियाँ सामयिक परिवर्तन को दर्शाती हैं । मज़दूरों के जीवन सन्दर्भों से जुडी अनेक कहानियों को उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा ने आविष्कार किया है ।'नौरंगी बीमार है' कहानी का नौरंगी बडा नेक-दिल इनसान है । अपनी खाते में एक दिन अचानक दो सौ रुपया अधिक पाकर उसने पैसा लौटा दिया था । इसलिये कारखाने में उसका बडा नाम है । लेकिन बरसों के बाद एक दिन समान घटना दोबरा घटती है । इस बार नौरंगी पर सभी शक करने लगते हैं । यहाँ समस्या नौरंगी के बदलने की नही है, बल्कि पूरे समाज की बदलने की है। नयी पीढी को बिना मेहनत के पैसा कमाने की चिंता सूचती है । नौरंगी की बीमारी की खबर पाकर उसे गाँव पहूँचाने के लिये मज़दूर भिडते हैं, ताकि दो दिन की आकस्मिक छुट्टि मिल जाये या उसी बहाने घर हो आये । लेकिन सभी को चौंकाकर नौरंगी अगले दिन ही काम पर लौटता है ।

'बदबू' कहानी में प्रतिकूल वातावरण में चुप होने के लिये मजबूर अनेक मज़दूरों के चित्रण हुआ है । साथ ही ऐसा एक मज़दूर का चित्रण भी जो झुकने को राज़ी नहीं होता । सारे मज़दूर शोषण के आदी हो चुके हैं । सब के मन में घुटन है । उन्हें एहसास है कि कुछ गलत हो रहा है, लेकिन उससे ज्यादा डर एवं मजबूरी भी । मैनेजमेंट् के डर से मज़दूर जलते बीडी को उगल देता है । एक 'वह' है जो प्रतिक्रिया कर सकता है। इसलिये मज़दूर उसके आसपास मंडराते रहते हैं और मैनेजमेंट के चेले भी । उसके आदर्श को झूठा साबित करने की कोशिशें अक्सर होती रहती है । धमकियाँ दी जाती है । उसकी तबादला 'कॉस्टिक टेंक'में होती है जहाँ काम करना खतरनाक है । दरअसल मैनेजमेंट भी मज़दूर संघर्ष से डरते हैं । इस लिये जहाँ कहीं किसी जोशीले का सर उठता है, उस पर भीतरी एवं बाहरी तनाव डालकर उसे पछाडते रहते हैं । मज़दूरों को तनाव के आदी बना देते हैं । लडाकू मज़दूर को

तन्हा कर, उसे अपनों से हराते हैं। कहानी में एक मिश्रि 'वह' को समझाता है –" इस दुनिया में सबसे मेल-जोल रखकर चलना पडता है। नदी किनारे की घास पानी के साथ थोडा झुक लेती हैं और फिर उठ खडी होती है। लेकिन बडे-बडे पेड धार के सामने अडते हैं और टूट जाते हैं।" कहानी में सभी मज़दूर की चुप्पी ही माँगती है, मानो मौजूदा व्यवस्था के बदलने से सभी डरते हो। किसी न किसी तरह सभी उस सडी-गली व्यवस्था की हिमायती हैं, जिसमें छूट की कई सम्भावनाएँ हैं। शुक्र है कहानी के अंत में वह अनोखा मज़दूर अपने भीतर ताकत की चिनगारी सुलगाकर रखता है जो वाकई सराहनीय है।

'उस्ताद' कहानी में अपने सहकर्मियों से डरते एक मेकानिक का चित्रण है। वह इसलिये उस्ताद है कि दूसरों की तुलना में उसकी कुछ खास जानकारियाँ हैं जैसे गाडी की 'वालटैमिंग'बांधना। वह इस जानकारी किसी को नही सिखाता, मानो डरता हो कहीं कोई उसकी जगह न ले ले। लेकिन बुनियादी तौर पर वह भला इनसान है। इसलिये 'बाबू' को नौकरी से जाने से पहले वह सिखा देता है कि वालटैमिंग कैसे बाँधा जाता है।

दरअसल मज़दूर अपने आसपास से, सहकरमियों से, अपने आप से डरने लगा है। ज़िन्दगी उसे पहले से ज्यादा वज़नदार लगती है, जिसे इमानदारी के बल से वह उठा नहीं सकता। इसलिये मौकापरस्ती को वह पसन्द करने लगता है। शेखर जोशी की कहानियाँ इस गत्यंतरण को उकेरती है। फिर भी उनकी कहानियों के केन्द्र में वह मज़दूर है, जो पूरी तरह व्यवस्था के दलदल में डूबा नहीं हो, उसके मन में संघर्ष करने की चेतना कायम है।

खण्ड-ख

अस्सियोत्तर भारत के परिवेश का परिदर्शन

अस्सियोत्तर राजनीतिक परिवेश

अस्सियोत्तर राजनीतिक वातावरण एकदम कलुषित रहा था । राष्ट्रीय एकता को चुनौति देते हुए इस दौरान विखटनवाद एवं उग्रवादी विचारधाराओं को प्रश्रय मिलने लगा। पूरी राजनीतिक माहौल भ्रष्टाचार एवं अनैतिक आचरणों से विषाक्त था । राजनीतिक जगत की प्रमुख घटनाएं जो समूचे हिन्दुस्तान में नींवाधार परिवर्तन केलिये वजह् बनी वे इस प्रकार है -

इन्दिरा गाँधी की हत्या तथा सिख विरोधी दंगा

तीन सालों के जनता पार्टी के शासन के पश्चात 1980 ई.के आम चुनाव में कॉग्रेस पुनः सत्ता में आयी । उसी दौरान पंजाब समस्या गम्भीर हो चुकी थी । सिख नेताओं ने खालिस्थान की माँग करने लगी थी । संत भिद्रनवाले ने हिंसा एवं आतंकवादी गतिविधियों से पंजाब को रक्त-रंचित कर दिया । आतंक की साये में राजनीति बिलकुल कुत्सित हो गय। सुवर्ण मन्दिर उग्रवादियों का प्रशिक्षण केन्द्र बन गया थ । पाकिस्तान से भी इन्हें सहायता मिलने लगी थी । सुवर्ण मन्दिर में हथियार जुडाए जाने लगे थे । मामला बिगडते हुए देखकर 1984 में भारतीय सेना के 15 वीं काल्वलरी सेना द्वारा 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' नाम से सुवर्ण मन्दिर पर हमले की योजना बनायी गयी । सेना ने सशस्त्र बल से मन्दिर को उग्रवादियों की हवाले से मुक्त कर दिया। हमले में 83 सिपाहियों की तथा 493 उग्रवादियों की मृत्यु हुई । हमले में भिद्रनवाला मारा गया । लेकिन मन्दिर में हुए इस खून-खराबे ने सिख जन मानसों में ठेस पहूँचा दी । इन्दिरा गान्धी को इसकी कीमत अपनी जान से चुकानी पडी ।

31 अकतूबर 1984 को इन्दिरा गान्धी के ही सुरक्षा सैनिक, सतवंत सिंह और बियांत सिंह ने उन्हें गोली से उडा दी । यह हिन्दुस्तान के राजनैतिक इतिहास के सबसे अनन्य और त्रासद घटना रही । हत्या के तुरंत बाद दिल्ली तथा अन्य कई उत्तर भारतीय राज्यों में सिखों

के खिलाफ एकतरफा हमला फूट पडा । सरकारी आंकडों के अनुसार 1717 लोगों की हत्या की गयी । लेकिन हकीकत यह है कि मौत की संघ्या 5000 से ज्यादा थी, जिसे राजिव गान्धी ने यों कहकर समर्थन दिया था कि जब बडे-बडे वृक्ष धराशाई होते हैं तो उनके नीचे आकर तिनके व दूप मसल जाते है ।

इन्दिरा के बाद उनका बेटा राजिव को सत्ता की कुरसी पर बिठाया गया, जिनकी मिस्टर क्लीन की छवि थी । लेकिन सत्ता की बागडोर सम्भालना उनके लिये मुश्किल हो रहा था । देखते ही देखते पंजाब, असम, बॉडोलेंड, उत्तराखंड और झार्खंड की समस्यायें सामने आयी । रामजन्म भूमि की संवेदंशील समस्या भी सिर उठाई । बॉफॉर्स तोप-सौदा ने राजिव के नेतृत्व पर प्रश्नचिह्न लगा दिया ।

1989 ई.के नवीं लोकसभा चुनाव में राष्ट्रीय मोर्चा सत्ता में आयी । वि. पी. सिंह प्रधान मंत्री बने । इसी दौर में अयोध्या समस्या और भी गर्माई गयी । विश्व हिन्दु परिषद द्वारा अयोध्या के रामजन्म भूमि में मन्दिर निर्माण के इरादे से आगे बढने का नींवाधार निर्णय लिया गया । भारतीय जनता पार्टि के अध्यक्ष एल.के. अदवानी ने 25 दिसम्बर 1990 को गुजरात के सोमनाथ से उत्तरप्रदेश के अयोध्या तक रथ यात्रा शुरू की। बिहर में इसे रोका गया और अदवानी को गिरफ्तार किया गया । इस समस्या पर बी.जे.पी.द्वारा भारत बन्द का आयोजन किया गया । इसी दौरान 'मण्डल आयोग'के निर्णयों को लागू कराने का फैसला हुआ । इस निर्णय का डटकर विरोध करते हुए विद्यार्थी दल सडक पर उतरे । उत्तर भारत के कई शहरों पर आरक्षण विरोधी संघर्ष रक्त-रंचित हो गये । कई जगहों पर सेना बुला दी गयी । दिल्ली और हरियाना में विद्यार्थियों ने आत्महत्याएँ की । 23 सितम्बर को दिल्ली के अखिल भारतीय चिकित्सा विज्ञान संस्थान के सामने एक विद्यार्थी ने स्वयं आग लगाई । उसकी मौत के साथ आरक्षण विरोधी आंदोलन का हुलिया बदल गया । हडताल में 15 लोगो की मृत्यु हुई । परिणामस्वरूप वी.पी.सिंह को त्यागपत्र देना पडा । चन्द्रशेखर अगले प्रथानमंत्री बने । उनके कर्मकाल में भ्रष्टाचार को खुली छूट मिली ।

सन 1991 ई. दसवीं लोकसभा चुनाव के बाद नरसिंहराव देश के प्रधान मंत्री बने। उनके पाँच वर्ष के कार्यकाल में भ्रष्टाचार के नये मापदण्ड स्थापित हुए । यह आर्थिक उदारीकरण का समय था । आयात को खुली छूट दी गयी । उसके साथ भारत के बाज़र की तरफ विदेशी सामग्रियों का बहाव शुरू हुआ । सामग्रियों के साथ विदेशी संस्कृति ने भी भारतीय जनमानसों को अपने कब्जे में कर दिया । खेती तथा खाद्य को दी गयी सब्सिडियों पर रोक लगाई गयी । सरकारी ऋण पर ब्याज की बढोत्तरी होने लगी । किसानों ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जाल में फँसकर पारम्परिक खेती समाप्त कर दी । नये नये बीजों को रोपने लगे जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बेची जाती थी ।

अयोध्याकाण्ड

6 दिसंबर 1992 को अयोध्या के 450 वर्षों पुराना बाबरी मस्जिद, विश्वहिन्दु परिषद, शिवसेना आदि हिन्दु संगठनों के करसेवकों द्वारा गिराया गया । उनके कई सालों के दावे के अनुसार वह राम जन्मभूमि है, उधर राम का एक मन्दिर था जिसे गिराकर मस्जिद खडा किया गया था । उधर दोबारा मन्दिर बनाने की चाहत में करसेवकों ने बाबरी मस्जिद को गिराया । लाठी, भाले, हथौडे लेकर आये करसेवकों ने पौने छह घण्टों में मस्जिद को गिराया । करसेवा को प्रतीकात्मक तरीका से करने का फैसला हुआ था, लेकिन मामला हाथ से फिसल गया । जोश में आये करसेवकों ने नेता को धमकी दी कि-जो नेता करसेवा नहीं करने देगा, उसे मरसेवा का सामना करना होगा। इस नारे के साथ उन्होंने करसेवकों को मस्जिद के सामने खडा किया कि 'जिस हिन्दु का खून न खौला खून नहीं वह पानी है ।' इस घटना ने विश्व भर के मुस्लिम मानसों में जो गहरी चोट की जो अभी तक भरी नहीं है ।

इस घटना ने पूरे भारत को दंगे-फसादों के हवाले कर दिया ।12 दिसम्बर तक भारत में हज़ारों लोगों की हत्या की गई । कई इलाकों में सेना बुलाई गई । प्रशासनिक गणना के अनुसार गुजरात में 246, महाराष्ट्र में 259, उत्तर प्रदेश में 201, मध्य प्रदेश में 120, असम

में 100, पश्चिम बंगाल में 32, राजस्थान में 48, करणाटक में 60, आँध्र में12 और तमिल नाडु मे 2 लोगों की हत्या की गयी ।[1]

चरार-ए-शरीफ पर हमला

11 मई 1995 को श्रीनगर से 30 किलोमीटर की दूरी पर स्थित चरार-ए-शरीफ मस्जिद को उग्रवादियों ने जला दिया । यह मस्जिद हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रतीक माना जाता था । यह दोनों धर्म के विश्वासियों के लिये पुण्य स्थान था । सेना को गुप्त सूचना मिली थी कि पकिस्तान तथा अफ्घानिस्तान के आतंकवादियों ने चरार-ए-शरीफ पर कब्जा कर लिया है । आगामी चुनाव को रोकना उनका लक्ष्य था । रक्षा सैनिकों ने मस्जिद को घेर लिया । दोनो तरफ से गोलीबारी हुई । 8 मई को गोलीबारी की वजह चरार शहर के 1500 घर आग की लपेटों में आ गये । सेना ने आग की वजह आतंकवादियों का हमला बताया । 10 मई की रात को लकडी के बनाये गये मस्जिद भी पूर्णतः राख हो गया । सेना के अनुसार आतंकवादी मस्जिद जलाकर गायब हो गये थे, लेकिन ऐसा भी कहा जाता है कि सेना की गोलाबारी से ही आग लग गयी थी ।

भ्रष्टाचार का नया पर्व

अस्सी के बाद राजनीति की नेक नियति और विश्वसनीयता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए भ्रश्टाचारों की अम्बारों का ही भंडाफोड हो गया । 1996 का हवाला मुकदमा में एल.के.अद्वानि, अर्जुन सिंह, आरिफ मुहम्मद खाँ, यश्वंत सिन्हा, कल्पनाथ राय, देवि लाल, प्रदीप कुमार आदि के खिलाफ सी.बी.ऐ. ने भ्रष्टाचार का आरोप लगाया । वी.सी.शुक्ला, बलराम धाकर, माधवराव सिन्ध्या अदि के खिलाफ मुकदमेबाज़ी के लिये सी.बी.ऐ ने अदालत से अनुमति माँगी, जो नरसिंहराव सरकार के मंत्री थे ।

---

1 the memorable events of Indian history,ed.Dr Raadhika.C.Nair

एस.के.जैन नामक उद्योगपति के घर से मिली डायरी में 115 लोगों को घूस देने की खबर दर्ज थी । इसके खिलाफ 'कालचक्र' मागज़िन के मालिक विनीत नारायण एवं कार्टूणिस्ट रजीन्दर पुरी के द्वारा मुकदमा चलाया गया । इसमें उनको सामजिक न्याय के बतौर परमोन्नत न्यायालय तक जाना पडा।सन.1988 से सन1991 तक के तीन वर्षों में जैन भाइयों द्वारा 115 लोगों को कुल 65 करोड रुपये दिये गये थे । आरोपितों में से 42 लोग राजनीतिक क्षेत्र के थे । बाकि लोग जाने-माने व्यापारी एवं बडे बडे अधिकारी थे । उनके खिलाफ खबर छापने केलिये कोई भी तैयार नहीं थे ।

राजीव गान्धी, पूर्व राष्ट्रपति सेल सिंह, पूर्व केन्द्र मंत्रि आर.के.धवान, बूटा सिंह, राजेश पैलेट, एन.टि.तिवारी, कमल नाथ अरविन्द नेतम, जनतादल का अध्यक्ष एस.आर.बोम्मे, पूर्व राष्ट्रपति वेंकिट रामन, तमिल नाडु के मुख्य मंत्रि जयललिता, सीताराम केसरी, समता पार्टि के एस.पी.चन्द्रजीत यादव, दिल्ली मुख्य मंत्रि मदन लाल खुराना, ए.के. सेन, के.नटवर सिंह, सी.के.जाफर शरीफ, रणजीत सिंह, हरमोहन धवान जैसे कई नेताओं के नाम फेहरिस्त में थे । भ्रष्टाचार की समस्या पूरे भारत के जनमानस को बरसों से झकझोर करती आयी है।

उसी साल जे.एम.एम मुकदमे में पी.वी.नरसिंहराव, बूटा सिंह, वीरप्पा मोयली, अजीत सिंह पर मुकदमा दर्ज किया गया । 1996 मई महीने में लन्दन के अचार कम्पनी मालिक लक्कू भाई पथक द्वारा चन्द्रस्वामि पर एक लाख डॉलर की धोखेबाज़ी का आरोप लगाया गया।बाद में उन्हें जेल भेजा गया । सी.बी.ऐ वालों ने 16 आगस्त को नरसिंहराव सरकार के 'टेलीकॉम' मंत्री सुखराम के घर से चार करोड रुपया जब्त किया। रुपये के श्रोत दिखाने में वे असमर्थ हुए थे ।

9 अक्तूबर को 'सेंट किट्स' झूठा अभिलेख मुकदमे में नरसिंहराव को दिल्ली के उनके घर से गिरफ्तार किया गया । केस के मुताबिक नरसिंहराव और चन्द्र स्वामी मिलकर

राजीव गाँधी मंत्रिमण्डल के वित्तमंत्रि वी.पी.सिंह् के खिलाफ झूठा अभिलेख तैयार किया । उन्होंने दिखाया कि वी.पी.सिंह अनैतिक तौर पर कमाया धन अपने बेटे अजय सिंह् के नाम पर करीबिया के सेंट किट्स द्वीप के किसी बैंक में जमा किया है । नरसिंह्राव उस समय विदेशकार्य मंत्री थे । पूर्व केन्द्र मंत्रि के.के.तिवारी, पूर्व एम्फॉर्स्मेंट निदेशक एस एल वर्मा, चन्द्रस्वामी का सचीव के.एल.अगर्वाल आदि इस मुकदमे में आरोपग्रस्त अन्य प्रमुख थे ।

1997 में बॉफॉर्स तोप का मामला दोबारा सामने आया । इस व्यापर में दलाली के तौर पर मिले 13 करोड रुपये से संबन्धित सारे कागज़ात स्विज़ बैंकवालों ने भारत को सौंप दिया । 2001 में तह्लका डोट कॉम ने तह्लका मचा दिया । प्रशस्त पत्रकार तरुण तेजपाल, अनिरुध बहल, मेत्यु सामुएल आदि संवाददाताओं ने 'ऑपरेशन वेस्ट एंट' नाम से विख्यात खोज से प्रतिरोध मंत्रालय के भ्रष्टाचार को सामने रख दिया । उन्होंने इसके लिये वेस्ट एंट नाम के एक साँकल्पिक कम्पनी का निर्माण किया जो ह्थियार बिक्रेता है । उस कम्पनी के दलाल के छद्म वेश में प्रतिरोध मंत्रालय के विभिन्न राजनीतिज्ञों तथा अन्य वरिष्ट सैनिक अधिकारियों से मिला और उनके दलाली लेने के दृश्य गुप्त कैमरा में खींच लिया । बी.जे.पी.के देशीय अध्यक्ष बंगारू लक्ष्मण का घूस लेते तस्वीर भी देश भर के चैनलों में दिखाया गया । इस सिलसिले में प्रतिरोधमंत्री जॉर्ज फेर्णांडस को त्यागपत्र देना पडा ।

संसद पर ह्मला

13 सितम्बर 2001 को संसद पर मुस्लिम उग्रवादियों का ह्मला हुआ । सशस्त्र ह्मले में 9 सुरक्षा सैनिकों की मृत्यु हुई । पाँच उग्रवादी मारे गये, जो पाकिस्तानी उग्रवादी संगठन लष्कर-ए-तोयबा के सदस्य थे ।[1] षौकत हुस्सैन गुरु, मुह्म्मद अफ्सल, कॉलेज अध्यापक सईद रह्मान गीलानी आदि षड्यंत्र के आरोप में गिरफ्तार हुए । षौकत हुस्सैन की बीवि अफसल

1 the memorable events of Indian history,ed.Dr Raadhika.C.Nair

गुरु अथवा नवज्योद सन्धु को हिरासत में लिया गया । बाद में परमोन्नत न्यायालय द्वारा मुहम्मद अफ्सल को मौत की सज़ा दी गयी । षौकत को दस साल की कैद मिली । गीलानी और अफसल की रिहाई हुई ।

गोध्रा काण्ड

27 फर्वरि 2002 को अयोध्या से लौटती फैसाबाद सबर्मति एक्स्प्रेस ट्रेन की बोगी में गुजरात के गोध्रा स्टेशन के निकट आग लगी, जिसमें अयोध्या से लौटे करसेवक ज़िन्दा जल गए। यह स्वतंत्र भारत के इतिहास के सबसे भयानक, नृशंसक एवं अमानवीय दंगे तथा मार-काट का कारण बना । गुजरात में मुसलमानों पर एक तरफा भयानक आक्रमण हुआ, जिसमें हज़ारों की दर्दनाक मौत हुई । सरकर की गुप्त अनुमति से हुई इस नरहत्या की वजह सारी दुनिया के सामने भारत का सिर लाज से झुक गया । यह आरोप लगाया गया कि करसेवकों की डिब्बे में मुसलमानों ने ही आग लगाया है । लेकिन अभी तक इसके लिये पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है । घटना का असर बहुत जल्द ही फैल गया ।

28 फर्वरी को विश्व हिन्दु परिषद के गुजरात बन्द में 140 लोगों की हत्या हुई । अहम्मदबाद के केवल दो ही कसबों में कुल 60 लोग ज़िन्दा जलाये गये ।[1] मार्च महीने के प्रारम्भिक दिनों में अराजकता एवं मार-काट तेज़ी से भडक उठी । सारे कानून को पुतला बनाकर खून-खराबा होती रहे । पुलीस की गोलाबारी में ही कयिओं की जान गई ।

गुजरात काण्ट का सब्से अमानवीय घटना है 'बेस्ट बेकरी' हत्याकाण्ड । वडोदरा के हनुमान तेक्री के बेस्ट बेकरी में चौदह लोगों को बन्दी बनाकर ज़िन्दा जलाया गया । साहिरा शैख नमक औरत इस नृशंसता की दृकसाक्षी थी । लेकिन अदालत में वह सच नहीं बता पायी । ऐसा भी अफवाह है कि वह बिक चुकी थी ।

---

1 the memorable events of Indian history,ed.Dr Raadhika.C.Nair

2005 में केन्द्र सरकार द्वारा निकाली गई सूचना के मुताबिक गुजरात काण्ड में 750 मुसलमानों तथा 254 हिन्दुओं की जानें गयीं । 233 लोग गायब हुए । लेकिन मानवाधिकारवालों की गणना में 2000 से अधिक लोग मारे गये थे । लगभग 140000 लोग शरणार्थी बन गये । मानवाधिकार संस्थाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं ने गुजरात सरकार को ही दोषी ठहराया है । 3 मार्च को गुजरात मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोडी ने बयान दिया था-प्रत्येक क्रिया की समान प्रतिक्रिया होती है । गोया मुसलमानों पर हमला गोध्रा काण्ड की प्रतिक्रिया थी । गुजरात के अखबारों को मोडी की बोली पर गलती महसूस नहीं हुई। पर राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेज़ी अखबार तथा अन्य भाषी अखबारों ने दंगे की सही तस्वीर पेश की थी । अमेरिकी सरकार ने एकतरफा दंगे में मोडी की भूमिका को समझकर उसे 'वीसा' देने केलिये इनकार किया था ।

24 सितम्बर 2002 को गुजरात के गान्धिनगर में स्थित अक्षरधाम मन्दिर में हुए आतंकवादी हमले में 30 लोगों की मृत्यु हुई । मृतों में 16 स्त्रियाँ तथा चार बच्चे भी शामिल थे । 74लोग बुरी तरह घायल हुए ।

प्राकृतिक दुर्घटनाएँ

अस्सियोत्तर काल में अनेक प्राकृतिक दुर्घटनाएँ हुई । सरकारी असावधानी और अतिरंजित औद्योगीकरण से भी दुर्घटनाएँ हुई, जिनमें अनेकों की मौत हो गई ।

भोपाल दुर्घटना

2 दिसम्बर 1984 रात को यूनियन कार्बाइड के कारखाने से निसृत मीथेल ऐसो सयनेट (M.I.C) से दम घुटकर हज़ारों लोगों की जान गयी । भोपाल शहर एक गैस चेम्बर के बराबर बन गया। दस दिनों के अंतर्गत 3500 लोगों की मौत हुई । दस हज़ार से ज्यादा लोग अपाहिज हो गये ।

भोपाल की फैक्टरी, अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी यूनियन कार्बैड की शाखा थी । विषवायु के रिसने रोकने की कोई प्रविधि नहीं लगाई गई थी । जो कुछ था वह नाकाफी था । रात के 10:30 बजे से कारखाने से रिस-रिसकर निकली विषवायु, हवा के साथ बहकर पूरे शहर में फैल गया । साधारण वायु से ज्यादा सघन होने के कारण हवा थमने पर वह जम गया । दुर्घटना स्थल से लगभग 15 किलोमीटर की दूरी तक इसका असर पडा अनेक लोग पैदल व गाडी के सहारे शहर छोडकर भाग निकले । जो सो रहे थे अनजान, सदा के लिये सो गये ।

अगली सुबह सडक के चारों तरफ सैकडों लोग मृत पाये गये । जिनको अपनी गाडी नहीं थी, या दूसरों की गाडी में जगह नहीं मिलीं, उनकेलिये खुली सडक मृत्यु शय्या बन गयी । जानवर एवं मवेशी भी बचे नहीं । एक हफ्ते के अन्दर शहर सुनसान श्मशान घाट में तब्दील हो गया था । जनवरी की अंतिम गणना के अनुसार 3403 लोगों की मृत्यु हुई और 25000 लोग जीवंत लाश बन गये ।

महाराष्ट्र में भूचाल

30 सितम्बर 1993 को महराष्ट्र के लत्तूर, उस्मानाबाद आदि जिलों में घटित भूचाल में 10000 लोगों की मौत हुई । भूचाल मापिनी ने इसकी तीव्रता 6.5 दिखाई दी थी । घरों एवं खेतों का सर्वनाश हो गया । मरातवाडा प्रदेश में कुल 51 गाँवों का नामोनिशान नहीं रह गया। यातायात की सुविधाएँ तथा जल आपूर्ती के सारे रास्ते तबाह होने के कारण अलग-अलग बीमारियाँ फैलने लगी थीं । खेत व खलिहान लाशों का कब्रस्थान बन गये । अनेकों लाशों को एक साथ अग्निसंस्कार किया गया ।

प्लेग की वापसी

1994 में 28 वर्षों के बाद भारत में प्लेग फूट पडी । महाराष्ट्र के बीड जिला के माँल गाँव से इसकी शुरूआत हुई । उधर चूहे मरने लगे थे । धीरे-धीरे इन्सान इसके चपेट में आ गये और मरने लगे । बीमारी धीरे-धीरे गुजरात के सूरत तक पहूँच गयी । इस बीमारी ने अनेकों की जान ले ली ।

कार्गिल की लडाई

26 मई 1999 को जम्मु-काश्मीर के कार्गिल-द्रास बटालिक इलाके में घुस आये पाकिस्तानी सैनिकों के खिलाफ हमला बोलते हुए भारत को 28 सालों के बाद युद्ध की विभीषिका झेलना पडा। 8 मई को कार्गिल के पहाडी इलाकों में घुसपैठियों को पाया गया था। 25 किलोमीटर की भीतरी भारतीय इलाकों तक घुसपैठिये पहूँच चुके थे। उन्हें पहचानने में देरी हुई थी। श्रीनगर-लेह राजपथ हडपने की पाकिस्तानी साजिश थी यह घुस पैठ।

74 दिनों की लडाई में 407 भारतीय सैनिकों की वीरगति हुई थी। 584 सैनिक घायल हुए। 6 लोग लापता है। पाकिस्तान के 696 सैनिकों की मृत्यु हुई।

उडीसा में तूफ़ानी हमला

29 अक्तूबर 1999 भारत में घटित तूफ़ानी हमले में सैकडों गाँवों का नामोनिशान हो गया। सात मीटर तक उमड आयी लहरों ने समुद्र तट से 15 मीटर भीतर तक विनाश के बीज बोये गये। पानी के साथ हज़ारों लोग बह गये। घण्टे में 290 किलोमीटर की रफतार में तूफान उमड आया। उडीसा के कुल ग्यारह जिलों में लगभग अस्सी लाख लोग दुर्घटनाग्रस्त हुए। 10000 से ज्यादा लोग डूब मरे। 3 लाख घर बर्बाद हुए। 20000 मवेशी मर गये। लगभग 3.23 लाख हेक्टर उपजाऊ ज़मीन उजड गयी। कुल दस करोड रुपये का नुकसान हुआ।

गुजरात भूचाल

26 जनवरी 2001 को गुजरात में हुए भूचाल में 15537 लोगों की मौत हुई। 20000 जानवर मारे गये। दो लाख से ज्यादा घर गिर पडे। 13500 करोड रुपयों का नुकसान हो गया।

सुनामी का हमला

26 दिसम्बर 2005 को इन्डोनेशिया के सुमात्रा द्वीप के निकट इंडियन महासमुद्र में घटित भूचाल के कारण बनी भीमाकार लहरें भारत के तथा अन्य अनेकों देशों के सागर तटों को लांघकर आयीं और हज़ारों लोगों को निगल गयीं। भारत में आंडमान-निकोबार द्वीप, तमिल नाडु, केरल, आन्ध्र तथा पोण्डिचेरी सब इसके चपेट में आ गये। मछुआरों की बस्तियाँ एक साथ डूब गयीं। नाव एवं जालियां टूट-फूट गयीं। इसकी वजह मछली व पर्यटन के व्यवसाय को भारी धक्का लगी।

सामाजिक परिवेश

अस्सियोत्तर सामाजिक महौल में सरकारी नई आर्थिक नीतियों के कारण वर्ग-विषमता को बढावा मिला। समाज विभिन्न आर्थिक प्रभेदों में दृढतापूर्वक विभजित हो गया है। निम्न वर्ग निरंतर अमानवीय शोषण का शिकार बनता जा रहा है। मध्यवर्ग की उत्कर्षेच्छा में अब भी कोई परिवरतन नहीं आया है। उच्चवर्ग विलासिता के चंगुल में फंसता जा रहा है।

देश में नगरीकरण की प्रक्रिया और तीव्र हुई है। आर्थिक प्रगति व आधुनिकता व सुविधाओं के आकर्षण में गाँव से शहर की तरफ पलायन की गति और तीव्र हुई है। शहरवालों के लिये गाँव से नाता प्रायः घी-अनाज माँगने का रह गया है।

महानगरों में अवास, यातायात, पर्यावरण आदि की समस्याएँ गम्भीरतम हो गई हैं, वहाँ पश्चिमी संस्कृति का खुला नाच भी हो रहा है। यह परिवार की इकाई को प्रभावित किया है। आदमी की हविश और लालसा बढी हैं। फलस्वरूप परिवार में विघटन बढा है। संयुक्त परिवार तेज़ी से टूट रहा है। महंगाई तथा उन्नत जीवन स्तर के लालसा के कारण पति-पत्नी दोनों कामकाजी हो गये हैं। आत्मकेन्द्रित मानोवृत्ति पारिवारिक सम्बन्ध-सूत्र को हलका कर दिया है।

मध्यवर्गीय नारी अपने अधिकारों के प्रति विशेष सजग हुई हैं । अतः उसमें आर्थिक स्वतंत्रता की ललक उत्पन्न हो गयी है । इस तरह समाज और परिवार की आर्थिक संरचना में बदलाव आया हैं ।

औद्योगीकरण की वजह कुटीर और लघु उद्योगों की अवनती हुयी है । औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक मूल्यों तथा मनोवृत्तियों को प्रभावित किया है । शोषण और मुनाफाखोरी की प्रवृत्तियाँ भी बढी हैं ।

वैज्ञानिक प्रगति ने आटम बम से लाख गुना क्षमतावाले हज़ारों बमों के निर्माण में संहारात्मक भूमिका अदा की है । अमेरिकी अंतरिक्ष में सैनिक अड्डे बनाने की कोशिश में लगे हुए हैं । अनेक नूतन मारक हथियारों का आविष्कार निरंतर होता रहता है । अतः तीसरे विश्वयुध की आशंका सार्थक है ।

संचार माध्यमों की प्रगति इक्कीसवीं सदी की सबसे बडी उपलब्धि है । यह सामाजिक-सांस्कृतिक घटना भी है । इससे पश्चिमी संस्कृति का भारत पर घातक हमला हुआ है । उपग्रह-चैनल के दौर ने व्यक्तियों के आपसी संपर्कों को काटा है । उसके नागरिक बोध को सीमित करने में इनकी बडी भूमिका है । व्यक्तिवादी सोच के कारण सामाजिकता और प्रतिबद्धता पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है ।

पत्रिकाओं की गुट्सापेक्ष राजनीति इस दौर की मुख्य समस्या है । किसी न किसी राजनीतिक दलों के प्रति पूर्वाग्रह की वजह से जनता तक सही जानकारी पहूँचाने में ये असमर्थ हो जाती हैं । विभिन्न पत्रिकाओं में एक ही घटना के भिन्न-भिन्न खबर पाठकों में तनाव पैदा करती है ।

आर्थिक परिवेश

भारत 2005 तक दस पंचवर्षीय योजनाओं को समाप्त कर चुका था । ये योजनाएं मुख्यतः आर्थिक विषमताओं तथा क्षेत्रीय असंतुलन को घटाने, रोज़गार के अवसरों में वृद्धी करने तथा पिछडे व कमज़ोर वर्ग के पुरोयान पर केंद्रित रही हैं । किंतु इनमें से एक लक्ष्य को भी अपेक्षित सफलता नहीं मिली है ।

भारत में स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, कृषि उत्पादन आदि क्षेत्रों में विकास हुआ है। किंतु मुद्रास्फिति को कब्जे में लाने को असमर्थ रहा है । भारत विदेशी ऋण के दुर्भेद्य चक्र में फँस चुका है । राजस्व आय से प्राप्त आय का लगभग एक तिहाई ऋण चुकाने में लग जाती है । बेरोज़गारी तथा महंगाई मिलकर समाज में अराजकता तथा भ्रष्टाचार को तीव्र बना रही है । सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक देश में लगभग 650 लाख बेरोज़गार थे । परम्परागत शिक्षा प्रणाली ही इसका असली कारण है । अराजकता, असंतोष तथा विद्रोह इसका परिणाम है ।

वर्तमान समाज में कालाधन और तस्करी का अस्तित्व और सघन बनता जा रहा है । देश के बडे-बडे तस्करों तथा लुटेरों का राजनीतिज्ञों से गहरा सम्बन्ध है । उन्हें कई छूटें मिल रही है। जनगणना के अनुसार भारत की आबादी सौ करोड से ज्यादा हो गया है । जनसंख्या में वृद्धि के कारण बेरोज़गारी तथा गिरते जीवन स्तर में वृद्धी हुई है । आर्थिक विषमताएँ बढती रहती है ।

राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक माहौल अवाम केलिये सेहतमन्द नहीं है । विभिन्न प्राकृतिक दुर्घटनाएँ उनके हालातों को और बिगाड रही हैं । इसलिये जनसाधारण में असुरक्षा की भावना और भी बढ गयी है ।

निष्कर्ष

अस्सी के पहले दौर की कहानियाँ ज्यादातर सहानुभूति से जनित और उससे लैस थी । कहानी में आदर्श,यथार्थ तथा विद्रोह की अभिव्यक्ति हुई है । प्रेमचन्द ने अवाम को उसकी कठिन यातनाओं से उबारने केलिये रचनात्मक कोशिश की । यश्पाल तथा भीष्म साहनी ने अवाम के कठिन जीवन यथार्थो को उकेरकर सही गलत की भेदभाव पर प्रश्नचिह्न डाले । अमरकांत एवं शेखर जोशी ने समसामयिक गत्यंतरण के तहत अवाम को अपनी रक्षा स्वयं करने का हौसला दिलाया । अस्सियोत्तर परिवेश तक आते-आते अवाम अपने घुटन का अतिक्रमण करने की कोशिश करता है, चाहे वह व्यक्ति केंन्द्रित ही क्यों न हो ।

अस्सियत्तर परिवेश पूर्णतः अवाम के खिलाफ रहा है । एक तरफ राजनीतिक भ्रष्टाचार दूसरी तरफ प्राकृतिक दुर्घटनाएँ, उसके सामने गतिरोध ही पैदा किया था । उनकी ज़िन्दगी को तबाह किया था । ये गतिविधियाँ व्यक्ति को खुद परस्ती सिखा देती है । डूबते को तिनके की सहारे की तरह मौकों को तलाशने के लिये यह प्रेरणा देती है । अवाम अब मौके के इंतज़ार में हैं ।

****

दूसरा अध्याय

किसान व मज़दूरों का संघर्ष

"उस पार खेत हैं जिनका सीधा मतलब है उस पार गरीबी है। वे गरीबी के अभ्यस्थ हैं। पुलिस उनके लिये सर्वशक्तिमान है और अपनी हर होशियारी में वे काफी मूर्ख हैं........ऊपर आसमान में पालम की और जानेवाले हवाई जहाज़ की संयत आवाज़ सुनाई पडती है। नीचे सडक पर बालू वाले ट्रक गुज़र रहे हैं। लदी हुई बालू के ऊपर मज़दूर सो रहे हैं, जो कभी-कभी किसान बन जाने का स्वप्न देख लेते हैं, अपनी गाँवों की बात करते हैं, अपने खेतों की बात करते हैं, जो कभी उनके थे।"

-असगर वजाहत

'दि नेशनल क्रैम ब्युरॉ' के मुताबिक 1997 से लेकर 2008 तक कुल 199132 किसानों ने आत्महत्या कर दी[1]। नव उदारीकरण के समकालीन दौर में एक तरफ सरकार खाद्य की सब्सिडियाँ कम करती जा रह ही है तो दूसरी तरफ फसल की मात्राएँ कम होती आ रही हैं । ऊपर से सूखा, बाढ, भूचाल जैसे प्राकृतिक दुरघटनाएँ भी किसान का जीवन बरबाद कर रही हैं। महाजनी सभ्यता अब भी किसानी ज़िन्दगी का अभिशाप है । अपनी पहाड सी ज़िन्दगी को या तो वे अधूरे छोडने में मजबूर हो जाते हैं या मज़दूर बनकर शहर की तरफ निकल पडते है । भारतीय किसान का समकालीन जीवन यथार्थ इस तरह है ।

अस्सियोत्तर कहानियों में किसान एवं मज़दूरों का जीवन किस तरह अंकित है और उनका संघर्ष किस तरह और किस हद तक है,इनका अध्ययन इस अध्याय में हुआ है।

किसानो का संघर्ष पूर्व पीढी की कहानियों में

प्रेमचन्द की 'पूस की रात' कहानी में खेती छोडने केलिये आमादा किसान 'हल्कू' का चित्रण मिलता है । हल्कू मेहनती है । खेत में मडैया डालकर वह अपनी खेती की देखरेख करता है, चाहे वह जाडे की रात ही क्यों न हो । लेकिन फसल कभी पेट भरने केलिये काफी नहीं बनती । एक तरफ दिनों दिन बढती सूद तो दूसरी तरफ जानवरों की हमला उसकी कडी मेहनत को बेमोल साबित करती रहती है । पत्नी सलाह देती रहती है कि खेती छोडकर मज़दूरी करना चाहिये -"तुम क्यों नहीं खेती छोड देते ? मर-मर के काम करो, उपज है तो बाकि दे दो, चलो छुट्टी हुई । बाकि चुकाने केलिये तो हमारा जनम हुआ है । पेट केलिये मज़ूरी करो । ऐसी खेती से बाज आये ।"[2] लेकिन खेती तो किसान का आदर्श है । उसे वह कैसे छोड सकता है । इसलिये वह जाडे की उस रात भी जानवरों से खेती बचाने मडई में

---

[1] Suicide since 1997,the hindu,22 january,2010 ,

[2] प्रेमचन्द,पूस की रात,मानसरोवर-4,पृ157

चला जाता है । लेकिन मेहनती किसान को होश लगता तो अजीब हालातों से ही । जाडे का ठंड, चैन से नींद की मज़बूत चाहत, बेकार होती महनत और सूद-खोरों का लूट-खसोट, वह मेहनती किसान आखिर खेती छोडने का ऐतिहासिक निर्णय लेता है, मानो मौजूदा व्यवस्था के साथ पैना विद्रोह हो । जाडे की सिहरती रात में अपने पके खेत को नीलगायों को सौंपकर,बुझती अलाव के निकट अपने फटे-पुराने कंबल में वह नींद का सुख लूटता है, जिसकी उसे बरसों से इंतज़ार था । अगले दिन अपनी उजडी खेती देखकर उसे खुशी होती है, मानो किसी बला हाथ से टल गया हो । वह खुशी से कहता है -"रात की ठंड में यहाँ सोना तो नहीं पडेगा ।"[1] इधर एक आदर्शवान किसान यथार्थवादी बनता है ।

'सवा सेर गेहूँ' में भी समान सन्दर्भ है।कहानी में किसान खेती से मज़दूरी तथा मज़दूरी से गुलामी की तरफ गिरता चला जाता है । घर आये साधु को भोजन दिलाना चाहिये, वह भी अच्छे से अच्छे भोजन । संस्कृति का मामला है ।'शंकर' स्वयं मक्का खाकर जीता है, लेकिन साधु केलिये वह विप्रजी से सवा सेर गेहूँ उधार ले आता है । तब उसे क्या पता था कि सवा सेर गेहूँ की कीमत सात सालों में सत्तर रुपया हो जायेगा । उसकी साल भर के कडी महनत से भी सत्तर रुपया नहीं जुडता है । इसलिये थोडी-थोडी सी वह चुकाता रहता है । लेकिन पता नहीं कौनसा मायाजाल से, वह जितना चुकाता है उतना कर्ज बढता ही जाता है, जिसे वह मासूम समझ नहीं पाता है । कर्ज चुकाते-चुकाते वह विप्रजी का आजीवन गुलाम बन जाता है । उसकी मौत के बाद कर्ज का भार अपने बेटे को सौंपता चला जाता है । 'पूस की रात' से यह काहानी इसलिये अलग है कि कहानी के अंत में विनती स्वरूप एक लेखकीय उपस्थिति मौजूद है जिसमें प्रेमचन्द माननीय पाठकों को सूचित करते

[1] प्रेमचन्द,पूस की रात,मानसरोवर-4,पृ161

है कि यह कपोल कल्पित नहीं; ऐसे विप्रजी तथा किसानों से दुनिया खाली नहीं। दर असल प्रेमचन्द प्रतिक्रिया पाठकों से भी चाहते थे।

अपने जी-तोड मेहनत को बेमोल पाकर किसान के मनःपरिवरतन को प्रेमचन्द ने प्रस्तुत किया है-"शंकर साल भर तक तपस्या करने पर भी जब ऋण से मुक्त होने में सफल न हो सका, तो उसका संयम निराशा के रूप में परिणत हो गया। उसने समझ लिया कि जब इतने कष्ट सहने पर भी साल भर में साठ रुपये से अधिक न जमा कर सका, तो अब कौनसा उपाय है जिसके द्वारा इससे दूना रुपया जमा हो। जब सिर पर बोझ ही लादना है, क्या मन भर का और क्या सवा मन का ? उसका उत्साह क्षीण हो गया, मेहनत से घृणा हो गयी। आशा उत्साह की जननी होती है, आशा में तेज़ है, बल है, जीवन है। आशा ही संसार की संचालक शक्ति है। (लेकिन शंकर में वह आशा कहाँ, वहाँ निराशा ही निराशा है।) शंकर अशाहीन होकर उदासीन हो गया। वे ज़रूरतें जिनको उसने साल भर में टाल कर रखा था, वे अब द्वार खडी भिखारिणियाँ नहीं, बल्कि छाती पर खडी पिशाचिनियाँ थीं, जो अपनी भेंट लिये बिना जान नहीं छोडतीं। कपडों में चकत्तियों के लगने की भी एक सीमा होती है। अब शंकर को चिट्ठा मिलता तो वह रुपये जमा न करता, कभी कपडा लाता कभी खाने की कोई वस्तु। जहाँ पहले तम्बाखू ही पिया करता, वहाँ गाँजे और चरस का भी चस्का लगा। उसे अब रुपये जमा करने की कोई चिंता न थी, मानो उसके ऊपर किसी का एक पैसा भी नहीं आता। पहले जूडी चढी होती थी, वह काम करने अवश्य जाता था। अब काम पर न जाने का बहाना खोजा करता"[1]

किसान के पतन की अगली कडी 'कफन' के घीसू-माधव में हम देख सकते हैं। माधव की औरत झोंपडी के भीतर प्रसव-पीडा से तडप रही है, जहाँ माधव और उसके पिता घीसू

[1] प्रेमचन्द,पूस की रात,मानसरोवर-4,पृ.163

बाहर बैठकर आलू भुनकर खा रहे हैं मानो उसकी मौत के इंतज़ार में हो। जब से वह औरत उस घर आयी थी, उसने उस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी। पिसाई करके या घास छीलकर वह सेर भर आटे का इंतज़ाम कर लेती थी और इन दोनों बेगैरतों का दोजख भरती रहती। वहीं औरत आज प्रसव वेदना से तडप रही थीं और दोनों शायद इसी इंतज़ार में थे कि वह मर जाये तो आराम से सोएँ। मेहनतकश वर्ग की इस तरह की मानसिकता के कारण भी प्रेमचन्द ने लिखा है -"जिस समाज में रात-दिन मेहनत करनेवालों की हालत इनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी नहीं थी और किसानों की मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मानसिकता का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।"[1] प्रसव पीडा में बुधिया मरती है। उसके कफन का पैसा गाँववाले इकट्ठा कर देते है। लेकिन दोनों बाप-बेटे उसे दारू-खाने में उडा देते हैं।

इनसान की बुनियादी लडाई आखिर भूख से है। एक दफा भरपूर खाने को मोहताज इन बाप-बेटों को बुधिया का कफन भर-पेट खाने का बहाना बन जाता है। मरते-मरते बुधिया बाप-बेटे की ज़िन्दगी के सबसे बडी ख्वाहिश पूरी कर जाती है। दोनों के पेट की आग में सामाजिक नैतिक भावना, आस्था की गहनता, रिश्तों की नरमियत तथा चरित्रपरक आदर्श सब कुछ पच जाती है। इस तरह प्रेमचन्द के किसान खेती से मज़दूर, मज़दूरी से गुलामी तथा गुलामी से तीव्र व्यक्तिवादी नकारात्मक विद्रोहात्मकता की तरफ गिरता चला जाता है। सुख और चैन की ज़िन्दगी उनको एक अतिमानवीय परिकल्पना लगते हैं।

उपर्योक्त अतिमानवीयता के प्रति आराधना अमरकांत की 'फर्क' कहानी में विद्यमान है। कहानी में एक लडका चोरी के इल्ज़ाम में थाने पहूँचाया जाता है। वह लडका भूख के

---

[1] प्रेमचन्द,कफन,

मारे चोरी करता था । मौके पर इधर-उधर से कपडा-बरतन चुराकर अपनी क्षुधा शांत करता था । लेकिन गाँववालों को वही सबसे बडा अत्याचारी है । वे उसे मार-पीटकर, गाली-गलौज का हार पहनाकर हवालात में डलवाते है । उनके विचार में 'देश को इन्हीं लोगों ने चौपट कर दिया है'।

उस समय इलाके का सबसे खतरनाक डाकू-सुखई डाकू थाने लाया जाता है । उसे देखते ही ग़ाँववलों की हुलिया बदलती है । सभी उनकी तरफ इस तरह देखते है मानो कोई देवता का दर्शन हुआ हो । सभी उसका गुणगायन करने लगते है -"अरे भाई ये भगवान से भी नहीं डरते । उलीस-पुलीस क्या चीज़ है । यहीं 205 कत्ल कर चुका है।........यह जिसको चाहे उठा ले जाय। पर यह है कैरक्टर का बडा सँचा । भले घर की स्त्रियों की तरह आँख उठाकर भी नहीं देखता ।"[1]प्रत्येक क्षेत्र में विजयी बनते खलनायक की अतिमानुषिकता किसान को आकर्षित करती है । अपनी हीनता तथा पराजय की तुलना में खलनायक तथा उसकी अमानवीयता की कामयाबी किसान को चुनौति देती है ।

शेखर जोशी की 'हलवाहा' कहानी में खेती छोडकर मज़दूरी में लगे किसानों का जिक्र है। ऐसे माहौल में निम्नस्तर का एक ब्राह्मण किसान हल लेकर स्वयं अपना खेत जोतता है, जिसकी परम्परा की सीख हल छूना भी पाप या मौत ठहराती है । इधर मजबूरी परम्परा का अतिक्रमण करती है । यह कहानी एक तरफ रूढियों से मुक्ति प्रस्तुत करती है तो दूसरी तरफ उजडती खेती को चित्रित करती है ।

दरअसल पूर्व पीढी की कहानियाँ किसानों के पराजय को चित्रित करती है । अपने जीवन को सम्भल न पाने से वह स्वयं हीन समझने लगा था । सामजिक मूल्यों पर अनास्था अमानवीयता के प्रति आराधना पैदा करने लगा था । नतीजतन समाज से परे किसान मौका

---

[1] अमरकांत,फरक,अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ

परस्ती बनने लगता है । वह शोषण को झेलने के साथ-साथ स्वयं सहजीवियों का शोषक भी बन जाता है ।

अस्सियोत्तर कहानियों में किसानों का संघर्ष

पुरानी पीढी की तुलना में नई पीढी शोषण के खिलाफ ज्यादा सक्रिय है । ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'पच्चीस चौका डेढ सौ' कहानी में एक अनपठ गँवार किसान का चित्रण हुआ है, जिसे चौधरी नामक सूद-खोर बरसों से ठगता आ रहा है । वह बूढा किसान अपनी बीवी की बीमारी के इलाज केलिये बरसों पहले चौधरी से उधार लिया था । उसका चुकता भी करता आ रहा था । लेकिन वह कभी खतम न होता था । आसल में चौधरी पच्चीस चौके का सौ के बगैर डेढ सौ का गलत पहाडा बताकर किसान को चकमा देता आ रहा था । उसमें से बीस रुपया निकालकर अपनी रहमदिली दिखाना भी नहीं भूला था । किसान उसे चौधरी का एहसान मानकर कर्ज, जो कभी नहीं खतम होता, चुकाता आ रहा था । चौधरी के तो दोनों हाथों में लड्डू ।

लेकिन किसान का बेटा शहर जाकर पढता है और नौकरी कमाता है । वह अपनी पहली तनख्वाह को पच्चीस पच्चीस के चार पुलिन्दों में बांटकर पिता को समझाता है कि पच्चीस चौका डेढ सौ नहीं बल्कि सौ है । चौधरी पर बरसों के अपने विश्वास को चकनाचूर पाकर वह किसान इतना ही कह पाता है कि -"कीडे पडेंगे चौधरी, कोई पानी पिलानेवाला भी नहीं रह जाएगा ।"[1] किसान का बेटा सुदीप पुरखों की गुलामी को बडी सहजता से समाप्त करता है ।

असगर वजाहत के 'ऊसर में बबूल' कहानी में एक किसान का चित्रण हुआ है जो केवल 'हाँ मालिक हाँ' कहना ही जानता है । मढकू नम्बरदार का हलवाहा है, उसकी दया

[1] ओम प्रकाश वाल्मीकि,पच्चीस चौका डेढ सौ,दलित कहानी संचयन,सं.रमनिका गुप्ता

पर जीता है । पूरे गाँव में नम्बरदार का अतंक भरा हुआ है । वह जब चाहे मढकू का घर पधार सकता है । उसके आते ही मढकू को अपनी पत्नी की शय्या छोडना पडता है –'नम्बरी को देखते ही सडकू का पिता सिडकू को खींचते हुए बाहर छप्पर के नीचे आ बैठता था और सिडकू को टाँकों के बीच में दाबकर सुला लिया करता था । कभी-कभी अन्दर से नम्बरी की आवाज़ आती-अबे मढकू बीडी ले आ । सिडकू का पिता तीर की तरह उठता।"[1]अगली सुबह नम्बरदार उसे एक रुपया सौंप देता था । मढकू की पत्नी भी पति हल्वाहा होने के नाते अपने ऊपर नम्बरदार का अधिकार मानती थी -"तुम्हारा बापु ओकार हलवाहा है । ओके पास से खाय का मिलता है ।"[2] रोटी के सामना क्या कभी नैतिकता रख सकता है, मजबूर किसान । उसकी आत्मा कबका मर चुका है । सबके सामने अपने बेटे को मारता पाकर भी मढकू नम्बरदार के खिलाफ कुछ बोल नहीं पाता है । लेकिन सिडकू बाप की तरह नहीं है । बाप की अकर्मण्यता उसे अखरती है -"बाबू क्या नम्बरी से कुछ न कह सकता था ? रोक तो नहीं सकता था, पर क्या और कुछ कह न सकता था ? हँसता न तो क्या हो जाता था ।"[3] वह बाबू से और घृणा करने लगता है और पिटने लगता है फिर भी वह लडना नहीं छोडता है । जब भी उसे कोई पीटता, वह रात में उसका खेत उजाड डालता, मौका मिलते ही वह नम्बरदार की खेत से ऊख, शकरकन्द, आदि चुराता, आलू की खेती उजाडता । वह नम्बरी के बैलों को धतूरा खिलाता है। बैल पगलाकर गुड भरी गाडी के साथ तालाब में कूदते हैं । गाडी को थूनी रखी जाती है ताकि पूरी तरह न डूब जाए । लेकिन सिडकू थूनी गिराता है । पिता जब उसे रोकने आता है, तो उसके सिर पर लाठी दे मारकर भाग जाता है ।

---

[1] असगर वजाहत,ऊसर में बबूल,उनका डर तथा अन्य कहानियाँ,पृ.105

[2] वहीं

[3] असगर वजाहत,ऊसर में बबूल,उनका डर तथा अन्य कहानियाँ,पृ.105

नरेन्द्र निर्मोही की 'पर्नोट' कहानी में भी नयी पीढी की नयी संवेदना चित्रित है । सत्तो का पिता कहता था कि इज्जत ही सबकुछ है-"लाख बार समझाया कि इज्जत ही सबकुछ है । इज्जत नहीं तो सबकुछ स्वाह न ! तू ही बता कि सब पुरुखों की मिट्टी दे दूँ उन्हें । उन्होंने कर्ज लिया है तो हमारे खातिर ही । कोई चोरी-चाकरी तो नहीं की"[1] सत्तो का पिता पत्नी को समझाता है । वह घरवालों को दूध पिलाने की लालसा में एक भैंस ले आता है । लेकिन भैंस के आते ही कर्जदार उन्हें लूटने लगते हैं । बिशन पण्डित धर्म-कर्म के वास्ते दान की खाते में पाव किलो दूध रोज़ लगवा देता है । सुरतू लंपट 'मामले का हौआ' दिखा आधा किलो दूध रोज़ बटोरने का हीला कर लेता है और सुखू शाह पर्नोट बदलने के नाम पर दो किलो दूध रोज़ बांध लगवा लेता है।आखिर घरवालों के हिस्से में सूनी हाँटि ही बचती है।सत्तू के पिता का ज़मीन सुखू शह के यहाँ गिर्वी रखी गई थी । उसकी वसूली के नाम पर बैलों की नीलामी होती है । वह सबके सामने सत्तो के पिता को ज़ालिम दिखाता है । हालातें आखिर सबक सिखाते हैं कि गरीब की वाकई कोई इज्जत नहीं रहती -"सत्तू की अम्मा अगर में जानता होता कि गरीब की कोई इज्जत नही होती तो तुझे चरखा न बेचने देता।.....सत्तू-तारो को दूध पीने से नहीं रोकता......सत्तू इज्जत नेकदिली के लोभ में अपनी देह न गलना...। अखिर उस वेदना में सत्तो का पिता मरता है ।

लेकिन सत्तू अपनी देह नहीं गलाता है । वह रात के सन्नाटे में सुरतू लंपट के यहाँ से अपना बैल खोल लाता है और अपना ज़मीन जोत देता है । फिर सुखू शाह के घर में घुसकर उसके सारे परनोट जला देता है । दलाली एवं सूदखोरी का अंत करता है । इस तरह सत्तो अपने मित्रों की सहायता से एक नवोत्थान को वाणी देता है । ज़मीन को केवल मिट्टी बनने से बचाता है। लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी है।

---

[1] नरेन्द्र निर्मोही,पर्नोट,ग्राम्य जीवन की कहानियाँ,सं गिरिरज शरण,पृ.97

किसान का जीवन ज़मीन से जुडा हुआ है । वह ज़मीन का ज़मीर समझ सकता है । उसकी सारी होड अपने ज़मीन से सोना उगालने केलिये है। ज़मीन एवं किसान के बीच मान और ईमान का सम्बन्ध है, जो पुरखों से विरासत के तौर पर मिलती है । लेकिन नयी पीढियों में ऐसे भी अनेक है, जो मिट्टी के सौगन्ध से आनजान है ।

कैलाश बनवासी की 'बज़ार में रामधन' कहानी में रामधन का भाई मुन्ना अपने पुर्खों की सम्पत्ति, दो बैलों को बेचकर कोई कारोबार शुरू करना चाहता है । वह पढा लिखा नौजवान है' देश को आगे ले जाने वालों में से एक है । फिलहाल नौकरी की तलाश में इधर-उधर भटक रहा है । अपनी फिरकापरस्ती खतम कर कोई छोटा-मोटा धन्धा शुरू करना चाहता है । अब नौबत रामधन पर यह आयी कि मुन्ना उसके बैलों को बेचने का ठान ले बैठा है । जब रामधन के पिता इन बैलों को नीलामी में खरीद ले आये थे, तब ये दोनों केवल बछडे ही थे । तबसे रामधन की निगरानी में ही पलने लगे थे । खेत जोतना, बैल गाडी में फाँदना, उनसे काम लेना उनके दाना-भूसा का खयाल रखना, उनको नहलाना-धुलाना और उनके बीमार पडने पर इलाज के लिये दौड-भाग करना सब रामधन के जिम्मे में था । लेकिन आज उसे बेचने की नौबत आई हुई है ।

बाज़ार में, रामधन के चंगे बैलों की बडी मांग होती है । अच्छे से अच्छे दाम बताये जाते हैं।यहाँ तक साढे तीन हज़ार की रकम बतायी जाती है अपितु रामधन चार हज़ार पर अडा रहता है । दरअसल रामधन अपने बैलों को बेचना नहीं चाहता । उस किसान का जीवन उन बैलों के साथ जुडा हुआ है जिसे नयी पीढी समझ सकती है कभी, हर्गिज़ नहीं । कहानी में रामधन को अपने बैलों से बात करते हुए चित्रित है, मानो बैल भी इनसान की तरह हो-"आखिर तुम हमें कब तक बचाओगे रामधन ? कब तक ?"[1] उपभोगी संस्कृति के माहौल में अपने बैलों के सवाल का वह ठीक जवाब नहीं दे पाता । उसके मूँह से बस यों ही

[1] बाज़ार में रामधन,कैलाश बनवासी,हंस,आगस्त2006,पृ.71

निकलता है कि अगले रोज़ शायद मुन्ना तुम्हें बाज़ार ले आ सकता है। ज़माना ऐसा आ गया है कि किसान अपने वजूद को संभाल नहीं सकता। एक सांस्कृतिक गत्यंतरण के सम्मुख अपने ज़मीन,अपनी ज़िन्दगी एवं उससे जुडे रिशतों को कायम रखने में हतभागे किसान संघर्षरत है, चाहे वह बेचने का झूठा नाटक रचाकर क्यों न हो। वह बता नहीं सकता है कि अपनी बपौति को कितने दिनों तक वह सम्भल पायेगा।फिर भी कोशिश जारी है।

ज़मीन में गल-गलकर सिमटते किसानों की कहानियाँ और भी है। संजीव की 'माँ' कहानी में एक औरत का चित्रण है जिसने अपना सारा जीवन मिट्टी की गोद में बिता दी है। अपनी पुश्तैनी खेती को वह अकेली सम्भालती है। उसके पति, बेटे, दादा, देवर, भाई भतीजी सब उनसे अलग अपनी अपनी ज़िन्दगी खुशहाली से बिताते हैं। लेकिन फसल कटाने पर अपना अपना हिस्सा मांगने आ टपकते हैं। अपना हिस्सा हडपकर माँ को छोड चले जाते हैं। फिर भी माँ हलवाहे की सहायता से मिट्टी से सोना उगाती हैं। लेकिन बच्चों को यह गवार नहीं होता। जाने किस इरादे से वे माँ का हलवाहे के साथ नाजायज़ संबन्ध ठहराते हैं। लेकिन माँ को सिर्फ़ अपने ज़मीन पर ही भरोसा है। वह औलादों को चुनौति देती है कि जो चाहे समझलो, जो करना है कर लो, उसे कोई फरक नहीं पडता। यह आत्मविश्वस उसे अपनी मिट्टी की देन है। आखिर गैंग्रीन से ग्रसित होकर उसी मिट्टी में वह मरती है।

रिशतों की कहानियाँ और भी हैं, जिन्हें ज़मीन जुडाती है। उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का करधन' कहानी में एक बिखरते परिवार का चित्रण हुआ है। परिवार की दर्दनाक हकीकत को कहानीकर इस तरह प्रस्तुत किया है -"फूफा मर गये थे, पिताजी महीनों से घर नहीं आ पाते थे, चाची बाँच रह गयी थी, पानी नहीं बरसता था हमारे चारों खेत बिक चुके

थे । पिछवाडे की आखिरी ज़मीन गिरवी रखी थी "[1] ऐसे माहौल में उजडते परिवार को संभालने का एकमात्र उपाय छप्पन तोले का वह करधन ही है, जिसे दादा ने दादी को दिया था । उसे हथियाने की जिजीविषा में वे दादी को भूखों मारते हैं । उजडी खेती के माहौल में रिश्तों में आयी अमानवीयता की यह मार्मिक दृष्टांत हृदयभेदी है ।

मिथिलेश्वर की 'हरिहर काका' कहानी में भी समान सन्दर्भ है । हरिहर काका बेऔलाद है । परिवार के पास पुश्तैनी सम्पत्ती बतौर कुल साढ बीघे ज़मीन हैं, जिनके चार भाई समान हकदार है । हिसाब के मुताबिक एक चौथा हिस्सा याने पन्द्रह बीघा ज़मीन हरिहर काका का है। शारीरिक कमज़ोरी की वजह हरिहर काका खेती में हाथ बांट नहीं सकता । इसलिये घर में उसकी उपेक्षा हो रही है । दरअसल 'उस संयुक्त परिवार में उसे कोई पानी देनेवाला तक नहीं । घर की बहुएँ ठहर चौका लगाकर पंखा झलते हुए अपने मरदों को अच्छे-अच्छे व्यंजन खिलाती हैं । हरिहर काका के आगे तो बची-खुची चीज़ें ही आतीं । कभी-कभी तो रूखा-सूखा खाकर ही हरिहर काका को संतोष होना पडता । इस पर भी औरतें पीठ-पीछे भुनभुनाती-फुसफुसाती, जैसे हरिहर काका को वे खाना क्या खिलाती है, उपकार करती हैं ।' आखिर हरिहर काका ऐलान करता है कि वह अपनी ज़मीन नौकरों की सहायता से स्वयं संभालना चाहता है । यहीं से समस्या शुरू होती है ।

इलाके के ठाकुरबारी में खबर पहूँचती है कि हरिहर काका घर छोडनेवाले हैं । ठाकुरबारी का महंत बता-फुसलाकर हरिहर कका की ज़मीन ठाकुरबारी के नाम कराने का प्रयत्न करता है । खबर पाकर भाई भी हरिहर काका को लेने पहूँचते हैं । इस पर मामला बिगडती है और ठाकुरबारी और भाइयों के बीच मार-पीट होती है । गाँववाले भी दो पक्ष में खडे होने लगते है । आखिर हरिहर काका फैसला ले लेता है कि जीते जी अपनी ज़मीन किसी

---

[1] उदय प्रकाश,छप्पन तोले का करधन,तिरिछ,पृ.61

के नाम नहीं करेगा ।–"मेरे बाद तो मेरी जायदाद इस परिवार को स्वतः मिल जायेगी इसलिये लिखने का कोई अर्थ नहीं "[1] तो अब हरिहर काका की मौत एक अनिवार्य परिणति बन जाती है ।'सबके मन में यह बात है कि हरिहर काका कोई अमृत पीकर तो आये हैं नहीं। एक न एक दिन उन्हें मरना है । फिर एक भयंकर तूफान की चपेट में यह गाँव आ जायेगा। उस वक्त क्या होगा कुछ कहा नहीं जा सकता । यह कोई छोटी लडाई नहीं, बडी लडाई है । जाने-अनजाने पूरा गाँव उसकी चपेट में आयेगा ही "[2] इस वजह लोगों को भय भी है और प्रतीक्षा भी । एक ऐसी प्रतीक्षा कि झुठलाकर भी उसके आगमन को टाला नहीं जा सकता ।

उपजाऊ ज़मीन ज़िन्दगी कायम करती है । लेकिन इस कहानी में ज़मीन की वजह सभी हरिहर काका के गुज़रने के इंतज़ार ठानकर बैठे हैं । ज़मीन एवं उससे जुडी संवेदना बदल चुकी है । ऐसे माहौल में हरिहर काका जैसों को अपनी मौत का इंतज़ार करना ही एकमात्र उपाय है। इधर ज़मीन उपजाऊ नहीं बल्कि बिकाऊ बनती है । वह रिश्तों को निर्धारित करती है ।

ज़मीन के नाम पर भाइयों की आपसी लडाई को टालने केलिये इलाहाबाद के पहाडी इलाके में एक प्रथा प्रचलित है । संजीव की 'हिमरेखा' कहानी इस पर केन्द्रित है । प्रथा के अनुसार स्त्री ही बच्चों को जन्म देती है और स्त्री से ही बंटवारा शुरू होती है । इसलिये प्रत्येक परिवार में केवल बडा भाई ही शादी कर सकता है । लेकिन उसकी पत्नी सबकी पत्नी होती है। यानी सभी का उस पर समान अधिकार है । उसकी कोख से जनम लेते सभी बच्चे चाहे वह बडे भाई के हो या छोटे भाई के, भाई होकर रहेंगे । पहाडियों केलिये उपजाऊ ज़मीन ही सोना है । उसके बंटवारे से बहतर वे बीवी की बंटवारा सही समझते हैं । गाँव की बूढी औरत कौशल्या देवि भाइयों की अलग-अलग शादियाँ रचाने के हादसे के बारे में समझाती है -

---

[1] मिथिलेश्वर,हरिहर काका,दस प्रतिनिथी कहानियाँ,पृ.106

[2] वहीं,पृ.110

"अरे खेती तीन जगह बांट जाती की नहीं ? एक नाली खेती पहाडी फाटकर कितनी मेहनत से निकल पाता है। ऐसे खेत पीढी-दर-पीढी टुकडे-टुकडे होते चले जाएँ, कौन चाहेगा इसे ? स्त्री ई तो घर को बाँधे है बेटा, एक से दो, हुई नई कि मुआसा (परिवार) फूटा, खेत टूटा।"[1] लेकिन किसान की शिक्षित नयी पीढी को इसे मानना असंभव है । कहानी में कपिल इलाहाबाद में पढाई के बाद घर लौट आया है । अब रिवाज़ के अनुसार उसे भाभी के साथ रात गुज़ारनी है । वह सिर्फ सात साल का था जब भाभी घर आयी थी । उसकी माँ के गुज़रने के बाद भाभी ने ही उसे नहलाया-धुलाया, खिलाया, पिलाया था । भाभी उसके लिए माँ थी । लेकिन रिवाज़ कहती है कि माँ नहीं बीवी है। माना तो माँ बनेगी बीवी, न माना तो देश निकाला, आखिर बकरे की माँ कब तक खैर बनाएगी । कपिल रिवाज़ को मानता है । वह भाभी के साथ रात गुज़ारता है । लेकिन मन के बहाव को कौन रोक पाता है । उसे गलती का एहसास होने लगता है । वह कागज़ का एक टुकडा निकालता है, उस पर सिर्फ इतना लिखता है कि 'तुम माँ थी सिर्फ माँ' और उसे भाभी की ऊँगलियों में फँसाकर खेत में चला जाता है और आत्महत्या कर देता है । रिश्तों के बीच जब ज़मीन अटकती है, तो इनसान की बलि अनिवार्य हो जाती है ।

संजीव की 'आरोहण' कहानी के भूप दा की राय में मिट्टी केवल मिट्टी नहीं है, ज़िन्दगी है। पहाडी इलाके में अपनी पत्नी के साथ वह अकेला रहता है । पिछली 'लेंड स्लाइड' में बाकि सभी पहाड छोडकर जा चुके हैं । लेकिन भूप दा की ज़िन्दगी उस मिट्टी से जुडी हुई है, जिसे वह छोड नहीं सकता-"कौण कहता है अकेला हूँ, हयाँ माँ हैं, बाबा हैं, शैला है.....,सोये पडे है सब। यहाँ महीप है, बल्द है, मेरी घरवाली है, मौत के मूँह से निकाले गये खेत हैं, पेड है, झरणा है । इन पहाडों में मेरे पुरखों, मेरे प्यारों की आत्मा भटकती रहती है । मैं उनसे

---

[1] हिमरेखा,संजीव,संजीव की कथायात्रा:दूसरा पडाव,

बात करता हूँ। मैं अकेला कहाँ हूँ ?"[1] कुछ साल पहले पहाड में बहुत बर्फ गिरा था। पहाड उसका बोझ नहीं उठा पाया। वह धसक गया था। उस बहाव में भूप दा के तीस नाली खेत, मकान, माँ-बाप सब दब गये मलबे में। भूप दा छानी पर था इसलिये बच गया। दस-दस किलोमीटर तक जगह-जगह धँसाव हुए थे। रास्ते बदल गये, झरने बदल गये, नदियाँ बदल गयीं थीं। इतनी बडी तबाही हो चुकी थी, मौत की तरह फैला हुआ म्याल। लेकिन वह किसान का मन उस नन्हीं चिडिया के समान है, जिसने जान छुडाने केलिये गीध से भी ऊपर उडने का दावा किया था। वह अपना सारा ज़ोर आसमाकर गीध के पीठ पर जा बैठा था, और गीध से भी ऊपर उडा था। इस तरह भूप दा भी मौत के पीठ पर बैठकर उसे हरा देता है। "इसी तरह मैं भी आ बैठा मौत के इस पीठ पर, उसी की जिसने मेरा सब कुछ निगल लिया था। धीरे-धीरे मलबा हटाता रहा यहाँ का। थोडी बहुत खेती शुरू करी। अकेला-अकेला लगा तो एक औरत ले आयी नीचे से.......शैला के आने से खेती फैल गई, बर्फ जमी न रहे, सो हमने खेतों को ठलवाँ बणाया, मगर एक मुसीबत, पाणी कहाँ से आये। एक दिन पाणी की खोज में चढ गये हम उस हिमाँग के साबुत ऊँचे हिस्से पर। वहाँ हमने देखा एक झरने यूँ ही उस तरह सुपित में गिर रहा था। उसे मोड लेने से पाणी की समस्या हल हो सकती थी, मगर बीच में ऊँचा था, याणी के पहाड काटना था। हमने क्वार के दिन चुने जब रात को बरफ जमने लगती थी, दिन को पिघलने लगती थी, मगर थोडी-थोडी। याणी उतना भी नहीं कि धार तेज़ हो, इतना भी नहीं कि बरफ जमकर सख्त हो जाये। बडी मेहनत की हम लोगों ने लेकिन झरने को मोड लाने में सफल हो ही गये आखिर।"[2] वह मेहनती अधेड उम्र का आदमी प्रकृति से लड-लडकर अपनी बपौति वापस ले लेता है, जिससे उसकी आत्मा जुडी हुई है।

---

[1] आरोहण संजीव,संजीव की कथायात्रा:दूसरा पडाव,पृ.326

[2] आरोहण, संजीव,संजीव की कथायात्रा:दूमरा पडाव,पृ322

हृशिकेश सुलभ की 'फज़र की नमाज़' कहानी में अपनी ज़मीन एवं परिवार की रक्षा के लिये खुदा से प्रार्थना करते एक बूढे किसान का चित्रण है। उजडी खेती, बिका हुआ खेत, दूभर होती ज़िन्दगी, ऐसे माहौल में आगे की सोचना उस की बस की बात नहीं है । कुछ साल पहले की बात दूसरी थी। दस-दस कट्ठे के चार टुकडे यानी दो बीघे उपजाऊ ज़मीन के मालिक थे बदरू । दो बेटे, लतीफ और महन्दी के बीच एक बेटी बासीरत, कुल तीन औलादों का संतुष्ट परिवार । पर नसीब के खेल के सामने कौन टिक पाता है। पहली बार उसके खेत तब बिके जब ब्याज की बढती रकम ने सब कुछ निगलना शुरू किया था । बिना कोई सूचना के एकाएक इलाके के सबसे बडे चीनी का मिल को मालिकों ने बन्द कर दिया था । दो सालों के गन्ने का पैसा मिल में रह गया । मिल खुलने के इंतज़ार में गन्ना खेत में ही सूख गया था । अगले साल इस उम्मीद में खेती लगायी कि शायद खुल जायेगा । वह फिर करज लेकर खेती लगाई गई, उसका तो डूबना सुनिश्चित था । करज से बचने का एकमात्र उपाय ज़मीन का एक चौथा हिस्सा बेचना ही था, बेच दिया । मेहनती किसान केलिये अपना ज़मीन कितना जीवंत है, बदरू की प्रतिक्रिया यह बात स्पष्ट है -"जिस दिन कचहरी में बयनामे के दस्तावेज़ पर अंगूठा लगाकर वह घर लौटा, उस रात बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर रोते रहे । उन्हें अपने अंगूठे पर घिन आने लगी थी । जी करता उसे काटकर फेंक दें ।"[1]

अपने ज़मीन के दस कट्ठे के दूसरा टुकडा तब बिका था, जब उसका बेटा अरब जाकर पैसा कमाने का ठान ले बैठा था । लतीफ अरब गया, पैसा कमाया लेकिन बदरू के घर लौट नहीं आया । वह ससुराल रहने लगा था । तब केवल एक बीघे के ज़मीन से घर पालना मुशकिल हो गया था, तो उसका आधा हिस्सा बेचकर महन्दी को अरब भेजता है ।लेकिन उसकी लाश ही घर लौटती है । किसमत के खेल में उस बूढे किसान की सारी कोशिश परास्त होता है । ऐसे माहौल में किसान आत्महत्या कर सकता है लेकिन वह बूढा रातों रात

[1] फज़र की नमाज़,हृषिकेश सुलभ,हंस आगस्त 2006,पृ145।

अपने बचे हुए खेत में चटाई बिछाकर फ़ज़र की नमाज़ अदा करता है, इस उम्मीद में कि अगर आसमान में उमड आये बादल बरसें तो बचा हुआ दस कट्टे का खेत पानी से तर जायेगा, तो उसमें रोपने-हल चलाने मेहन्दी ज़रूर आयेगा। उसकी उम्मीद, ज़िन्दा है।

उजडी खेती को साक्षी मानकर, अपने परिवार को पीछे छोड किसान शहर की तरफ भाग रहा है। पीछे खेती तथा परिवार की ज़िम्मेदारी बूढे माँ-बाप या औरत पर पडती है। एक तरफ शारीरिक कमज़ोरी, दूसरी तरफ सामाजिक मजबूरी। संजीव की 'जसी बहू', कहानी में एक औरत अपने पति की खेती की देख-रेख में हाड तोडती है। गन्ने की खेती की सिंचाई केलिये वह गाँव भर घूमती-फिरती है। आखिर अधिकारियों को बतला-फुसाकर रात को नल में पानी खुलाती है। पानी खेत को सींच रहा था कि बीच में किसी ने नाली काट दी। आखिर अपनी बेटी भुइली को नाली में लिटाकर वह बहाव रोकती है। भुइली को निकालने तक उसकी हाथ-पैर सन्न हो चुके थे। भोर तक आफत होने पर भी खेत पूरा वह सिंच नहीं पाती। आखिर बचे हुए खेत को हाथ से पानी उलीच-उलीचकर सिंचाती है। अकेली औरत होने के नाते किसी से वह मदद भी नहीं माँग सकती।

उतनी कडी मेहनत के बावजूद अपनी मेहनत भोगने का अधिकार उसे नहीं। उसके आँगन की इमली को रातों रात ठाकुर काट गिराता है। आम पहली बार फला था, रात ही में साफ; लौकि कुम्हडा तक न बचा था। सरसों फूलते ही उखाड लिये जाते थे। कैसी विडम्बना है कि उस मेहनती, खुद-इख्तियार औरत को पछाडने में पूरा गाँव इकट्ठा है।

ज़मीन से जुडी संवेदना बदल चुकी है। प्रेमचन्द की 'पूस की रात', 'कफन' जैसी कहानियों मे जो खेती छोडने की बात बतायी गयी है, किसान की नई पीढी भी उसका अनुगमन कर रही है। उजडती खेती, बढते कर्ज तथा सिकुडते आँतों के सामने मज़दूरी ही किसान को जायज लगती है। मिट्टी की आत्मा मर चुकी है। मिट्टी अब उपजाऊ नहीं बल्कि बिकाऊ है। उसके जुडाते रिशतों में बिखराव आने लगा है। फिर भी किसानों की ऐसी एक परम्परा है जो हारकर भी हार न मानती। स्वयं मिटकर भी अपने वजूद को कायम रखती है।

उसकी पवित्रता को बनाये रखती है। बाज़ार में रामधन, आरोहण, पर्नोट जैसी कहानियाँ उनके दृष्टात हैं।

मज़दूरों का संघर्ष:पूर्व पीढी

यश्पाल की 'मोटर्वाली कोयलेवाली' कहानी में एक कोयलेवाली का चित्रण है जो अपनी यौवन में ही बूढापा के प्रति सजग है। वह मणाली के यात्रि निवासों में आते सैलानियों को कोयला बेचती रहती है। वर्माजी उधर अपनी पत्नी से अलग होकर आया हुआ है। पखनू की निष्कपटता उसे खूब जंचती है। वह उससे शादी करना चाहता है इसलिये उससे बडी आत्मीयतापूर्वक व्यवहार करता है। वह प्रतीक्षारत है कि जाते समय पखनू कहेगी कि उसे भी साथ ले चलिये। लेकिन हादसा यह थी कि पखनू को अपनी सेवा के बदले एक सोने की ज़ंजीर ही चाहिये ताकि वह अपना बूढापा खुशहाली में बीते। वर्मा उसे पैसा देकर लौटता है। दरअसल पखनू जैसी मामूली कामगर औरत उससे ज्यादा कभी सोच भी नहीं सकती। उसकी संघर्षभरी ज़िन्दगी में वर्मा जैसों की बीवी का स्थान भावनातीत है।

'आदमी का बच्चा' कहानी की आया कहने में मजबूर होती है कि कमीनों के बच्चे ही भूख से मरते हैं। कहते हुए अपने बेटे लल्लू की यादों में उसकी गला रूँधने लगती है। भूख की हकीकत के सामने हीनभावना की कडुवाहट को पीने में वह अभिशप्त है। दोनों कहानियों में अवाम की निस्सहायता दर्शाया गया है।

फणीश्वरनाथ रेणु की 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' कहानी का आदर्श चरित्र है हीरामन गाडीवान। वह जितना सरल है, फैसले में उतना पक्का भी। वह नेकदिली से गाडीवानी करता है। पहले दो कसमें खा ली है कि चोरी का माल तथा बाँस की लदनी वह नहीं करेगा। हीरा बाई पर उसका दिल अडा हुआ है। वह इतना नेकदिल है कि यह नहीं जानता कि उसे कैसे अपनाया जाये। वह तीसरी कसम लेता है कि आगे कम्पनी कि लदनी......।

भीष्म साहनी की 'साग-मीट' कहानी का जग्गा बडा 'नेक आदमी"था, नमक हलाल। वह नौकर थोडे ही था, घर का आदमी था; 'हाथ का बडा साफ' था । हर तीसरे-चौथे दिन केक बनाता था, पर खुद कभी नहीं खाता था । वह कहता 'बीवीजी यहाँ केक खायेगा तो, बाहर उसे केक कौन खिलायेगा' । वह उतना नेक दिल था । लेकिन मालिक के घर में उसके साथ बडा ज़ुल्म होता है । विक्की बाबू ,जो 'बीवीजी' का देवर है, जग्गा की औरत से मूँह काला करता है । एक दिन विक्की बाबु, जग्गा की कोठरी से निकलते हुए उसके सामने फँसता है । जग्गा केवल 'विक्की बाबु 'ही कह पाता है । मालिक से, मालकिन से, अपनी घरवाली से । वह कुछ भी नहीं कह पाता, न हूँ, न हाँ । उस रात घर आये सभी मेहमानों को वह खाना खिलाता है और अगली सुबह फ्रंटियर मेल के सामने कूदकर आत्महत्या कर देता है । अपने अजीवन शोषण के सम्मुख आत्महत्या ही उसे उचित लगता है ।

अमरकांत की 'नौकर' कहानी के नौकर को सिर्फ 'जंतु' कहा गया है। मालिक के घर में उसकी हैसियत भी जंतु से बेहतर नहीं है । उस दस-पन्द्रह लोगों के परिवार में जंतु इकलौता नौकर है । वह सुबह से शाम तक व्यस्त है। हालांकि उसकी हिस्से में केवल गाली-गलौज ही बचती है । बीमारी पर कोई उसकी कोठरी में घुसते तक नहीं । दवा-दारू तो दूर की ही बात है। वकील साहब की, जो घर का मालिक है, राय में -"दवा-दारू की ज़रूरत ही क्या है, इन छोटी जाती के लोग तो हवा-पानी से ठीक हो जाते है ।"[1]उसकी पीडा को कहानीकार इस तरह प्रस्तुत करते हैं -

"उस रोज़ काम करते जंतु का शरीर चूर-चूर हो गया था । खाने के बाद दोपहर के समय थोडा लेटा तो देह में भयंकर दर्द होने लगा था । वह सोने की कोशिश की लेकिन सो

---

[1] नौकर,अमरकांत,अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ,

नहीं पाया। उसे प्यास लगी लेकिन थकावट की वजह से वह आँगन में पानी भर रखना भूल गया था। कुए तक जाने केलिये उसका तन मन इनकार कर रहा था । लेकिन प्यास अत्यंत ज़ोर की लगी थी । हलक सूख गया था जमहाई लेते हुए उढ गया था । बापरे बाप बाहर आग बरस रहीं है, कुआँ एक फर्लंग दूर और शरीर में भयंकर पीडा । बदन-चूर-चूर। आराम करने की तबियत हुई, सोने में कितना सुख है ।"[1] अचानक मालिक आकर उसे डाँटता है और पानी लाने केलिये कहता है।अच्छा हुज़ूर कहता हुआ जंतु बिजली की तरह उठकर भागता है । अपने शोषण से वह अनजान है । अपनी अस्मिता की चिंता उसमें लापता है । वह मात्र एक पुतला है जो मालिक की ऊँगलियों पर नाचता है । वह चेतना हीन है ।

अमरकाँत की 'मकान' कहानी का मनोहर अपने छोटे परिवार को सम्भालने केलिये लड रहा है । उसका प्रेम विवाह हुआ था, एक विधर्मी औरत के साथ । शादी के साथ रिश्तेदार अलग हो गये थे । वह शहर में दवाइयाँ बनाने के एक 'फेम' में चिट्ठियाँ डेस्पेच करता है । खाली में बिल्टियाँ बनाने में भी मदत करता था । उसका घर इकहरी कमरे का था, जिसमें पति-पत्नी तथा चार बच्चे घुट-घुटकर जीते थे। नसीब का खेल, उस पर बुरा गुज़रता है । किसी दोस्त के साथ मिलकर दूकान खोलता है, लेकिन सारा पैसा हडपकर मित्र फरार होता है । उसकी बीवी बीमार पडती है । उसकी कमाई रोज़ी रोटी की चक्कर में गल जाती है । घर उसे जहन्नुम सा महसूस होने लगता है ।–"दूर से घर को देखते हीमेरे शरीर में तनाव महसूस होने लगता है और मन में तूफान उडने लगता है । मेरे मूँह गम्भीर होकर फूल जाता है। मैं या तो मनहूस की तरह चुप होने लगता हूँ या ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता हूँ । बीवी का वहीं बेचारगी से भरा पीला चेहरा आँगन से उठती वहीं दुर्गन्ध, बच्चों की वही फटे पुराने कपडे । घर में सभी मुझसे डरते हैं और जितना वे डरते हैं उतना मैं उनको अपमानित करता हूँ । उन पर चिल्लाता हूँ, उनको कोसता हूँ । उससे मुझे संतोष मिलता है । लेकिन घर

---

[1] नौकर,अमरकांत,अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ

से जब मैं बाहर निकलता हूँ, तब मेरा मन अपने ही आप से पश्चात्तप से भर उठता है। मुझमें बीवी और बच्चों का असीम प्यार उमडकर लहरें लेने लगता है। मैं कल्पना में उनको ठाठस बाँधने लगता हूँ, उनके ललाड को प्यार से चूमने लगता हूँ। लगता है कि उनको जितना मैं प्यार करता हूँ उतना कोई न करता होगा।"[1] असफलता मानव में अस्मिता पर प्रश्नचिह्न डालता है। खोई हुई पहचान को वापस पाने की कोशिश का शिकार अक्सर वे ही होते हैं, जो अपने है या जिनके कारण अपनी पहचान है। इस द्विधा से त्रस्त एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार का सदस्य है मनोहर। धीरे धीरे उसका नैतिक पतन होता है। वह अन्धविश्वासी होने लगता है। सारी गलती अपने एक कमरेवाले मकान पर ठहराकर उसे बदलने को सोचता है। आर्थिक विषमता के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का यह निषेधात्मक अन्दाज़ है।

आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं के तहत अवाक खडे अवाम की मनावेगों का और भी प्रस्तुतीकरण है। अमरकांत की 'मौत का नगर' कहानी में सांप्रदायिक दंगे के ठीक अगले ही दिन नौकरी के वास्ते सडक पर उतरते एक महनती इनसान का चित्रण है। दरअसल आदमी स्वयं भूखा रह सकता है, लेकिन बच्चों को भूखे नहीं देख सकता। इसलिये मौत से खेलने केलिये वह तैयार हो जाता है। राम की भी यही हकीकत है। रासते में उसके साथ तांगे में एक मुसलमान आ बैठता है। वह भी काम के वास्ते ही घर से निकला था। हिन्दुओं की बस्तियों में उसे घबराता पाकर राम उसे हौसला दिलाता है। कहानी इस सच्चाई को उजागर करती है कि अवाम चाहे वह मुसलमान हो या हिन्दु, उनकी चिंता बस रोटी की ही है।

जितेन्द्र भाटिया की 'अज्ञातवास' कहानी में एक कार्यालयी कर्मचारी का चित्रण हुआ है जो हालातों से समझौता करता है। कार्यालय में उच्च अधिकारी उसका शोषण करता है। सरकारी कॉलनी का फ्लैट उसे किराये पर देता है, उसे सही नहीं लगता फिलहाल मजबूरन चुप्पी साधता है। चीनी खरीदने लंबी कतार पर खडा होते हुए वह काला बाज़ारी का

---

[1] मकान,अमरकांत,अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ

शिकार होता है । वह दूकानदार को चोर कहता है और पिटकर घर लौटता है। आइने में पिटा हुआ अपना ही चेहरा किसी और का लगता है ।–"वह बीवी को बहलाने की कोशिश करता रहा । तभी अचानक उसकी नज़र आईने की तरफ चली गई और उसका दिल दहल गया । ठुड्डी से होठ तक का हिस्सा सूजकर बदशकल हो गया था । दो तीन क्षणों तक उसे कुछ महसूस नहीं हुआ, फिर चेहरे की नसों में एक दर्दीला खिंचाव झेलते हुए उसे अचानक लगना शुरू हुआ कि सिलवटोंवाले सस्ते शीशे के पीछे से झाँकता वह पिटा हुआ घिनौना चेहरा उसका नहीं किसी और का है ।" पिटे हुए चेहरा देख विद्रोह की भावना की जागृति सहज है, लेकिन जहाँ विद्रोह का कोई मौका भी नहीं, उधर पिटा हुआ चेहरा, चाहे वह अपना ही हो, उसे गैर का समझना ही समीचीन है । कहानी का मनोहर वही करता है । वह हालातों से समझौता करना सीख लेता है ।

शेखर जोशी की 'बदबू' कहानी में एक मिश्री कथानायक को समझाता है कि "इस दुनिया में सबसे मेल जोल रखकर चलना पडता है । नदी किनारे की घास पानी के साथ थोडा झुक लेती है और फिर उठ खडी होती है । लेकिन बडे-बडे पेड धार के सामने अडते हैं और टूट जाते है ।"[1] दरअसल कारखाने में अफसरों का आतंक है । एक बार फैक्टरी में बीडी सुलगाने की वजह से 'बुधुन' को दण्द दिया जाता है । बीडी से आग लगने की सम्भावना थी । लेकिन अफसर साहबान तो हर दिर खुले आम सिगरेट सुलगाता घूमता था। 'वह' अधिकारी को भी दोषी ठहराता है ।-"साहब आग तो सभी की बीडी से लग सकती है ।.....अफसर साहबान तो सारे कारखाने में मूँह में सिगरेट दाबे घूमते हैं "[2] इस घटना के बाद उसे एक नायक का हैसियत मिलता है । समान विचारवाले मज़दूर उसके आसपास घूमने लगते हैं । उसके घर में सभाएँ जुडने लगती है ।

---

[1] बदबू,शेखर जोशी,प्रतिनिथी कहानियाँ

[2] वहीं

लेकिन उसके साथ सब कुछ बुरा ही गुज़रता है । उसका तबादला 'कॉस्टिक टेंक' में होता है । उसके पीछे जासूस घूमते रहते हैं । उसकी रोटी की डिब्बे में मशीन के पुर्जे रखे जाते है । ठीक दस बजे ही फाटक बन्द कर दिये जाते हैं । ऐसे माहौल में उसके साथी भी उसे कोसने लगते हैं । अखिर वह चुप्पी साधने लगता है, लेकिन अपने भीतर बदबू का एहसास कायम रखता है मानो मौके के इंतज़ार में हो ।

शेखर जोशी की 'नौरंगी बीमार है' का नौरंगी साफ सुधरा शख्स है । कारखाने का मुंशी बैनर्जी साहब ने किसी को गलती से दो सौ रुपया अधिक दे दीये । हिसाब देखते हुए उसे नौरंगी पर शक होने लगा था । नौरंगी के साथ पहले भी इस तरह हुआ है । तब उसने पैसा लौटाया था । इस बार मुंशीजी का अनुमान ही गलत था । लेकिन कारखाने में सभी नौरंगी को शंकित नज़रों से देखने लगते हैं । एकाएक एक दिन नौरंगी बीमार पडता है, तो सभी मज़दूर उनके प्रति हमदर्दी दिखाते हैं । कोई वेलफेयर लॉण का फोरम तैयार करने दौडता है तो कोईउसे गाँव पहूँचाने के लिये दो दिनों की छुट्टी माँगने केलिये सोचते है । लेकिन अगले ही दिन नौरंगी काम पर हाज़िर होता है ।

दरअसल यह कहानी परिवर्तन की तरफ इशारा है । बदलाव नौरंगी में नहीं उसे देखनेवाली आँखों में होती है । नौरंगी को छोड सभी मज़दूर मौकापरस्त हैं ।

शेखर जोशी की 'उस्ताद' कहानी का उस्ताद गाडी का अच्छा- खासा मेकानिक है । उसके पास काम सीखने केलिये कई लोग आते हैं । 'बाबु' भी इस तरफ आया हुआ है । उस्ताद उसे सब कुछ सिखा देता है, सिवाय वाल्टैमिंग बाँधने के । इस पर दोनों के बीच बहस भी चलती है । कुछ दिनों के बात रोडवेस की कारखाने में नौकरी केलिये बाबु चला जाता है । बाबु के जाने के पहले रेल्वे स्टेशन में उस्ताद बाबु से मिलता है और उसे वाल्टैमिंग बाँधने का राज़ सिखा देता है । दरअसल उसताद गैरेज में अपनी पहचान बनाए रखना चाहता था । इसलिये अपने और दूसरों के बीच फरक स्थापित करता आया था । इस कहानी

में मज़दूर अपनी पहचान के प्रति सजग होने लगता हैं। अपने और साथियों के बीच फरक करने लगता है।

जितेन्द्र भाटिया की 'शहादतनामा' कहानी में अमरजीत नामक एक आदर्श शील मज़दूर का चित्रण हुआ है, जो मज़दूरों की खुदपरस्ती मानसिकता के खिलाफ़ आवाज़ उठाता है। उसकी राय में ट्रेड यूनियन खुदगर्जगी केलिये नहीं है -"ट्रेडयूणियन का मतलब केवल खुदगर्ज मांगों केलिये तकरार करना नहीं होता, उसूलों की लडाई में उसूल सबके ऊपर होना चाहिये।"[1] अमरजीत का चरित्र उस कारखाने में अनोखा है। वह मज़दूरों से जुडी सभी समस्याओं पर आवाज़ उठाता है। एक बार कथावाचक को भी उसने बचाया था। एक बार एक ठेकेदार मज़दूर का हाथ मशीन के बीच में आकर कुचला जाता है। मज़दूर यूनियान का नेता रोड्रिग्स,मामले को टालना चाहता है, इसलिये कि वह मज़दूर स्थाई नहीं। लेकिन अमरजीत मैनेजमेंट से लडकर उसके परिवार को पाँच सौ रुपया नकद दिला देता है। इस पर वह यूनियान से अलग होता है और अपने आदर्शों की राह पर अकेले लडता है। इस तरह अमारजीत सब की आँखों में काँटा बन जाता है। एक दिन उसे कोई कॉस्टिक टेंक में धकेलकर मार देता है। कथावाचक इस दुर्घटना को देखता है, लेकिन मानेजमेंट उसे पदोन्नति देकर चुप कराता है। आदर्श एवं हकीकत के बीच संघर्ष को कहानीकार इस तरह प्रस्तुत करते है -"देखो,जो होना था हो गया, मैं अपने आप को समझाता जा रहा था। अब तुम कोई बेवकूफी मत कर बैठना। सोच लो अब भी सोच लो....मेरे भीतर एक शोर-सा उठने लगा। मेरी पीठ पीछे तालियों की गूँज और आगे खाली जगह, जिसके आगे जंगल शुरू होता था। जंगल के पीछे एक कतार में वे सारे चेहरे चिपके हुए थे। अपने आगे और पीछे के उस हुजूम में मैं किसी खोई हुई चेज़ की तलाश करने लगा। मुझे खुद पता नहीं था कि में किस चीज़ की तलाश कर रहा हूँ। पर अपनी बदहवाज़ खोज की आखिरी छोर तक पहूँचते-

[1] शहादतनामा,जितेन्द्र भाटिया,शहादतनामा

पहूँचते एक खामोश उदासी मेरे सिर पर सवार होती चली गयी.....सबसे ज्याद नफरत मैं अब अपने आप से करने लगा था !"[1] जहाँ आदर्श व समाजिकता का कत्ल होता है, वहाँ से खुदपरस्ती तथा तीव्र वैयक्तिकता की शुरुआत होती है ।

निष्कर्ष

प्रेमचन्द की 'कफन' कहानी के घीसु-माधव को कडे कामचोर चित्रित किया गया है। उन्हें अगर कोई काम केलिये बुलाता, तो वे निर्व्याज भाव से दुगुनी मज़दूरी माँगते थे, ताकि किसी न किसी तरह गला छूटें । उनमें कहीं कोई नैतिक मूल्य मौजूद नहीं है । यशपाल के कोयलेवाली के केलिये जीवन व्यापक संघर्ष के बराबर है । उसे यौवन में ही बुढापे की चिंता है । एक सोने की ज़ंजीर से ज्यादा वह सोच नहीं पाती है । 'आदमी का बच्चा कहानी 'की आया स्वयं कमीना मानने केलिये अभिशप्त है । 'तीसरी कसम' का हीरामन अपनी कामनाओं को कसम की ज़ंजीरों से बाँधता है । अमरकांत की 'नौकर' अपनी बीमारी में भी वकील साहब का मशीन है । भीष्म साहनी की 'साग-मीट' का जग्गा भी मालिक की शोषण नीति के खिलाफ एक लफ्स भी नहीं बोल पाता है । गोया 'कफन' को छोड अन्य सभी कहानियाँ पारंपरिक है । वे समस्या के खिलाफ नहीं, जीवन के खिलाफ संघर्षरत है । 'कफन' में व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह अन्दाज़ है ।

'मौत का नगर', 'मकान', 'अज्ञातवस' जैसी कहानियाँ निम्नवर्गीय नौकरी पेशे लोगों के आत्मसंघर्ष को उजागर करती हैं । 'मौत का नगर' का राम दंगे के ठीक अगले ही दिन काम के लिये घर से बाहर निकलता है । भूख से रोते बच्चों को वह देख नहीं सकता । वह समझौता

---

[1] शहादतनामा,जितेन्द्र भाटिया,शहादतनामा

ाहीं कर सकता । लेकिन अमरकांत की 'मकान' कहानी में घर 'मकान' में तबदील होते हुए चेत्रित है। कथानायक परिवार का बोझ उठा नहीं पाता है । वह धीरे- धीरे बेईमान होने नगता है । जितेन्द्र भाटिया की 'अज्ञातवास' कहानी भी समान कोटि की है । कथावाचक भपना पिटा हुआ चेहरा गैर का मानने की कोशिश करने लगता है । अतः वह ज़िन्दगी के साथ ामझौता करने लगता है ।

शेखर जोशी की 'नौरंगी बीमार है' कहानी में कुछ कामचोर मज़दूरों का चित्रण हुआ ्है, जो प्रेमचन्द के घीसू-माधव से सीथा सम्बन्ध जोडते हैं । बरक्स कहानी एक ईमन्दार ाज़दूर पर केन्द्रित होती है, जो अपने नाम पर किसी को लाभ उठाने नहीं देता तथा स्वयं ोईमानी नहीं करता । 'बदबू' कहानी में भी समान प्रसंग है । लेकिन 'बदबू' का नायक ातिकूल वातावरण में अपने आप को थोडा पीछे खींचना उचित मानता है । फिर भी भीतर यवस्था की सडी-गली बदबू का एहसास कायम रखता है । वह मौके का इंतज़ार करता है । उस्ताद' कहानी तक आते- आते मज़दूर अपने सहकर्मियों से डरने लगता है । अपनों के बीच ाह असुरक्षित रहने लगता है । अपना पहचान बनाये रखने केलिये वह संघर्षरत है । फिर भी ुसके मन में ईमानदारी कायम है। लेकिन 'शहादतनामा' तक आते ही ईमानदार मज़दूर का क़त्ल होता है और एक मौकापरस्ती मज़दूर कहानी के केन्द्र में आ जाता है । खुदपरस्ती की ुलना में वर्ग चेतना हार मान लेती है ।

जाहिर है कि अस्सीपूर्व की कहानियों में एक दिशापरिवर्तन की लीक मौजूद है, जो ूल्यशोषण का दस्तावेज़ है । यह वर्ग चेतना से व्यक्ति कामना की तरफ कदम-कदम का ाढाव है।

अस्सियोत्तर कहानियों में मज़दूरों का संघर्ष

मज़दूरों की कई भेद हैं। निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत अस्सियोत्तर कहानियों में चित्रित मज़दूरों के संघर्ष का अध्ययन किया गया है।

कार्खाना मज़दूरों का संघर्ष

यूनियन नेताओं की राजनैतिक खोखलेपन के खिलाफ आवाज़ उठाते मज़दूरों की अनेक कहानियाँ अस्सियोत्तर परिवेश में लिखी गई हैं । संजीव की 'चुनौती' कहानी, एक सडी हुई बदबू के एहसास से शुरू होती है "कहीं कुछ लगातार सडता जा रहा हो, जैसे उबकाई लानेवाले बदबू ।"[1] कामतानाथ राय सरकार की देख-रेख में चलती एक कारखाने की मौल्डिंग मिसिरी है। वह होशियार है । अपनी दक्षता केलिये कम्पनी से उसे 'विश्वकर्मा' पुरस्कार प्राप्त है । फिलहाल उसकी नौकरी पर प्रश्न चिह्न लगा हुआ है । कम्पनी में नई मशीनरी लगाने वाली है। इसलिये अक्सर मज़दूरों की छंटनी होती रहती है । कारखाना सरकार की देख-रेख में चलती है हालांकि सरकारी ऑर्डर भी प्राइवेट कम्पनियाँ हडप लेती हैं । उसमें मैनेजमेंट का बडा हाथ है। मज़दूरों को एक प्लांट से दूसरी प्लांट में बदला जाता है, ताकि कम्पनी की वफादारी दिखा पायें । कामतानाथ राय केलिये तो 'कहाँ मॉल्ड बनाने का दिमागी काम, कहाँ पाइप ठेलने का थका देनेवाला काम'। लेकिन मज़दूरी उसकी मजबूरी है ।-"रिटायेर्ड बाप, अनब्याहे बेटे-बेटियाँ और बीमार पत्नी का बोझ, सर पर दिनों दिन भारी ही होता जा रहा है । जब तक उन सब केलिये अलग-अलग बिल तलाशकर अपनी ज़िम्मेदारी से बरी नहीं हो जाते, नाक, कान, आँख, मूँद सी लेने में ही भला है।"[2]

---

[1] चुनौति, संजीव,संजीव की कथायात्रा:पहला पडाव,पृ.430

[2] चुनौती,संजीव,संजीव की कथायात्रा:पहला पडाव्

इसलिये बदबू जैसे जैसे उसकी नाक को चिकोटती, वे कछुए की तरह गरदन, सिकोडते ही चले जा रहे थे । छंटनी से वह डरता था, जहाँ भेजते वहाँ काम करने लगता था । फिर भी छंटनी का डर तल्वार की तरह उसके सर के ऊपर हमेशा लटकती थी। कभी-कभार दिमाग में ऐसी चिंता होने लगती थी कि 'काम करते-करते मर जाएँ, तब बाप की नौकरी बेटे को मिलती है' । लेकिन बात उतनी सरल नहीं है । नयी मिशनरी की वजह से नई भरती नहीं होती है । ऐसे माहौल में मज़दूर मानेजमेंट के चेले बनना उचित समझते है, लतीफ़ की तरह । लतीफ़ खुलकर बताता है कि आज हराम की रोटी ही पचती है ।-"खूब पचती है कामता भाई । इस ज़माने में हराम की रोटी ही पचती है।"[1] आखिर बदहाली को झेलते झेलते कामता नाथ अफसर के खिलाफ बोल उठता है -"हर कोई बनियागिरी या दलाली नहीं कर सकता, आप लोगों की तरह। आप आदमी को छाँटकर मशीनें क्यों लगा रहे हैं । इसलिये न की आदमियों की तरह उन्हें भूख-प्यास, मान-सम्मान, छुट्टी, सिक का चक्कर नहीं होगा, न उसके बाल-बच्चे होंगे । यह आप क्यों भूलते है कि आप का काम भी कोई मशीन सम्भाल सकती है । फर्ज कीजिए, आप को हटाकर एक सूपर कम्प्यूटर रखा जाए, आप और आपका परिवार बेरोज़गार हो जाए, तो आप पर क्या गुज़रेगी।"[2] वह मैनेजमेंट की खोखली राजनीति को समझता है। उनके खिलाफ आवाज़ उठाने में दोबारा सोचने की ज़रूरत नहीं पडती -"इस खर्चीले एक्स्पेरिमेंट की सफलता के बाद यह प्लेनिंग क्यों रद्द कर दी गई ? क्यों कम्पीट कर गये इससे इंफेरियर माल बनानेवाले भी । और क्यों हथिया लिये हमारे दूसरे ऑर्डर्स भी प्राइवेट कम्पनियों ने, जबकि सरकार ही खरीददार है ? सरकार खुद हमें पूँजीपतियों के

---

[1] चुनौती,संजीव,संजीव की कथायात्रा:पहला पडाव्

[2] चुनौती,संजीव,संजीव की कथायात्रा:पहला पडाव्

सामने घुटने टेकने को कहती है और विकास की बात करती है।"[1] वह अपने बनाए कास्टिंग पर लेटता है, जिसपर वह सम्मानित था और जिसे अब तोडने का आदेश दिया गया है। अनेक मौका परस्तियों के बीच यह एक मज़दूर की अनोखी लडाई है, जिसे हराम की रोटी नहीं पचती है।

संजीव की 'भूखे-रीछ' कहानी का रामलाल अपने किसी साथी की मौत या बीमारी चाहने लगता है, ताकि ऊपर टैम मिल जाएँ। मामूली मज़दूरी से वह अपना घर नहीं पाल सकता। दलाली का पैसा लेना चाहता है, लेकिन मास्टर साहब अनुमति नहीं देता, जो उन लोगों का नेता है। वह आदर्शवान है। उसके आदेश पर ही उसने एक मुसलमान औरत से शादी की थी। उस औरत का बलात्कार हुआ था आगामी आत्महत्या से उसे बचाने का एकमात्र उपाय रामलाल के साथ शादी ही थी। उनकी बडी लडकी गोरी-चिट्टी है, जिसे वह 'मिलटनवाँ की बेटी' कहता है। फिलहाल वह अपनी 'मिल्टनवाँ की बेटी' की शादी तथा अपने 'चुहारे सा मरियल' लडके को एक पॉव दूध दिलाने केलिये ही तरस रहा है। इस मोड पर वह मास्टरजी के आदर्शों पर पुनर्विचार कर रहा है।–"आंदोलन-वांदोलन सब फालतू बातें हैं। साहब लोग कौन सा आंदोलन करते हैं ? कित्ते पैसे पाते हैं ? कित्ते ठाठ से रहते हैं? तीन तीन बार पगार बढ चुकी है उनकी। ठेकेदार से या इधर-उधर से जो खाते है, सो अलग। इधर हम साले मज़दूर स्ट्राइक करते हैं, धरणा लेते हैं। कुत्तों की तरह छीना-झपट्टी करते हैं, ऊपर टैम,पर्मोसन, क्वार्टर के टुकडों पर दुम हिलाते हुए साहबों के पीछे-पीछे चलते हैं, फिर भी पेट नहीं भरता। .....उसने भी दस-बारह साल मास्टर की बात मानकर देख ली। भला जो आदमी लीडर बनकर अपना टंडैली तक नहीं ले सका, वह भी कोई लीडर है। देखो बिहारी को मास्टर का साथ छोडे केवल तीन साल बीते हैं और इन तीन सालों में क्या नहीं

---

[1] चुनौती,संजीव,संजीव की कथा यात्रा:पहला पडाव्

है उसके पास-टण्डैली, क्वार्टर, पेंसल, स्पेशल ऊपर टैम, दो दो आदमी तक भरती करा चुका है अपने।"[1] मज़दूरी के पिछले पन्द्रह सालों में उसकी ज़िन्दगी में ऐसा एक मुकाम नहीं आया कि इतमीनान से पेट भरने और तन ढकने की ज़रूरतों को पूरा कर सके । इस दौरान कारखाने में हवा चलने लगती है कि ओर्डर के अभाव में एक षिफ्ट बन्द कर दी जाएगी । मज़दूर मोर्चाबन्दी में जुडते है; लेकिन रामलाल पीछे रह जाता है । कार्खाना पूरे के पूरे समाप्त करने की खबर थी । अफवाहें फैली कि वफादार लोगों की सूचि बनाई जा रही थी, जिन्हें नई जगह पर फिर से बहाल कर दिया जाएगा । अचानक बिहारी उसके सामने आता है और अपनी मिल्टनवाँ की बेटी की पूँछ पकडकर वैतरणी पार करने की नसीहत देता है । कोई अफसर साहब को उसके बदन की प्यास लगी हुई थी । रामलाल अवाक रह जाता है । उसे भूखे- रीछों की कहानी याद आती है, जिसमें भूखे-रीछ, अपने ही घायल साथियों को चीर-फाडकर खाते हैं । उसकी जेहन में पन्द्रह साल पहले की तस्वीर कौन्ध उठती है ।....एक लाचर बाप...एक लालच...एक लडकी....एक दलाल। वह कोयले से तपती रॉड उठाकर बिहारी को दागने लगता है और सपरिवार मोर्चे में जा मिलता है ।

"मैं जी सकता था ,मगर सिर्फ उसकी गाडी की स्टेपनी बनकर-मेरे कान, नाक, आँख, जीभ, गुदा, दिल, दिमाग, मेरा चमडा, मेरा खून, मेरे अंग-प्रत्यंग, रहते उसके विकल्प बनकर, ताकि वक्त आने पर वह इन्हें ट्रॉँस्प्लांट कर लें,मेरी बीवी बच्चा तक।"[2] संजीव की 'हलफनामा' कहानी का मज़दूर अपने जीवन की हकीकत बता रहा है । वह पूर्णतया अपने मालिक की अमानत है । वह अदालत के सामने खडा है । उस पर अपने मालिक को मारने की कोशिश का इल्ज़ाम लगा हुआ है । उसका नाम हनीफ है। उसका सेठ उसके बचपन का दोस्त है । बचपन में उसने सेठ की काफी मदद की थी जब वह काबिल था। बदले में सेठ उसे

---

[1] भूखे-रीछ,संजीव,संजीव की कथा यात्रा,पहला पडाव

[2] हलफनामा,संजीव,संजीव की कथायात्रा:तीसरा पडाव,पृ56

अपनी फैक्टरी में काम दिया था और अपने बगीचे के सेर्वेंट क्वार्टर में रहने की जगह भी दी। दरअसल सेठ की नज़र हनीफ की बीवी पर पडी हुई थी। सेठ अपने घर के पुराने टि.वि.सेट, फ्रीज़, धुलाई मशीन, मसाला पीसने की मशीन आदि देकर हनीफ की बीवी को पटाता है। सेठ की इस तरह की मरदानगी के सामने हनीफ की बीवी हनीफ 'नामर्द' समझती है। बीवी हनीफ से रूठकर चली जाती है। सेठ कारखाने में नए प्रदूषण नियंत्रक संयंत्र लगाने के नाम पर मज़दूरों की आधी तनख्वाह हडप लेता है। हनीफ उसके खिलाफ बोलता है। उसे तेज़-दिमागी जानकर सेठ दूसरा चाल चलाता है। उसे नौकरी में तरक्की दिलाना चाहता है-अन्य मज़दूरों पर निगरानी करनेवाले के रूप में। हनीफ उसे टालता है, जिस पर बात बिगडता है और उसे सेर्वेंट क्वार्टर से निकालता है, उस पर कत्ल की कोशिश का इल्ज़ाम लगाकर उसे फैक्टरी से निकाल देता है।

हनीफ विचारशील है सेठ की उपभोगनीति को वह खूब समझता है।-"वह नहीं चाहता था कि हमारी निजी सोच का एक कतरा भी रह जाए। हमारे दिमाग में हम सब वहीं, उतना ही और वैसा ही सोचे, या करें जो जितना और जैसा वह चाहता था। जबकि मैं चाहता था कि मैं कुछ अपनी दीन दुनिया के बारे में सोचूँ.......उसने रहम खाकर मुझे रोज़ी रोटी और आश्रय दिया कि उसने मुझे पूरा आदमी बनाने केलिये फ्रिज, कूलर, मिक्सिंग, ग्राइंडिंग मशीन ही नहीं कलर्ड टि.वि भी दिया कि वह अपने तमाम कामगारों का बौद्धिक धरातल ऊँचा उठाने केलिये स्वस्थ मनोरंजन मुहैया कराता है, मगर हमारी ज़रूरतें और प्राथमिकताएँ तय करने का अधिकार उसे क्यों है, और हमें क्यों नहीं है। वह दुलहन की चाची क्यों बैठा है जबरन। "[1] हनीफ की यह पहचान समूचे उपभोगवादी नैतिकता के खिलाफ विद्रोह है। लेकिन हकीकत यह है की उसे झूठी मुकदमे में फँसाने में वह उपभोग संस्कृति सफल होती है।

---

[1] हलफनामा,संजीव,संजीव की कथायात्रा:तीसरा पडाव,पृ.57

उदय प्रकाश की 'टेप्चू' कहानी का टैप्चू की बात मानो, हैरतअंगेज़ है। लाख चाहे उसे कोई नहीं मार सकता मानो उस मज़दूर के पास आने से मौत भी डरती है । बचपन में भूख की खातिर तालाब से कमलगट्टे तोडने हुए उसका सामना मौत से हुआ था । वह डूब गया था, लेकिन बच निकला । ताडी चुराते हुए ताड से गिर गया था, फिर भी ज़िन्दा रहा । किशन पाल सिंह के गुण्डे उसके सारे अंग तोडकर नदी में फेंक दिये थे, फिर भी वह वापस आया और सारे गुण्डों के घरों को आग देकर गाँव से बच निकला । फिर कारखाने में अपनी छंटनी रोकने की कोशिश में वह पकडा गया । पुलीस उसकी खूब मरम्मत करती है और उसकी दोनों कन्धों पर गोली मारकर उसे पेड से लटका देते हैं । लेकिन अस्पताल में, पोस्ट्मॉर्टम टेबल पर पर वह जी उठता है और आवाज़ उठाता है-"डॉक्टर साहब, ये सारे गोलियाँ निकाल दो । मुझे बचा लो, मुझे इन्हीं कुत्तों ने मारने की कोशिश की है " उस जोशीले मज़दूर को कोई चाहे लाख मारे, मौत के मूह में वह जी उठता है, यह कहते हुए कि मरने का मेरा मन नहीं करता । वह समूचे मेहनतकश ज़िन्दगियों की उम्मीद की प्रतिनिधी है । जोंक की तरह ज़िन्दगी से जुडा हुआ है, ज़िन्दगी उसके साथ नहीं बल्कि वह ज़िन्दगे के साथ है । ज़िन्दगी उसके लिये मजबूरी नहीं मदहोशी है।

सतीश जमाली की 'आवाज़' कहानी का फैक्टरी कर्मचारी सक्सेना अपने बडे अधिकारी के खिलाफ आवाज़ उठाता है -मैं आपको बता दूँ, मुझे आप या कोई और नहीं रोक सकता । मेरी नौकरी लेने की आपने धमकी दी है, तो उसे आप अपने चूतडों में घुसेड दीजिये।"[1] वह फैक्टरी में कर्मचारियों केलिये संगठन बनाने की कोशिश में था । बडे अधिकारी को खबर मिली और उसे पटाने केलिये पदोन्नती का प्रस्ताव रखा गया । वह उसे ठुकरा देता है । आखिर उसकी पिटाई कर फर्णेज़ में फेंकने का प्लान बनाया जाता हैं ।

---

[1] अवाज़,सतीश जमाली,व्यवस्था विरोधी कहानियाँ,सं.नरेन्द्र मोहन.पृ173

कहानी में शर्मा नामक एक कर्मचारी का चित्रण हुआ है, जिन्होंने सक्सेना को मोर्चे पर लाया था । लेकिन मामले को बिगडते हुए पाकर वह पीछे हटता है –"मैं तुमसे जो कह रहा हूँ उसे तुम ध्यान से सुनो । तुम यहाँ से अभी चले जाओ, और काफी दिनों तक यहाँ नहीं आता । फैक्टरी के आसपास कभी मुझसे कोई बात भी नहीं करना । मैं बहुत गरीब आदमी हूँ, मेरे मुझसे छोटी मेरी बहन है, मुझे उसकी शादी करनी है । घर पर बूढे बाप है जो बहुत बेचारे हैं और कुछ नहीं करते । मुझे उन सब केलिये खर्चा भेजना होता है । यह मेरेलिये ज़रूरी है । अगर मेरी यह नौकरी चली गयी तो मेरे साथ ही उन सबकी भी बुरी हालत हो जाएगी। "[1] अपने जीवन यथार्थों के सामने शर्मा का सिर झुका हुआ है । वह विवश है निहायत विवश। उसकी परिस्थितियाँ ही ऐसी है, जिन्होंने उसकी आत्मा की हत्या की है । आगे कुछ करने की क्षमता शर्मा में नहीं शेष है -"अब मैं इस सच्चाई पर पहूँच चुका हूँ कि मैं कुछ नहीं कर सकता । मैं कोई काम नहीं कर सकता मैं मर चुका हूँ। "[2] परिवार मज़दूर की मजबूरी है, जिसके सामने स्वयं सर झुकाने केलिये कोई तैयार हो जाता है । लेकिन सक्सेना कोशिश के बगैर नहीं मर सकता । अपनी ज़ख्मी-खूनी हालत में भी वह आवाज़ उठाता है, जिसे कोई नहीं रोक सकता । कहानी का अंत इन पंक्तियों से होती हैं जो प्रेरणादायक है - "मेरे शरीर में पीडा भरी थी, लेकिन मेरी आवाज़ में ज़िन्दगी की थडकन थी । मेरे सामने जैसे हज़ारों का हुजूम खडा था और मैं बोल रहा था । बोलता जा रहा था कि अचानक मेरा पाँव जमे हुए खून के एक लोंदे पर पड गया । खून के उस बडे लोंदे के चारों और चींटियाँ इकट्ठी हो गयी थीं। मुझे हैरान हो गया कि मेरा खून इतना मीठा कैसे हो गया । मेरा खून अगर इतना मीठा होता तो क्या में सिन्हा की बात न माना गया होता ? नहीं नहीं यह मेरा

[1]अवाज़,सतीश जमाली,व्यवस्था विरोधी कहानियाँ,सं.नरेन्द्र मोहन,पृ173

[2]अवाज़,सतीश जमाली,व्यवस्था विरोधी कहानियाँ,सं.नरेन्द्र मोहन.पृ173

खून नहीं था । अच्छा हुआ यह मेरे शरीर से निकल गया।"[1] इस विचार से उसे 'वास्तविक खुशी 'होती है । वह दूने जोश से बोलना शुरू करता है । यों वह मज़दूर की अपराजेय आत्मविश्वस का दस्तावेज़ बनती है ।

कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनके केन्द्र में हतभागे मूल्यच्युत मज़दूरों का संघर्ष चित्रित है । शैलेन्द्र श्रीवास्तव की 'चाल' कहानी में एक मज़दूर का आत्मकथन इस तरह चित्रित है -"दर असल मैं कोई दलाल नहीं हूँ । फैक्टरी में नौकरी करता था, वह छूट गयी। महीनों से बेकार घर पडा हूँ । घर का खर्च सम्भालना मुश्किल हो गया है । मजबूरन आखिर इस रास्ते में आना पडा । मैं आपको रेडलाइन एरिया की वेश्या का ऑफर नहीं कर रहा था, मैं अपनी बीवी को ही पेश करना चाह रहा था।"[2] मुम्बई जैसे महानगर में रोटी के मोहताज मज़दूर अपनी बीवी की पूँछ पकडकर बचना चाहता है । आदमी का इस हद तक गिर जाना कथावाचक की मध्यवर्गीय कपट मान्यता को चुनौती देती है -"किसी की पत्नी खुद बदचलन हो जाए और उसका आदमी जानते हुए भी कुछ कर सकने में असमर्थ हो जाए, बाद में समझौता कर ले परिस्थितियों से, यह तो हो सकता है । लेकिन स्वयं पत्नी को वेश्या स्वरूप बनाने की कोशिश करे, यह मुमकिन नहीं है।"[3] पर यह एक कडुआ सच है ।

संजीव की 'आविष्कार' कहानी में एक पितामह अपने पोते को अपने अच्छे-खासे कार्खाने की तबाही की वजह इस तरह बता रहे हैं -"हम में संघर्ष करने की कूवत ही नहीं

---

[1] आवाज़ ,सतीश जमाली,व्यवस्था विरोधी कहानियाँ,सं.नरेन्द्र मोहन,पृ174

[2] चाल,शैलेन्द्र श्रीवास्तव,नवें दशक की कथा यात्रा,सं.धर्मेन्द्र गुप्त,पृ.169

[3] चाल,शैलेन्द्र श्रीवास्तव,नवें दशक की कथा यात्रा,सं.धर्मेन्द्र गुप्त,पृ.169

रह गयी थी।"[1] कारखाने की अकाल मृत्यु हुई थी । मालिक उसे बेच रहा था, कोई सिनेमा सिटी की खातिर । हालांकि मज़दूर उसे बचा सकते थे, अपनी पि.एफ.से प्रत्येक मज़दूर पूँजी बतौर दो लाख दिलाकर । लेकिन उसके लिये कोई राज़ी नही हुए । अगले दिन फैक्टरी गिराने का ठेका दिया जा रहा था और उधर काम मिलने केलिये मज़दूरों के बडी कतार लगी हुई थी ।

अस्सियोत्तर प्रारम्भिक कहानियाँ ज्यादातर ऐसे मज़दूरों पर केन्द्रित है, मज़दूरों के आंतरिक व आपसी शोषण के खिलाफ लडते हैं । मौका परस्ती व खुद परस्ती को गलत साबित करती है।अपने ही खून पीने वाले भूखे- रीछ बनने से मज़दूरों को रोकती है । उसकी तुलना में बहुत विरले ही कहानियों में वर्ग संघर्ष चित्रित है । संजीव की 'हलफनामा' कहानी तक आते आते आदर्शशील मज़दूर को अदालत तक खींच लाने में एक उपभोगवादी संस्कृति कायम होती है । और 'आविष्कार कहानी में आते ही मज़दूर की वर्ग चेतना पूरी तरह बिखरती है और वह अपने ही कार्खाना गिराने के ठेके के पीछे लैन लगा देता है । इस तरह अस्सियोत्तर कहानियों में वर्ग चेतना से वैयक्तिक चेतना की तरफ एक तीव्र पतन दृष्टिगोचर है । फिर भी आवाज़, टेप्चू जैसी अनोखी कहानियाँ आशादायक है ।

घरेलू नौकरों का संघर्ष

मृदुला गर्ग की 'उसका विद्रोह'कहानी के नौकर को, मालिक के घर में अपना बाल बढाने का भी अधिकार नहीं है । नाई के सामने बैठने पर करीब-करीब रोज़ ही उसका मन होता है कि अपने चेहरे पर उगते उन बेतरतीब बालों का इस बेदर्दी से सफाया न कराए । वह उसकी अपनी चीज़ है जो वक्त-बेवक्त अपना काम आ सकती है । और कुछ नहीं तो यह एहसास कराते रह सकती है कि वह अपनी मरज़ी से अपने बाल को बनाए रह सकता है ।

[1] आविष्कार,संजीव,संजीव की कथा यात्रा:तीसरा पडाव,पृ.320

बाल कटते वक्त उठकर भाग नहीं सकता, उसका मालिक यह गुस्ताखी बर्दाश्त नहीं कर सकता । वे किसी बहुत ऊँचे ओहदे पर थे । कई बार उसे जतला चुके है कि एकाएक तबादला होने की वजह ही उन्हें उस जैसी वहशी को रखकर काम चलाना पड रहा है । वे यह भी कह चुके थे कि जो कुछ वे चाहते-कहते है उस पर पूरा पूरा अमल करने पर ही वे उसे काम पर रखे रह सकते हैं । हालांकि वह नौकरी छोड भी नहीं सकता । उस घर में उसे मोटी तन्ख्वाह मिलती थी । मेम साहब रोटियाँ गिनकर नहीं देती थी और उसके लिये अलग कमरा और गुसल्खाना भी थे । इन सबकी खातिर वह मन मारकर उनकी बेढंगी तर्कीब भी मान लिया करता था । और भद्दी खरी-खोटी को भी नज़रन्दाज़ करता था ।

इस बीच उसकी शादी पक्की होती है । नौकरी न छोडने केलिये एक और वजह । उसके मन में कलपना उभारती है कि उसकी होनेवाली पत्नी इठलाती-बल्खाती लहरों पर तैरती नाव पर बैठी नदी का आनन्द ले रही है। उसका मन होता है कि दोनों बाहें फैलाकर किसी फिल्मी हीरो की तरह गा उठे । पर वह गा नहीं सकता । उसके मालिक की कडी मनाही थी कि घर के भीतर वह किसी भी हालत में न गाए, गाए क्या गुनगुनाए भी नहीं। वह जलदी से जलदी काम समेटने के बाद दोपहर की छुट्टी लेकर कोई सिनेमा देखने जाने वाला था कि घर में दो-तीन मेहमान आ पधारे । अपना काम खतम करने की जलदी में उसके हाथों से चाय का प्याला फिसलता है और एक मेहमान की गोदी में गिरता है । इस पर मेमसाहब उस पर खूब भडकती है -"गधे के बच्चे ध्यान कहाँ रहता है, छह महीने हो गये तुझे काम करते, पर अभी तक वैसा ही बन्दर बना हुआ है और छछून्दर की तरह इधर-उधर उछलता रहता है । हाथ पर क्या कालिख पडा है, जो ट्रे तक नहीं सम्भाल सकता । हर चीख के साथ उसके मन में बचती फिलमी धुन तडाक-तडाक टूटती रही । चीखों के विस्फोट में उसे लगता कि उसकी कलपना में तैरती हुई नाव डूब गयी है और बाहों में आती हुई भावि पत्नी लहरों

में ही कहीं खो गयी है।"[1] उसका वह विश्वास गहराता है कि लाख लडकी का बाप चाहे कोई लडकी उस जैसे गधे, बन्दर, छछूँदर का हाथ थामने से रही उसका जी चाहता है कि चीखे और कहें-गधे, बन्दर, छछून्दर तुम हो । यह लो अपनी नौकरी मैं जा रहा हूँ।" लेकिन वह कुछ नहीं बोलता। उसे मालूम है कि उसकी शादी नौकरी पर निर्भर है । वर्ना उसकी चाय और तरीदार रोटी का लालच वह उसी पल वहीं छोडने को तैयार हो जाता । उसका मतलब यह तो नहीं कि वह कुछ भी नहीं करता । वह घर के बाहर बर्तन माँचते हुए ऊँची आवाज़ में गाना गाता है । इतने ज़ोर से कि बेडरूम में पडी मेम साहब के कानों तक उसकी आवाज़ साफ-साफ जा पहूँचे। यहीं नहीं पडोसियों के कानों तक भी पहूँच जाए और वे कह उठे की पडोस का नौकर किस कदर उद्दंड और गुस्ताख है ।

चित्रा मुदगल की 'मामला आगे बढेगा अभी' कहानी में 'मोट्या' नामक नौकर अपने मालिक के टॉयॉटा कार को, जिसे वह हर रोज़ धुला-धुलाकर चमकाता था, लोहे की लपलपाते सरिया से मार कर कचरे का डिब्बा बना देता है । मोट्या सक्सेना साहब की गाडी धोया करता था । काम के बाद वह ऊपर घर में माल्किन की सहायता भी करता था। सक्सेना साहब को उसके निकलने के पहले अपनी दोनों गाडी साफ धुली लकढक मिलनी चाहिये । बगैर धुली गाडी से जिस दिन वह फैक्टरी पहूँचे है, कोई ना-कोई लफडा वहाँ मौजूद पाता । इसी वजह मोट्या को अपने लिये अलग रखा हुआ था । पर बीमारी कभी मोहलत देखके आती है क्या ?

मोट्या अनाथ लडका था । उसकी माँ बचपन में ही उसे छोड चुकी थी। माँ की कमी अपनी ज़िन्दगी में वह महसूस करता है । इसलिये मालकिन के साथ उसकी खूब जमती है । वह अक्सर छूट लेने लगता था मेम साहब को 'ममी' कहकर पुकारने केलिये । वह समझ नहीं

[1] उसका विद्रोह,मृदुला गर्ग,विद्रोह की कहानियाँ,सं.गिरिराज शरण,पृ.86

सकता कि 'इमारतों में रहनेवालों का घर कभी उसका अपना नहीं होता' । और मोट्या के साथ मेमसाहब की विशेष खिदमत सक्सेना साहब को सख्त नागवार गुज़रती थी ।

दो तीन दिन बीमारी की वजह मोट्य काम पर नहीं आ पाया था । इस पर सक्सेना साहब बिगडता है और उसके सात दिन का खाडा (नगा) काट देता है । पूछने पर उसे झपट पठाके दफा होने का आदेश देता है । उसकी 'मामीजी' देखकर भी चुप रहती है।"साब के क्रूर व्यवहार से मोट्या को जितना क्षोभ है, उससे कहीं ज्यादा गहरी ठेस है मेमसाहब की अप्रत्याशित लगातार चुप्पी से, चुप्पी का अर्थ है वह भी गलत का साथ दे रही है"[1] मालिक तथा मालकिन की उपभोग नीति का बदला मालिक की गाडी तोडकर ही वह चुकाता है ।

"ज़रूरतें तो सुरसा का जबडा है-जितना उलीचो, सब हडप।"चित्रा मुदगल की 'ब्लेड' कहानी का ड्राइवर रामखिलावन की बेईमानी को कहनीकार इस तरह संगत कर देती है । रामखिलावन की बेटी घुघुनू ...बटेसर बाबा की मानता से मिली एकमात्र जीवित तीसरी संतान,...उसकी टूटी टाँग का इलाज बडे असपताल में कराना है, जो जीप के नीचे आकर कुचला गया था । मालिक से पहले ही चार सौ अडवांस ले चुका था । इसलिये वह पूछने से हिचकता है, अनजाने ही उसके मूँह में 'सील' लग जाती है । आखिर वह पूरी उम्मीद के साथ अपने 'मूँह पर लगी' संकोच का सांकल' खोल देता है तो साहब साफ मनाही करता है - "कारण कोई छोटी-मोटी नहीं गठते हो तुम, कभी तुम्हारा बैल मर जाता है, कभी माँ की आँखों का ओपरेशन होता है ।कभी बीज के बिना खेतों की बुनाई रुकने लगती है तो कभी बेटी की टाँग टूट जाती है ।...यह बताओ मेरे यहाँ पैसे की खान खुली है कि जब भी तुम्हारा मूँह खुलेगा फौरन निकालकर थमा दूँगा । मैं इन दिनों बहुत टाइट हूँ । मेरे यहाँ सम्मेलन का चक्कर है । बाहर से आये चार लोग गाडी में बैठेंगे । मुझे सबसे पहले गाडी ठीक करवानी है ।

[1] मामला आगे बढेगा अभी,चित्रा मुदगल,आदि-अनादि-1,पृ.128

प्रतिष्ठा का सवाल है।"[1] क्षण भर पहले बन्धी आशा तपती तवे पर पडी पानी की बूँद सी छन्न सी हो गयी थी । जब साहब सुझाव पर सुझाव देने लगे तो समझ लो उन्हों ने गैंडे की खाल ओढ ली है । अब रामखिलावन चाहे जितना रो गिडगिडा ले, उन पर कोई असर नहीं होने वाला है आखिर वह गद्दारी करने का निर्णय ले ही लेता है -"यह चोरी है बेईमानी है !....क्यों चोरी कैसे ? साहब के घर में सेन्ध मारी क्या ?..सेन्ध नहीं मारी तो फिर.........फिर कुछ नहीं....जिसमें से वह हिस्सा मांगने जा रहा है, वह रकम तो साहब ने सोच विचारकर सरदारजी को देने की स्वीकार की है......वह तो उसी में से......नहीं फिर बेवकूफी....फालतू की टिटिर-पिटिर में पडते रहोगे तो राम भाजी.....साहब सीटें बनवाने केलिये पैसे खर्च कर सकते है, तुम्हारी घुघुनू की टाँग टूटी रहे तो टूटी रहे..."[2] वह सरदारजी की गैरेज में चला जाता है और गाडी की सीटें बनवाने की ठेके में एक सौ पचास रुपया दलाली माँगता है । अगले दिन गाडी धुलाते हुए रामखिलावन गाडी के सीटों की उन जोडों पर ब्लेड चलाने लगता है, जहाँ पहले से ही कुछ खींच रही थी और रक्सिन के उथड जाने की सम्भावना थी ।

उषा महाजन की 'सच तो यह है' कहानी की रूनू महत्वाकांक्षी है । सुबह ही निकल पडती है काम पर । चार घरों में झाडू-पोंछा-बरतन कर, वह पैसा कमाती है तथा उन पैसों से पुरानी कूलर, पंखा, इस्तरी, हीटर सब खरीद रखी है । फ्रीज़ इसलिये नहीं खरीद पाती कि उसकी झुग्गी में रखने की जगह नहीं । उसके मत में जीवन को सुसंस्कृत करने में इन सब चीज़ों की ज़रूरत है । वह अपने बच्चों को किसी अच्छे–खासे स्कूल में रखना चाहती है। सरकारी स्कूल उसे पसन्द नहीं है क्योंकि पीछेवाले धोबी के बच्चे उधर पढते हैं, जो दिन-रात गालियाँ देते फिरते हैं ।

---

[1] ब्लेड,चित्रा मुदगल्,आदि-अनादि-2,पृ.224

[2] ब्लेड,चित्रा मुदगल,आदि-अनादि-2,पृ.227

बच्चों को स्कूल भेजने केलिये रूनू अपनी मालकिन के घर में पैसा इकट्ठा कर रही है ताकि उसकी शराबी पति की पकड में उसकी कमाई न आ जाए। आखिर वह मालकिन से उसके नाम पर बैंक में एक खाता खुलवाती है, ताकि उसके सिवा उसकी कमाई को कोई छू भी न सके। वह औरत जीवन को एक सुगठित ढाँचे पर ढालना चाहती है।

उदय प्रकाश की 'बलि' कहानी की 'लडकी' अपना नीरा गाँव छोडकर मध्यवर्गीय परिवार के साथ रहती है। परिवार की जीवन शैली के अनुसार लडकी में भी परिवर्तन आती रहती है। एक दिन लडकी की मालकिन उसे एक बोतल षाँपू देती है। उसकी उदारता की वजह थी कि 'मामी' को उस शैम्पू लगाने से सिर दर्द होती थी। लेकिन लडकी को मध्यवर्गीय खोखलेपन को समझने की कुवत आ ही गई है। इसलिये वह खुश होने का अभिनय करती है -"लडकी ने आश्चर्य और अविश्वास लगने का अभिनय किया। क्या आप सचमुच मुझे दे रही हैं ? लेकिन मैं कैसे ले सकती हूँ क्या अच्छा लगेगा हम लोगों को इतनी महंगी चीज़ इस्तमाल करना? आप सचमुच इतने उदारवान है आदि।"[1] परिस्तिथियाँ उसे सच छुपाने और झूठ बताने की नीयत सिखा दी थी। लडकी सोचने लगी थी -"लडकी के मन में सवाल तो उठा कि जैसे फालतू जानवर होते है, क्या वह फालतू आदमी बनाई जा रही है ? "[2] लडकी सपने देखने लगती है-"उसी घाटी में लाल कवेलू की छत वाली एक झोंपडी है। छत पर बट्टू की बेल चढी हुई है और उसमें पीले-पीले फूल खिले हुए हैं। आँगन में एक खटिया पर पडा रामेश्वर (उसका प्रेमि) ट्रांसिस्टर सुन रहा है और वह भीतर आजवाइन के पत्ते से भजिये छान रही है।...सैकिल पर बैठकर ऑफीस जा रही है।"[3]

---

[1] बलि,उदयप्रकाश,हंस,आगस्त 2006,पृ.36

[2] वहीं'पृ.36

[3] वहीं,पृ.39

लेकिन शादी की उम्र में वह गाँव लाई जाती है और एक निरे गँवार के साथ उसकी शादी करा दी जाती है । अपने मालिक के घर से मिली सांस्कृतिक तथा बौद्धिक विकास की वजह से अपने पती को वह समझ नहीं पाती है और साल भर की जहन्नुम से गुज़रने के बाद वह आत्महत्या कर देती है।

संजीव की 'आप यहाँ है' कहानी में एक आदिवासी औरत अपने मालिक की शोषण नीति के खिलाफ आवाज़ उठाती है । आदिवासियों के उद्धार के लिये सरकार काफी पैसे खर्च करते हैं, जबकि विकास उन तक नहीं पहूँचते । उनके नाम पर खर्च होते रुपयों का भारी हिस्सा, योजनाओं के संचालक ऑफीसर तथा ठेकेदार ही हडपते हैं । योजनाओं के तहत आदिवासियों से उनका जंगल तथा अन्य पैतृक सम्पत्ति छीन ली जाती है और कद्दू, कन्द वगैरह खाकर या अधिकारियों के घरों में नौकरी करके ये लोग ज़िन्दगी गुज़ारते हैं । 'हिन्दिया' भी इस तरह के एक अधिकारी के घर में रसोई सम्भाल रही थी । लेकिन मालिक ने उसकी इज्जत पर वार किया । लेकिन वह हिमवत्पुत्री घर से निकलकर भागती है और स्वयं बचती है । वर्मा उस पर चोरी का इल्ज़ाम लगाकर अपने आप साफ बनता है।

कई सालों के बाद एक बार मिस्टर वर्मा परिवार सहित हिन्दिया के गाँव में फँसता है उधर हिन्दिया को प्रतिक्रिया करने का मौका मिलता है । वह वर्मा के खिलाफ आवाज़ उठाती है-"आ गये आप यहाँ भी ? कुत्ता का माफिक सूंघते-सूंघते । मालूम नहीं है कि आपको क्या करता है ई लोग ? हमार वास्ते सरकार बहुत पैसा देता ना ? ऊ सब कहाँ जाता ? उलटे हमीं लोग चोर हैं ? कौन चोर है किसका कौन चोरी करता है -सबके हिसाब देना होगा । देखो-देखो हम लोगों को देखो-कैसे माफिक जीता है हम लोग, कैसे रहते है आप लोग"[1] हिन्दिया के सवाल के सामने वर्मा अवाक रह जाता है ।

---

[1]आप यहाँ हैं,संजीव,संजीव की कथा यात्रा:पहला पडाव,पृ.164

उपर्योक्त सभी कहानियों में घरेलू नौकर अपनी अपनी ज़िन्दगी के साथ या शोषण के खिलाफ संघरषरत है। 'उसका विद्रोह' कहानी का नौकर अपनी नौकरी की तनावग्रस्तता के अनुकूल विद्रोह करता है। 'ब्लेड' कहानी का ड्राइवर नियती से लडकर बेईमानी की राह पर उतरता है।'मामला आगे बढेगा अभी' का मोट्या खुले आम अपना विद्रोह प्रकट करता है।'आप यहाँ हैं'कहानी की हिन्दिया भी अपने और अपनों के ऊपर हो रहे शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाती है।'सच तो यही है' कहानी की रूनू आर्थिक स्वावलम्बन केलिये लडती है। इन सभी कहानियों में मेहनतकश वर्ग अपने हालातों से संघर्षरत है और अपनी पहचान दिला रही है। हालांकि कुछ कहानियाँ ऐसी भी है जिनमें नौकर प्रतिक्रिया जताना नहीं जानते है या मालिक के दुम हिलाते कुत्ते बनकर कुत्ते से भी बदतर ज़िन्दगी जी रहे हैं, जैसे उदयप्रकाश का 'हीरालाल का भूत'।

"कोई बात नहीं। चुप चाप सोजा। अपन दस रुपये की चादर खरीद लायेंगे।"[1] हीरलाल अपनी बीवी को समझाता है, जिसके ठाकुर हरपाल सिंह तथा पटवारी कुलभूषण सिंह ने भीषण बलात्कार किया था। हीरालाल ठाकुर हरपाल सिंह का नौकर है। वह सिर्फ सुनता था बोलता नहीं था। यह अंदाज़ लगाना मुशकिल था कि आखिर उसका दिमाग सोचता क्या है। वैसे सोचने केलिये उसके पास वक्त ही कहाँ था ? सारी हवेली में सुबह से वह चक्कर खिन्नी की तरह घूमता था।"बाहर बैठकी में पान तम्बाखू चाय लेकर खडा हुआ हीरालाल, कुए से बाल्टि खींचकर काँवर ढोता हीरालाल, आँगन में बैठकर सब्जी काटता हीरालाल, विमला माल्किन के छोटे बाबु को कंधे पर बिठाकर इधर-उधर दौडाता हीरा लाल, वह एक ही असल में सारे घर मैं मौजूद रहता। सरला बेबी स्वेटर बुनती, धेरे से

---

[1] हीरालाल का भूत,उदयप्रकाश,तिरिछ,पृ.129

बोलती-हीरालाल पानी, और ज़रा देर में हीरालाल लोटा गिलास लेकर खडा मिलता । छोटे बाबू पिंपियाते, छिछी आई और हीरालाल उसे उठा लेता । बैठक में ठाकुर हरपाल सिंह पान का डब्बा खोलते 'लौंग नहीं है' हीरालाल लौंग लेकर खडा मिलता। वह जहाँ कही भी प्रकट हो सकता था । पूरी हवेली में उसकी सासें गूँजती । हर जगह उसके पैरों की आहट होती । हर अन्धेरे कोने में बनविलाप सी जलती रहती।"[1] इतना कर्मठ होने के बावजूद मालिक उसके साथ अन्याय ही करता है । हीरालाल के पिता सुधन्ना के पट्टे में डेढ एकड ज़मीन थी, जिसे ठाकुर हरपाल सिंह पटवारी से मिलकर अपने नाम कर लेता है । उसका खपरैल-फूस की ज़मीन भी कानूनी तौर पर हरपाल सिंह की ज़मीन में ही थी । पत्नी फुलिया की आबरू हीरालाल की सम्पत्ति का आखिरी कोना था । पटवारी और हरपाल सिंह उसे भी लूटते हैं । बदले में हीरालाल कुछ भी नहीं कहता, सिवाय अपनी मेहनत के खण्डा बढाने के । "हीरालाल और ज्यादा काम करने लगा । अपने आप को वह एक पल केलिये भी खाली न छोडता कोई काम न रहता तो दूसरी-तीसरी बार हवेली को झाडू लगाने लगता या गट्ठे के ग़ट्ठे लकडियाँ चीरने लगता या घर के पिछवाडे के बगीचे को कुएँ से पानी खींच-खींचकर पानी से डबादब कर देता।"[2]

हीरालाल पटवारी के कमरे का भी सफाई करता । उसे तम्बाखू पान लाकर देता । ग्यारह बजे रात वह ठाकुर हरपाल सिंह की मालिश करता, इसके बाद वह कुप्पा लेकर पटवारी कुलभूषण तिवारी के पास आ जाता और फिर उसकी मालिश करता जिसकी कुछ ही देर पहले ही पटवारी के पास से फुलिया गयी होती । लहसुन की छौंकवाले सरसों के तेल से हीरालाल सहलाता, चमकाता । हीरालाल के द्वेष और आत्मसंघर्ष का भी चित्रण है, जो काफी निश्शब्द है। वह रात को जागकर रोता है । रोते हुए उसकी गले से गुर्राहट निकलता

---

[1] हीरालाल का भूत,उदयप्रकाश,तिरिछ,पृ.127

[2] हीरालाल का भूत,उदयप्रकाश,तिरिछ,पृ.127

है ।-"हीरालाल रो रहा था उसका पूरा शरीर सिकुडता, फिर फैलता और हिचकियों के साथ उसकी घुटी हुई रुलाई बाहर फूल पडती। यह ऐसा करुण और दर्दनाक रोना था, जिसमें चेहरा ही नहीं, हीरालाल का समूचा शरीर, फेफडे और आत्मा तक शामिल थी।"[1] पटवारी को मालिश कराते उसका चेहरा खींचा रहता; कनपटी के पास की नस मोटी होकर तिडकती रहती, बीच-बीच वह कोई अदृश्य चीज़ चबाने लगता । लेकिन वह मालिश में लगा रहता । आखिर हीरालाल पागल कुत्ते के काटने से, ठाकुर के प्रति वफादारी का एलान करते- करते मर जाता है ।

दिहाडी मज़दूरों का संघर्ष

मधुकर सिंह की 'मंगली की टिकुली'कहानी का रामा जोशीले नौजवान है । वह एक बडे फार्म का दिहाडी मज़दूर है । फार्म के मालिक के साथ वह अक्सर भिडता रहता है । उसी ने ही फार्म पर औरतों का काम करना बन्द किया था । उससे पहले मानो फार्म व्यभिचार का अड्डा था । मालिक भेडिये की तरह घूमा करता था । रातों में फार्म में शोहदे इकट्ठे होते थे । खस्सी कटे जाते थे या मुर्गी जिबह होती थी । दारू की बोतल खुलती थी और किसी न किसी लडकी पकड लाई जाती थी । रामा किसानों को इकट्ठा कर उसके अत्याचार समाप्त करने का बीडा उठाया था । लेकिन उसकी बदमाशियाँ खतम नही हुई थी। मज़दूरों को गालियाँ देना, उन्हें पिटवा देना, उसकी मज़दूरी काट लेना, उसकी बहू-बेटियों को उडवा लेना सब जारी था । आखिर रामा ने अपना प्रतिरोध बढा दिया । "मालिक अपने गुण्डों की संख्या बढा रहे थे तो, रामा भी अपनी किसान सभा को मज़बूत कर रहा था । मालिक किसी मज़दूर को गाली देता तो मज़दूर भी उसे सुनाए बिना नहीं रहता । मालिक किसी मज़दूर की मज़दूरी काटता तो दूसरे दिन उसे पता चलता कि जितनी मज़दूरी उसने काटी थी उसके

[1] वही

दुगुने की फ़सल रातों रात गायब है । मालिक का गुण्डा किसी मज़दूर पर हाथ उठाता तो उस गुणडे की भी बहुत जलदी मरम्मत होती थी । मज़दूर अब खाली हाथ कभी न रहते । लाठी, हंसुआ, छुरा और कुछ नहीं तो एक लोहे का टुकडा उसके पास रहता था । रामा का कहना था, पास में कोई हथियार रहने से मन का बल बना रहता है।"[1]

एक दिन मालिक एक घण्टा अधिक काम करने का प्रस्ताव रखता है । रामा नहीं मानता। इस पर बहस होती है और मालिक रामा की बीवी को बुरा भला कहता है । राम कृद्ध होता है और अपनी हंसिये से मालिक की दायीं आँख नोच देता है । बदले में मालिक उसकी बीवी को उठाता है । रामा किसानों के साथ आकर उसे बचाता है और उसकी तमाम अत्याचारों की शिक्षा स्वरूप उसके पुरुषत्व को ही काट डालता है ।

संजीव की 'सधनुष-टंकार' कहानी की सुरसती मैनेजमेंट तथा मज़दूर यूनियान की खोखलेबाज़ी का पुरजा बनने से स्वयं बचती है । सुरसती ठेकेदर मज़दूरिन है । बहुत सस्ते मज़दूरी पर फैक्टरी में पिग अयर्ण उठाने का काम करती है । ठेकेदार मज़दूरों को स्थायी बनाने केलिये मानेज़मेंट तैयार नहीं है। नयी मशीनों के प्रयोग से वे काम सम्भालना चाहते हैं । एक दिन अचानक पिग अयर्ण की अदला-बदली केलिये चुम्बकों का इस्तेमाल होने लगा । इस पर निर्मल बाबु के, जो यूनियन का लीडर है, नेत्रुत्व में मज़दूर हडताल करते हैं । हडताल के नाम पर नौ मज़दूर निकाल दिये जाते हैं, जिनमें सुरसती भी शमिल थी । यूनियन के कहने पर वह अनशन हडताल करती है । निर्मल बाबु, जैसा नाम द्योदित करता है, एक नेकदिल तथा आदर्शशील इनसान है । इसलिये वह मैनेजमेंट की आखों का काँटा भी । मोर्चे पर काबू पाने में वे उस पर उग्रपंथी का आरोप लगाते हैं और उन्हें हवालात में बन्द कर देते हैं । मैनेजमेंट द्वारा उनके एक चेले को यूनियन का लीडर बना दिया जाता है । वह मैनेजमेंट के साथ समझौता कर लेता है और निकाले गये नौ मज़दूरों के साथ मुंशीजी को भी

---

[1] मंगली की टिकुली,मधुकर सिंह,ग्राम्य जीवन की कहानियाँ,पृ136

वापस ले लेते हैं, जिसने सुरसती का अपमान करने की कोशिश की थी । साथ ही मज़दूरी में डेढ रुपये की नाममात्र बढोतरी कर देते हैं । और हडताल को बडी विजय घोषित करने केलिये सुरसती का अनशन तोडना एक कार्यक्रम बना देते हैं और उसमें मंत्रीजी को बुला लिया जता है । धीरे-धीरे सुरसती समझने लगती है कि उसका खूब उपयोग हो रहा है । वह वक्त के पहले अनशन तोडकर अपनी असहमती प्रकट करती है ।

"आज भी निकलते-निकलते देर हो गई । रोज़ रात को सोते समय सोचती है कि सबेरे चार बजे ही उठेगी । लेकिन दिन भर ईणट ढोने से थका शरीर, आँखों की पलकें जैसे चिपक जाती हैं आपस में । रोज़ पाँच-छह बच जाती है । माँ को रोटी-पानी में वह लगाना नहीं चाहती।"[1] शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर' कहानी की मज़दूरिन का संघर्ष अपने घर से शुरू होती है। दर असल माँ बाप केलिये लडका होकर जी रही है विमली, जो किसी लडके से कम नहीं । वह खान साहब के ईंट के भट्टे में ईंट ढोने का काम करती है ।

विमली का एक भाई भी था, जो अपनी बीवी को बानी सुनाकर घर छोड गया था। तब विमली नौ साल की थी और सरपंच के घर में काम करती थी । मज़दूरी के नाम पर दोनों टेम की रोटी और सरपंच की बिटिया का उतारन फिराक-जड्डी ही मिलती थी । उससे अपने माँ-बाप का भूख नहीं मिटा पा रही थी । आखिर अपनी नौ साल की ही उम्र में वह निर्णय ले लेती है कि वह ईंट के भट्टे में काम करेगी और अपने परिवार का पेट पालेगी – "अपना ही क्यों सबका पेट पालेगी वह । भाई भाग गया तो क्या ? वह लडका बनकर रहेगी । नया नया भट्टा खुला है गाँव में । काम की अब क्या कमी है? कौन कहते हैं कि आदमी-लडके ही काम कर सकते हैं भट्टे पर ? राँची की मज़दूरिनें औरत नहीं है ? वे किसी से कम काम करती हैं ? तब वह क्यों नहीं कर सकती ? जितनी ईंट ढोओ उतना पैसा ठेके पर।"[2] लेकिन वह कमली केलिये उतना आसान नहीं था । उस गाँव से पहले कभी औरत भट्टे में काम करने

---

[1] तिरिया चरित्तर,शिवमूर्ति,समकालीन हिन्दी कहानी,सं.ऋषिकेन,राकेष रेणु,पृ.100

[2] तिरिया चरित्तर,शिवमूर्ति,समकालीन हिन्दी कहानियाँ,सं. ऋषिकेन राकेष रेणु,पृ.104

नहीं गई थी । लेकिन अपने घर, बिरादरी, ससुराल, सबका सामना करके वह भट्टे पर काम करने जाती है । धीरे-धीरे अन्य औरतें भी उसकी राह पकडती है ।

चित्रा मुदगल की 'भूख' कहानी की 'लक्षमा'बेरोज़गार बन घूम रही है। उसका पति मिश्री था । पन्द्रह माले के मकान से गिर कर ढेर हो गया । घर में तीन-तीन बच्चे, एक गोदी के उम्र का । नौकरी की उसकी ज़ख्त ज़रूरत है। लेकिन ज़माना बदल चुका है -"बुरा वक्त एक काम, दस मज़दूर । काम मिलेगी भी तो कैसे । ऊपर से मुसीबत का रोना, एक से एक बेईमान ओढकर निकलते । किसी के पास कोई सख्ती ज़रूरत्मन्द पहूँचे भी तो कोई विश्वास कैसे करे।"[1]सबका दर्वाज़े उसकी तरफ बन्द है, कोई खोलता तो पूछते-'किदर रहती,किदर से आयी, तेरा पेचाननेवाली कोई बाई आजू-बाजू में काम करती क्या ? करते तौ उसको साथ लेके आना। हम तुमको पेचनते नहीं फिर कैसा रखेगा। "[2] उसकी गोदी का बच्चा देखकर कभी कुछ पूछे बिना ही दरवाज़ा बन्द कर देते हैं । कभी काम केलिये डिपोसिट का भी प्रस्ताव रखा जाता है । ऐसे माहौल में लक्ष्मा अपने बेटे को भिखारिन के साथ भेजती है।

कावेरी की 'सुमंगली' कहानी में लगातार शोषण की शिकार होती एक मज़दूरिन का चित्रण हुआ है ।'सुगिया' को अपने माँ-बाप की याद नहीं । जनम से लेकर वह एक ठेकेदार के यहाँ काम करती आ रही है । बारहवें साल में ठेकेदार उसे औरत बना देता है । सुगिया की माँ बनने की सम्भावना देखकर ठेकेदार उसे दुखना के सिर पर मढ देता है । एक हादसे में दुखना भी मरता है ।

एक दिन सुगिया के बेटे को बुखार चढता है । रुपया माँगकर वह ठेकेदार के यहाँ पहूँचती है । लेकिन वह दरिन्दा उसे अपनी हवस का शिकार बनाता है और उसे भगा देता है । आखिरकार डॉक्टर साहब के यहाँ पहूँचते-पहूँचते उसका बेटा मर जाता है । उसके साथ दोबारा कोई शादी नहीं करता। वह आजीवन शोषित रहती है ।

---

[1] भूख,चित्रा मुदगाल,आदि-अनादि-2,पृ.95

[2] वहीं

दिहाडी मज़दूर अपने परिवेश से संघर्षरत है। समाजिक असंगठन की वजह ये अक्सर शोषित है। कहानियों में इनका जीवन संघर्ष तथा शोषण के खिलाफ संघर्ष चित्रित है। लेकिन पराजय की बू अखरती रहती है।

कूडा-कचरा बीनने वालों का संघर्ष

"देह में ताकत है तो मेहनत कहीं भी की जा सकती है। गरीब खुद के बूते पर जीता है। उसे सहारा कौन देगा, जबकि पूरा ज़माना विरोध पर तुला है।"[1]मत्स्येन्द्र शुक्ल की 'कूडा' कहानी में कूडा कचरा बीनने वाला लडका अपना आत्मविश्वास इस तरह प्रकट कर रहा है। उनके रहने का यही तरीका है, चाहे गाँव हो या जंगल, या शहर का कोई कोना। खुद का पेट भरता रहे, यही इनके जीवन का उद्देश्य है। शहर में जहाँ इनको बसने की थोडी जगह मिलती है, उधर छोटा सा तम्बु तानकर रहना शुरू कर देते हैं। लेकिन शहर के सभ्य लोगों केलिये इनका यह अन्दाज़ असहनीय है। वे किसी न किसी तरह इन्हें निकालने की कोशिश करते रहते हैं। कभी पुलिस की धमकी देकर इन्हें बलपूर्वक निकाल देते हैं। कूडा कहानी में भी ये लोग देश निकाला जाते हैं। कुनबे के लडके पुलिस की धमकी को जोशीले अन्दाज़ में लेना चाहते हैं –"हम भी इसी मुल्क के बाज़िन्दे हैं। सब को जीने खाने का बराबर हक हैं। सडक और पार्क पर सरकार का अधिकार है, मतलब जनता की चीज़ है। फिर हमें खदेडने की हिम्मत कौन करेगा।"[2] वे अपनी पहचान बनाये रखना चाहते हैं। वे शरीर से या ताकत से किसी से कम नहीं फिर लड क्यों नही सकते। इसे वे समझ नहीं सकते लेकिन कुनबे का मालिक बीरू खूब समझता है कि गरीब लडाई नहीं लड सकता। वह हालातों के साथ समझौता करके जीने का सबक सिखाता है, जो उन जैसे गरीबों केलिये ज्यादा समीचीन है- "आदत पडने पर सब हो जाएगा। दो-चार दिन बाद तुम खुद महसूस करोगे मेरी बात।

---

[1] कूडा,मत्स्येन्द्र शुक्ल,नवें दशक की कथा यात्रा:सं,धर्मेंद्र गुप्त,पृ.86

[2] कूडा,मत्स्येन्द्र शुक्ल,नवें दशक की कथा यात्रा:सं,धर्मेंद्र गुप्त,पृ.86

मेहनतकश आदमी को ज़िन्दगी की छोटी बडी समस्याओं से नहीं खबराना चाहिये।"[1]वह अपना बसेरा छोडकर कहीं और जाकर बसने का सलाह देता है, जहाँ काम की ज्यादा सम्भावना है-"सुना है कि उधर एक सरकारी कॉलनी तैयार हो रही है । काफी संख्या में मज़दूरों की ज़रूरत है । ऐसा है तो परिवार का सभी लोग उसमें खप सकते हैं।"[2] बीरू को सारा कुनबा अपना परिवार लगता है । वह समाज के भीतर एक अपना एक अलग समाज पाल रखा है, जिसकी तरफ भूल में भी सरकार का ध्यान नहीं पडता । कहानी में उन लोगों के प्रति कहानीकार ने अपनी आशंका प्रकट की है –"इन गरीबों को जाने कब इस यातना से मुक्ति मिलेगी। देश में आर्थिक प्रगति हुई है, यह तो सच है, लेकिन ऐसे लोगों को देखकर ऐसा लगता है जैसे अभी कुछ नहीं हुआ । हम अन्धेरे में भ्रम का लबादा ओढे टहल रहे हैं।"[3] लेकिन उन्हें किसी की हमदर्दी की ज़रूरत नहीं ।

चित्रा मुदगल की 'इस हमाम में' कहानी की 'अंजा' छीज-छीजकर भी लडाई लड रही है। अंजा जिस घर में रहती है उसमें न पानी है न संडास । संडास केलिये सुबह से उठकर सडक के किनारे या नाले में जाना पडता है । लेकिन वह अपनी कमाई से किराए का अलग मकान ले लेती है ।

नमिता सिंह की 'दर्द' कहानी की रमिया काम करके जीने का अपना अधिकार बरकरार रखने केलिये पूरे बिरादरी से लडती है । एक दिन अचानक सफाई संघ के लोग फैसला लेते हैं कि कोई बहू-बेटियाँ आगे कभी दूसरों के घर काम करने नहीं जाया करेंगी । जब तक बहू-बेटियाँ दूसरों के घर में काम करती रहेंगी, तब तक बिरादरी की कोई इज्जत नहीं रहेगा । मामला इज्जत की है, लेकिन रमिया उसे मानने केलिये तैयार नहीं होती । वह

---

[1] कूडा,मत्स्येन्द्र शुक्ल,नवें दशक की कथा यात्रा:सं,धर्मेंद्र गुप्त,पृ.86

[2] कूडा, मत्स्येन्द्र शुक्ल,नवें दशक की कहानियाँ,धीरेन्द्र गुप्त,पृ.95

[3] वहीं

बिरादरी का चाल समझती है । काम करने नहीं जाते तो ज़िन्दगी करज लेकर गुज़ारनी पडेगी । कर्ज पर पहले ही पाबन्दी लगी है कि बिरादरी वालों से ही करज लेना चाहिये । लेकिन बिरादरीवले सूद भी ज्याद लेते थे । रमिया इस शोषण नीति के खिलाफ आवाज़ उठाती है-"ए कोई चोरी नहीं कर रही, कुछ और गलत काम नहीं कर रही।"[1]

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'अम्मा' कहानी की अम्मा भी अपने मेहनत करने का सुख नहीं खोना चाहती । "कब तक तेरे से माँगूँगी.... ना बेट्टे ना। उस सुख की खातिर मुझे काम करना पड रहा है तो, आखिरी साँस तक करूँगी।"[2] अम्मा अपने बेटे के सामने हाथ पसारे बिना ज़िन्दगी सँवारना चाहती है । उसने कडी मेहनत करके अपने बेटों को पढाया-लिखाया । बडा बेटा शिवचरण सरकारी कर्मचारी है वह थोडी बहुत राजनीति भी खेलता है। बिरादरी वालों से पैसे लेकर उन्हें नगरपालिका में काम दिलाता रहता है । लेकिन अम्मा उसे अन्याय मानती है-"बुराई किसी बात में भी नहीं है, बेट्टे । करेक (ज़रा) भी तो सोच ....जो अपने जातकों के मूँह का कौर छीनकर, अपनी मेहनत की कमाई तेरे हाथ पे धर देवे हैं । ना बेट्टे ना...कभी सोचा है उनकी दुर्दशा पे...कैसे जीव हैं वे लोग।"[3] अम्मा शिबू को अपने घर से निकालना चाहती है । वह सभी श्रमिक वर्ग की खातिर अपने बेटे से ही लडती है ।

कूडा-कचरा बीनकर अपना जीवन यापन करने वाले इन मेहनतकश वर्ग का जीवन काफी संघर्षमय है । परिष्कृत समाज का इन लोगों के साथ बस यही रिश्ता रह गया है कि उनकी फालतू चीज़ें ये उठाते हैं । दुनिया की तिरस्कार भरी नज़रों को,जीवन के संघर्षों को, अपमान को, ये बडी सहजता से अपना लेते हैं । इनके लिये मेहनत ही सबसे बडा मंत्र है जिसकी पूँछ पकडकर इनका गुज़ारा हो सकता है । इनके लिये मानो जब तक तन में बल है, तब तक मन में हल है । हालाँकि बुराई और गन्दगी से बचे रहने की इनकी बडी कामनाएँ हैं । इसलिये स्वयं झीजकर भी नई पीढी को गन्दगी से अलग रखने की कोशिश में मग्न हैं ।

---

[1] दर्द,नमिता सिंह,कर्फ्यु तथा अन्य कहानियाँ,पृ.91

[2] अम्मा,ओम प्रकाश वाल्मीकि,सलाम,पृ.122

[3] अम्मा,ओम प्रकश वाल्मीकि, सलाम,पृ.120

सामान-सब्जी वगैरह बेचनेवालों का संघर्ष

माहेश्वर की 'शुरुआत' कहानी का 'वह' फुट्पाथ पर प्लेस्टिक का खिलौना बेचकर अपना जीवन यापन करता है । वह बिहार के किसी गाँव का रहनेवाला है । नौकरी की तलाश में शहर आया हुआ है । लेकिन केवल दसवीं पास को नौकरी कहाँ मिलता है । आखिर वह बचे-खुचे पैसों से तथा एक पानवाले की मदद से फुट्पाथ पर अपना धन्धा शुरू करता है । लेकिन गरीब को मार हर कहीं जानो मुफ़्त है । एक दिन उसे बिना कोई वजह हल्ला वाले (पुलिस) उठा ले जाते हैं । फुट्पाथ पर सामान बेचने के कानूनन जुर्म पर उसे बीस रुपये का जुर्माना भरना है । लेकिन पैसा न जमा पाने की वजह वह जेल में सज़ा काटता है । उन जैसों के साथ अक्सर यह होता रहता है । पानवाला कहता है-"ई सब तो होता रहता है, मास्टरजी । फुट्पैथ पर बेबसा (व्यवसाय) करने से तो ऐसा माफिक होता ही है । इन लोगों का तो एक गो उ जेहल में ही रहता है।"[1]

रिहाई के बाद वह लडका पानवाले के साथ ही काम करता है । लेकिन पुलिस का पीछा कहाँ छुडता है । शहर में हुई सत्ता विरोधी जुलूस में वह पकडा जाता है । जेल में उसकी निर्मम पिटाई होती है । उससे किसी उग्रवादी दल के तथा उनके सदस्यों की अता-पता पूछे जाते थे जिससे वह एकदम अनजान था । उसकी मानो बस अपनी पेट की लडाई की ही फिक्र थी, जो अक्सर बडे-बडे पेटुओं की समझ के बाहर है । उसकी पीठ मार खाते-खाते बारंबार छिल जाती थी, नस-नस में लपेट फैल जाती थी । कई बार उसे तीन चार दिनों तक खाना नहीं दिया जाता था । आखिर जेल से छोडने के पहले उसको एक माला पहनाई गई, जो उसके एक कन्धे से उतरकर पेट से होकर दूसरे कन्धे तक, जलते सिगरेट की लौ से बनाई गई थी । आखिर वह लडका उन लोगों से जुडना चाहता है, जो सत्ता के खिलाफ लडाई लडते हैं और जिनसे पुलिस भी डरते हैं-"कौन है वे लोग जिनसे ये इतना

---

[1] शुरुआत,माहेश्वर,व्यवस्था विरोधी कहानियाँ,सं.नरेन्द्र मोहन और बदी उज्जामाँ,पृ.90

डरते हैं। लोग जो हथियार बन्द है और जिनकी पेशा है अत्याचार करना ? क्या आपको इस गुप्त दल का पता मालूम है ? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ, जिससे मैं इनका बदला ले सकूँ।"[1]

चित्रा मुदगल की 'बेईमान' कहानी में एक 'टूटा हुआ बक्किलवाला निक्कर पहना हुआ' लडके का चित्रण है जो रेलगाडी में पत्रिकाएँ बेचकर अपना पेट पालता है। पत्रिकाओं पर मालिक बाबु भाई को सिर्फ एक या डेढ रुपया मुनाफा मिलता है। उसमें से लडके का केवल बीस पैसे ही आते थे जो नहीं के बरबर था। ऊपर से गाडी में सैलानियों की तथा टिकट बाबुओं की लूट- खसोट भी। उस दिन पत्रिका बेचने के दौरन एक मेमसाहब उससे एक 'मनोरमा' हडपती है। पूछने पर चोर उल्टा कोतवाल को डाँटती है -"किसी और को दी होगी तू ने, इडियट....ये राजधानी है कि झकडा? कैसे-कैसे उचक्कों को घुसाकर बैठा लेते हैं ग़ाडी में, जिन्हें सवारियों से बात करने की भी तमीज़ नहीं।"[2] ट्रेन से उतरते हुए टिकट बाबु भी एक पत्रिका उचक चेतावनी दिलाता है-'बाप की गाडी है बे'। इस बार बाबू भाई से उसे खूब डाँट मिलती है। पत्रिकाओं के पैसे उसके हिसाब से काट दिये जाते हैं। उसका बक्किल वाला निक्कर उस बार भी रह जाता है। वह लडका निर्णय लेता है कि चाहे जो कुछ हो जाए, पत्रिकाओं को किसी को हडपने नहीं देगा।

अगली बार ट्रेन में चढा तो एक बाबु उसे पत्रिका के बदले पचास रुपया देता है। लडका छुट्टा लेने के लिये बाहर निकलता है और गाडी के जाने तक छुपा रहता है। इस तरह वह अपने बक्किल वाले निक्कर का हिसाब सुरक्षित कर देता है। बेईमानी की राह में पहला प्रयास। वह प्लाट्फ़ॉम की सीढियाँ चढने लगता है।

---

[1] शुरुआत,माहेश्वर,व्यवस्था विरोधी कहानियाँ,सं.नरेन्द्र मोहन और बदीउज्जमाँ, पृ.98

[2] बेईमान,चित्रा मुदगल,आदि अनादि,पृ.69

चित्रा मुदगल की 'जब तक बिमलाएँ' कहानी की बिमला अपने लिये कोई स्थायी धन्धा नही सम्भालती । उसका पति रिक्षा चालक है । वह पियक्कड है और कमाई का बडा हिस्सा दारू में फूँककर घर लौटता है । पति के ऐबों ने उसे पस्त किया तो पसीना आसरा देता है । मौसम के अनुसार बिमला काम बदलती है । बारिश शुरू हुई कि नहीं वह आसपास के खेतों से भुट्टे खरीद लाती और उन्हें कोयले में भुनकर बेचना शुरू कर देती । भुट्टे का मौसम बीता तो वह सडक के किनारे बारदान बिछाकर टोकरियों में साग-सब्जी की दूकान खोलकर बैठ जाती । खेतवाले उसकी ईमान्दारी और मेहनत के कायल थे, सो खीरा, बैंगन, लौकी, सीताफल उधार दे देते । जितना बेच पानी घर खर्च को छोड बाकी उधार की किश्तों के रूप में गुल्लक में डाल देती । जब भी खेत में ताज़ी सब्जियाँ खरीदने पहूँचती, उधार चुकता कर देती । सब्जियों का भाव आसमान छूने लगती तो मौसमी फल बेचना शुरू कर देती । अपने धन्धे से लौटती तो बीच में पडती चक्की पर से दो-तीन रोज़ का आटा खरीद लौटती । साग-सब्जी की किल्लत कभी महसूस नहीं होती । कुम्हलाई सब्जियाँ उसकी रसोई में काम आतीं । वह औरत बडी सफलता से अपना घर सम्भालती है।

असगर वजाहत की 'बच्चों वाली गाडी' का अगनू भी मेहनत से हार नहीं मानता है। तीस साल की चप्परासीगिरी से निवृत्ति पाकर वह सामान कन्धे पर ठोकर बेचने का कारोबार शुरू करता है । उसकी राय में-" बुढापा जवानी सब बराबर है मेहनत से साल-दो साल में भी काम किया तो दूकान भी हो जाएगी ।....दो बडे थैले ले लेंगे । छोटा मोटा सामान भर लेंगे । मोहल्ले पर फ़ेरी लगाकर बेचेंगे लोग क्यों न लेंगे..."[1] अगनू छोटे-छोटे राशन के सामानों को अपने थैलों में ढोकर अपना धन्धा शुरू करता है । पूरे मुहल्ले में आवाज़ लगाता हुआ वह घूमता है । किसी से भी वह ना नहीं कहता जो भी सामान उसके पास नहीं रहता, वह बाज़ार से खरीदकर देता । ग्राहकों को खुश रखने केलिये अगनू वही

---

[1] बच्चों वाली गाडी,असगर वजाहत,उनका डर तथा अन्य कहानियाँ,पृ.60

दाम लेता जो उसका भाव होता था । पुराना सामान वह कभी नहीं बेचता । ईमानदारी हर्गिज़ नहीं छोडता, लेकिन बेचारा अगनू दुनियादारी नहीं समझता था । दुनियादारी ने उसकी ऐबों को पस्त करने लगा । समाज उसका खूब इस्तेमाल करने लगा। उससे सामान खरीदने से ज्यादा उससे बेगारी लेने में सबकी होड ज्यादा मची हुई थी । कभी बच्चों को स्कूल से ले जाने व लाने केलिये कभी दोपहर का भोजन घर से उन तक पहूँचाने केलिये, कभी जूठा बरतन माँजने के लिये लोग उसकी मदद लेते रहे । अगनू लावारिस गाय बनते गये, जिसका मालिक कोई नहीं था, फिर भी बहुतेरे थे । अगनू स्वयं शोषित महसूस करता है जबकि उससे उबरने का रास्ता उसे मालूम नहीं था । जी तोड मेहनत में वह अपनी जान गवा देता है ।

बि.एल.नायर की 'चतुरी चमार की चाट' कहानी के चतुरी के सामने समस्या जाति की है । वह चन्दन चौबे के चाट की दूकन सम्भालता है । गाडी ठेलकर तिवारियन टोले में चाट बेचने का काम चतुरी को सौंपा गया है । लेकिन अपनी जातिपरक हीनता की भावना चतुरी को पीछे खींच लेती है । अखिर गाडी में जहाँ चन्दन चौबे का नाम लिखा था उसे मिटाकर चतुरी अपना नाम लिखा देता है-'चतुरी चमार की चाट'। उसे देखते ही तिवारियन टोले में हल्ला मचलती है और चतुरी भगा दिया जता है ।

सामान-सब्जी बेचकर पेट पालने वाले लोग मेहनत पर भरोसा रखते हैं । लेकिन हर कहीं समाज उन्हें पछाडने मौजूद है । शुरुआत, बेईमान कहानियों में अवाम हरामी करने के लिये मजबूर हो जाते हैं या समाज या व्यवस्था उन्हें बेईमानी सिखा देती है । जब तक बिमलाएँ हैं, चतुरी चमार की चाट, बच्चों वाली गाडी जैसी कहानियों में समाज की उपभोगनीति या पूर्वाग्रह अवाम के मेहनत को निराधार कर देता है ।

रिक्षा चालकों का संघर्ष

"कौम अपनी जगह और काम अपनी जगह । जहाँ डूटी ठीक हो,पैसा बखत से मिल जाये वहीं जाए हम तो"[1] नमिता सिंह की 'कर्फ्यु' कहानी की रिक्षाचालक शुकूर को साम्प्रदायिक विचारों से कोई प्रेरित नहीं कर सकता । शुकूर स्कूल में बच्चों को ले जाया करता है । लेकिन कुछ दिनों से इलाके में कर्फ्यु मची हुई है, सारे स्कूल बन्द हैं, इसलिये शुकूर की आमदनी भी । घर में थोडा बहुत अनाज-पानी धर था, सब खतम हो गया है । बहूजी और साहब दोनों बहुत भरोसा रखते है उस पर । भरोसा तो खैर और लोग भी रखते थे उस पर । सौ-सौ-डेढ सौ रुपया लेकर छोटे बच्चों के फीस जमा करता रहा था । लेकिन फिलहाल एक मुसलमान होने के नाते उस पर से सारा विश्वास उड गया है । शुकूर को मालूम है कि गलती दंगे की है-"इस दंगे की माँ की....वह दंगे को गाली देने लगता है।"[2] लेकिन शुकूर चाहे तो दंगे में भी कमा सकता है ! अपनी गाडी में शुकूर जिन हिन्दुओं के बच्चों को ले जाया करते थे, उनमें से एक को यूँ ही उठा देना बस । अब्दुल्लाह पहल्वान का बताया हुआ सरल रास्ता है, पैसा कमाने का । सुनते ही शुकूर बिना यह सोचे समझे कि अब्दुल्लह उस इलाके का दादाहै, झन्नाकर एक हाथ कसकर उसके मूँह पर मारता है । इस पर बात बिगडती है और अब्दुल्लाह शुकूर पर चाकू चला देता है। शुकूर का प्रतिरोध वहशीपन के खिलाफ है ।

चित्रा मुदगल की 'जिनावर' कहानी का अस्लम अपनी बीमार घोडी, सर्वरी को, जानबूझकर मोटर गाडी से टकराकर मार देता है, ताकि मरते मरते वह अपना मोल दिलाकर चले जाएँ-"नहीं वह जुदा नहीं हुई । उसके जुदा होने से पहले ही मैं ने उसे मार

---

[1] कर्फ्यु, नमिता सिंह,कर्फु तथा अन्य कहानियाँ,पृ.17

[2] कर्फ्यु, नमिता सिंह,कर्फु तथा अन्य कहानियाँ,पृ.18

दिया । मैं ने उसकी मौत से सौदा कर लिया। जान बूझकर उसे गाडी से भेड दिया । यहीं सोचकर कि अपनी मौत तो वह मरेगी ही, किसी गाडी से भेड दिया तो वह मरते-मरते अपनी कीमत अदा करते जाएगी ...ये नॉट...नॉट नहीं सर्वरी की बोटियाँ है ....बोटियाँ।"[1]

अस्लम के 'दस पेटुओं के परिवार' को पालने का एकमात्र आसरा सर्वरी ही थी । इसलिये बीमारी में भी वह ताँगे पर जुत रहीं थी । सर्वरी के बिना अस्लम बेकार है । किराये का ताँगा भी वह चला नहीं सकता, इसलिये कि मालिक के यहाँ पाँच सौ नकद डिपोसिट रखनी पडती थी । आखिर मजबूरन वह तांगे को मोटर गाडी से टकराता है और अपनी सर्वरी की मौत की कीमत वसूलता है ।

संजीव की 'प्रेत-मुक्ति' कहानी का जगेसर शहर में किराये का रिक्षा चलाता है । वह गाँव से भाग कर आया हुआ है । वह सत्तो राणी का रिक्षा चलाता है, जो इलाके की नामी वेश्या है । रिक्षा से आमदनी हुई हो न हुई हो, सत्तोराणी को किराया मिलना ही चाहिये । जिस दिन किराया नहीं मिलता, उस दिन मोहल्ले में हल्ला मचता । जगेसर सत्तो की रिक्षा छोडकर चूने, ईंट, कोयले आदि के खदानों में काम तलाशा करके देखा, लेकिन काम पक्का नहीं था । काम चल-चलकर बन्द हो जाता था । इस बीच पिता उसकी औरत का गौना करा आते हैं और उसे गजेसर के साथ भेजते हैं । तब एक जन था अब दो हो गये। सत्तो राणी गजेसर की औरत को धन्धे पर लगाने की सलाह देती है, जो जगेसर को नागवार गुज़रती है । उसकी औरत के आसपास आशिक भी मंडराने लगते हैं । बीच- बीच गाँव से पैसे की माँग में माँ की चिट्ठियाँ भी आती रहती हैं । ऐसे महौल में आगे सोचने में वह असमर्थ हो जाता है- "कनिया केलिये बचाओ, कि माँ को दो, कि अपने खाओ, कि सत्तो महाराणी को दो ? मान लो सौ की जगह पचास खाते हो, पचास माँ को, पन्द्रह घर का भाडा, साठ रिक्षा का भाडा, कपडा लत्ता दवा-दारू न ही सही लेकिन पुलिस-उलीस, चन्द-चुन्दी का सौ-पचास अलग से

---

[1] जिनावर,चित्रा मुडगल,आदि आनादि-3पृ.52

है ही । और कमाई सौ-सवा सौ।"[1] जैसे भी हो हार नहीं मानता जगेसर । वह 'ऊनियान' में शामिल होता है और सत्तो राणी को उसकी माँग के बदले यूनियन का 'अल्टिमेटम' देने लगता है । लेकिन सत्तो राणी उसे पुलिस से पिटवाती है । ऐसे माहौल में जहाँ मेहनती आदमी का सारा परिश्रम चूस लिया जाता है, जगेसर का दिमागी हालत बिगडता है और वह गाँव चला जाता है ।

अमर गोस्वामी की 'बाबुलाल का परिवार' कहानी में एक पियक्कड कामचोर रिक्षा चालक का चित्रण हुआ है । बाबुलाल बडा काहिल आदमी था-"था तो वह रिक्षा चलानेवाला, मगर घर पर जब तक उसे रोटियाँ नसीब होती रहती, उसे रिक्षे का हाँडिल भी छूना बुरा लगता था वह इतमीनान से अपने नीम की चबूतरे पर पसरा रहता और बीडी फूँकता रहता । जिस दिन फाके की हालत आ जाती कलह में एकाध का सिर फूट जाता, तभी वह काम की तलाश में रिक्षे की खटाल पर पहूँचता था।"[2] बाबुलाल रिक्षा चलाना पसन्द नहीं करता । ज़रूरतमन्द आदमियों को थोडा तंग करके वह अपने अहं की लगभग तृप्ति कर लेता था । किराया भाडा तय करके वह उन्हें तंग करता और उनसे ज्यादा पैसा ऐंठकर ही उनके ठिकाने पहूँचा देता । उसकी कोशिश थी कि कम मेहनत में ही वह जलदी से जलदी ज्यादा पैसा ऐंठ ले। अपने हिसाब भर का पैसा वह पा जाता तो रिक्षा किसी पेड के नीचे खडा करके सोने लगता । शाम को आधा से ज्यादा पैसा दारू पर फूँककर वह घर लौटता । इस बात पर पति-पत्नी के बीच अक्सर झगडा होता है और उनके घर का चूल्हा अक्सर ठंडा रहता । आखिर भूख से तंग आकर बाबुलल का पिता भीख माँगने निकलता है । बाबुलाल को जब इसका पता चलता है तो वह अपने पिता को मारता है और सारा पैसा

---

[1] प्रेत-मुक्ति,संजीव,संजेव की कथा यात्रा,पहला पडाव,पृ338

[2] बाबुलाल का परिवार,अमर गोस्वामी,नवें दशक की कथा यात्रा,सं.धर्मेन्द्र गुप्त,पृ.19

हडप लेता है । बाप को सलाह देता है की वे कहीं जाकर मरें । रिक्षाचालकों में से एक नकारात्मक चरित्र का चित्रण इस कहानी में हुआ है ।

चित्रा मुदगल की 'जब तक बिमलाएँ हैं' कहानी में एक रिक्षा चालक का चित्रण हुआ है, जो अपनी बेटी के भीषण बलात्कार को भी कोई सहज घटना कहकर टालता है- "मूरख जनानी को भला इतनी मजाल कि वह पुलिस-कचहरी करती फिर रही है । बिरादरी में उसे मूँह दिखाने लायक नहीं छोडा । इतना बावेला मचाने की उसे आखिर ज़रूरत ही क्या थी ? जो घटा, कोई नई बात ठहरी जानानियों के लिये ? सीधे घर लाती छोरी को और हलदी-चूना लगाकर छुट्टी करती।"[1] वह न घर केलिये पैसा कमाता है, न बच्चों की देख-रेख करता है । जो भी दिहाडी कमाता, रिक्षा का किराया ठेकेदार को थमा,देशी दारू का पौआ खरीद-चढाकर घर लौटता है । अक्सर ठेकेदार की गाली-गलौज बिमला को सुननी पडती है । आखिर बेटी के बलात्कार का अपमान सहे बिना वह चरसी साधुओं के साथ फिरकापरस्ती करता है । उसका अंदाज़ भी नकारात्मक है ।

उपर्योक्त कहानियों में 'कर्फ्यू' का शुकूर पूरी इमानदारी के साथ अपना काम करता है । बेईमानी का कमाने का मौका वह ठुकरा देता है ।'प्रेत-मुक्ति' का जगेसर,अपनी नेक दिली अन्दाज़ की वजह से, गृहस्थी सम्भालने की कोशिश में पगला होता है ।'जिनावर' कहानी का अस्लम घर में भूखे पडे दसियों पेटुओं की खातिर अपनी घोडी सर्वरी को छलता है । उसे गाडी से टकराकर उसकी मौत का भी फायादा उठाने में मजबूर हो जाता है । 'बाबुलाल का परिवार'का बाबुलाल इतना निकम्मा है कि उस 'मरद राम' पर पत्नी भी भरोसा नहीं कर पाती। यह बात 'जब तक बिमालाएँ हैं' के गमकू पर भी सच साबित होती है, जो अपनी बेटी

---

[1] जब तक बिमलाएँ हैं,चित्रा मुडगल,आदि अनादि-2पृ.271

पर हुए बलात्कार को जनानियों का मामूली घटना बताकर बडी मानता है । इस तरह अस्सियोत्तर कहानियों में रिक्षा चालको के तीन प्रभेद अभिव्यंजित हैं-पहला, मेहनत और ईमानदारी से खुद का नुक्सान कराने वाले आदर्शशील रिक्षा चालक, दूसरा मजबूरन बेईमानी की राह में उतरते निहत्थे रिक्षा चालक और तीसरे प्रेमचन्द की घीसू-माधव की तरह पूर्णतया निकम्मा तथा दायित्वहीन होते रिक्षा चालक । ये कहानियाँ ज़रूर इनके जीवन संघर्षों को उतारने में सक्षम भी हुई हैं ।

कुछ और मिसाल

स्वयं प्रकाश की 'अविनाश मोटू उर्फ एक आम आदमी' कहानी का अविनाश मोटू दुनियादारी नहीं सीख पाया है । और सीखना भी नहीं चाहता । वह 'टेलिफ़ॉण एक्स्चेंच' में काम करता है । उधर कर्मचारियों को इतनी कम पगार मिलता था कि ठीक से करना-रहना, बच्चों को पालना तो छोडिये, ठीक से खाना-पीना भी नहीं हो सकता है । उसका एक सरल समाधान यह था कि "हर ट्रंक कोल पर पार्टी से दस रुपया लो, अर्जेंट कॉल का ओर्डिनरी कर दो, पहले किसी के टेलिफोण का फ़ोल्ट बनाओ, फिर उसको सही करने में दस रुपये लो, किसी को फ्री में बात कराओ और बीस रुपये लो।और दीवाली-दश्हरे पर बख्शिश माँगने टोली बनाकर दूकान-दूकान घूमे।"[1] लेकिन अविनाश विपक्षी है । उसकी राय में-"गोर्मेंट पगार देती है महीने के महीने बाऊजी। कोई हाथ पाँव नहीं टूट गये हैं, जो भीख माँगने जाएँ।"[2] मेहनत के प्रति अविनाश का बडा मान है। वह हर दिन नयी नयी बात सीखता रहता है। प्रत्येक काम को दिल्चस्पी से करता है । इसलिये फायदे-नुकसान की चिंता उसे सताती नहीं । रेडियो ठीक करते-करते आखिर किसी मेकेनिक से कराना पडता है । पाँच

---

[1] अविनाश मोटू,उर्फ एक आम आदमी,स्वयं प्रकाश,समकालीन हिन्दी कहानियाँ,सं.ऋशिकेन,राकेश रेणु,पृ.166

[2] वहीं,पृ.164

अपने हाथ से नफा-नुकसान, लेकिन अविनाश कुछ अलग अन्दाज़ से उसे देखता है जैसे पैसा 'गया तो क्या हुआ आखिर काम तो सीख ही गया । अब ले आओ किसी भी जात का रेडियो'। अविनाश के इस अंदाज़ का सभी मज़क उठाते हैं' जो खूब दुनियादारी समझते हैं । लेकिन अविनाश को परवाह नहीं । बख्शिश तो वह हर्गिज़ नहीं ले सकता, चाहे पूरा ज़माना उसकी खिल्ली उठाएँ-"हम मना नहीं करते । तुम्हें जंचता है तो लेलो ।पचता है तो खाओ । पर अविनाश को तो आप माफ ही करो।"[1]

स्वयं प्रकाश की 'बाबुलाल तेली की नाक' कहानी में एक अति महान देश के एक अति सामान्य नागरिक बाबुलाल तेली के साथ एक अजीबोगरीब हादसा होती है । सडक पार करते हुए 'एक बलिष्ट व्यक्ति' बाबुलाल तेली की नाक पर खामखाह एक ज़ोरदार घूँसा जड देता है । बाबुलाल तेली उसे जानता तक नहीं था । वह बलिष्ट व्यक्ति सडक में किसी को मार रहा था और बाबुलाल तेली की मूँह से निकल गयी-'अरे-अरे' और बस । बलिष्ठ व्यक्ति सोचता था कि बबुलाल तेली जैसे हर व्यक्ति को उसे जानना चाहिये और उससे डरना चाहिये।लेकिन बाबुलाल तेली का मनोव्यापार काफी दिल्चस्प है-"बाबुलाल तेली को उस बलिष्ठ व्यक्ति की महत्वाकांक्षा की ज़रा भी खबर होती तो उसे जानने में ही नही,उसे डरने में भी उन्हें कोई आपत्ती नहीं होती । जहाँ इतने लोगों से डर रहे हैं, एक उनसे भी डर लेंगे, क्या फरक पडता है। किसी को उसी में खुशी मिलती है तो अपना क्या जाता है।"[2]

अपनी नाक के इलाज केलिये उसे एक मल्टि स्पेशल्टी होस्पिटल जाना पडता है । उधर स्पेशलिस्टों से स्पेशलिस्टों की तरफ घूमाया जाता है और एक्स-रे से लेकर

---

[1] अविनाश मोटू,उर्फ एक आम आदमी,स्वयं प्रकाश,समकालीन हिन्दी कहानियाँ,सं.ऋशिकेन,राकेश रेणु,,पृ.166

[2] बाबुलाल तेली की नाक,स्वयं प्रकाश,आधी सदी का सफरनामा,पृ18

ई.सी.जी.तक कराने की पर्ची लिखी जाती है। आखिर वह बिन इलाज भाग आता है। बाहर वह बिरादरिवालों के चंगुल में फँसता है । उनकी राय में उसे डॉ.लालुराम तेली के यहाँ इलाज कराना चाहिये, जो बिरादरी का है । बाबुलाल की 'रक्तरंजित नाक देखते ही लालुराम को वह इस कदर उत्तेजक, सेक्सी और ओपरेशनीय लगता है' कि बिना एक्स-रे-वेक्सरे का झंझट ओपरेशन कर देता है। बाबुलाल खिलाफ कुछ बोल भी नही पाता। क्यों कि-"मैं समाज को छोडकर नही चल सकता। अभी मुझे अपनी बेटियों की शादी करनी है। नाक का क्या है, आज नहीं तो कल हो ही जाएगा।"[1] लेकिन उसके साथ कुछ उल्टा ही होता है। तीसरे दिन उसकी नाक में मवाद पडती है । डॉक्टर की लापर्वाही शीर्षक से किसी स्थानीय अखबार में खबर भी छपती है। तो अब बाबुलाल तेली की नाक पूरी बिरादरी का नाक बन जाता है। चन्दा इकट्ठा की जाती हैं, बाबुलाल को बम्बई भेज दिया जाता है और उधर उसकी नाक कटी जाती है । व्यवस्था की उपभोग मानसिकता के तहत सबलों से डरकर तथा अपनी नाक कटकर जीने में अभिशप्त अवाम का वह प्रतिनिधि बनता है। हादसे के बाद वह बस इतनी तसल्ली होती है कि –"शुक्र है, उसने मेरे नाक पर ही घूँसा मारा।"[2]

पंकज बिष्ट की 'कुंजरो वा!'कहानी का अख्तर, साँप्रदायिकता के घाव पर ममता का मरहम लगाता है। उसकी राय में इस दुनिया में सब कुछ मानने पर ही होता है चाहे वह ईश्वर या खुदा ही क्यों न हो-"सब कुछ मानने पर ही तो होता है, मानने पर पत्थर भगवान हो जाता है, न मानो तो कुछ भी नहीं है।"[3] अख्तर हिन्दुओं की बस्ति में अकेला मुसलमान है। उसके लिये सब समान हैं, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। अख्तर की एक बकरी थी-मुन्ना,

[1]बाबुलाल तेली की नाक,स्वयं प्रकाश,आधी सदी का सफरनामा,,पृ.23

[2] वही,पृ25

[3] कुंजरो वा!,पंकज बिष्ट,चर्चित कहानियाँ,पृ.123

जिसे वह बेटे के समान पालता था । एक दिन बाहरवालों की बहकावे में आकर कुछ हिन्दू उसकी बकरी को उठाकर जाते हैं और उसका माँस सबमें बाँटते हैं । अख्तर दुखित होकर खाना-पीना तक छोड देता है । अखतर की हालत देखकर हिन्दुओं को अपने किये पर पछतावा होता है।सभी मिलकर पैसा इकट्ठा करते है और अख्तर को सौंपते हैं । लेकिन अख्तर पैसा लौटाता है और उसे 'सबसे बडा मंगल कार्य', राम जी का मन्दिर बनाने में अपना हिस्सा स्वरूप देता है । अख्तर की मानावीयता के सामने सांप्रदायिकता की नाक कट्ती है ।

जगदंबा प्रसाद दिक्षित की 'मुहब्बत'कहानी में एक मेहनती आदमी का चित्रण हुआ है, जो फूलाबाई नामक अधेड उम्र की वेश्या को आसरा देता है । फूलाबाई पचपन-साठ उम्र की है। इस वजह वह धन्धे में फाल्तू हो गयी है । ऊपर से बीमार भी, हालांकि वह आदमी पटाने की कोशिश करती रहती है । कथावाचक से भी उसे वही उम्मीद है लेकिन कथावाचक 'वो टाइप का आदमी' नहीं है । इस बीच कथावाचक की नौकरी चली जाती है, वह भूखे पेट बेकार घूमने लगता है । फूलाबाई भी उसकी 'पारलर' से निकाली जाती है । एक दिन एकदम मरी हुई सी हालत में सडक के किनारे पडी कथावाचक को फूलाबाई मिलती है । कथावाचक पाई-पाई जुडाकर उसकी इलाज कराता है । दरअसल कथावाचक फूलाबाई से मुहब्बत करता है जो बिलकुल सच्ची मुहब्बत है । क्षीणकाय फूलाबाई को कन्धे का सहारा देता हुआ, घिसटता हुआ, लडखडाते हुए खुली सडक पर उतरता हुआ कथावाचक दोहराता है-"...मैं वो टाइप का आदमी नहीं हूँ...."[1] लेकिन अपनी मुहब्बत को लेकर किस ओर जाना है, दोनो इससे अनजान है, एकदम दिशाहीन । इधर मुहब्बत की परिकल्पना सभी सामाजिक पूर्वाग्रहों का अतिक्रमण कर जाती है ।

---

[1] मुहब्बत,जगदंबा प्रसाद दिक्षित,नवें दशक की कथा यात्रा,धर्मेन्द्रगुप्त,

मुम्बई जैसे महानगर में मकान बडी समस्या है। कमरा एक ही और उसमें रहनेवाले अनेक, इस हादसे से ज्यादातर अवाम को ही गुज़रना पडता है। शैलेंद्र श्रीवस्तव की 'चाल' कहानी में एक पति-पत्नी कमरे के लिये आपस में झगडते हैं। दरअसल वह औरत कुछ महीने पहले किसी गैर के साथ भाग गयी थी। अब उसे छोडकर अपने खोली में वापस आयी हुई है। पहलेवाले के साथ सुलह-संबन्ध रखने केलिये। मरद उसे अपने साथ रखने केलिये तैयार नहीं, लेकिन समस्या यह है कि खोली औरत के नाम पर है, औरत ने ही उसे अपना मरद बना कर अपने साथ रख लिया था। लेकिन पति भी साफ नहीं दिखता। वह हर-रोज़ पीकर आता था और पत्नी को पीटता रहता था। इसलिये औरत भागी थी। फिलहाल समस्या खोली की है जिसे पत्नी अपने साथ रखना चाहती है और पति अपने साथ। कानूनन अधिकार तो पत्नी का ही है लेकिन पति का और कोई चारा नहीं है, या तो वह पत्नी को पुनः अपनाए या सडक पर सो जाए। आखिर वह उस औरत के साथ रहने का निर्णय ले लेता है। मानना पडेगा कि बडे-बडे शहरों की तंग गलियों में भीड बनकर जीने केलिये अभिशप्त अवाम की ज़िन्दगी में रिश्तों को निर्धारित करने में टूटी-फूटी खोली की भी बहुत काफी भूमिका है।

महाजनी सभ्यता गाँवाचल का दुर्निवार अभिशाप है। एक दो और बदले में सौ वसूलो, चाहे घर तोडकर हो या खेती उजाडकर। मधुकर सिंह की 'कटहल का पेड' कहानी में दो मल्लाह दम्पति इस शोषण के खिलाफ लडते हैं। तिलेसर मल्लाह और उसकी पत्नी धनेसर मल्लाहिन बडी उम्मीद से एक कटहल का पेड उगाते हैं। आशा कर रहे थे की सात-आठ साल बाद जब पेड पर कटहल उगने लगेंगे तो उनका 'दुख-दलिद्दर' सब खतम हो जायेगा। इस खुशी में मछली-भात बनाने केलिये तिलेसर मल्लाह गाँव के महाजन, बिसेसर से उधार लेता है। बिसेसर से बात पक्की कर दी थी कि जब तक वह रुपया नहीं लौटाता, कटहल का पेड उनके यहाँ रेहन रहेग़ा। सालों बाद कर्ज सूद सहित एक सौ छब्बीस रुपये हो

जाता है और कटहल के पेड पर बिसेसर का कब्जा हो जाता है । कटहल पकने पर एक भी फल तिलेसर को नहीं मिलता । आखिर एक सडा हुआ फल बेचने के लिये बिसेसर धनेसर मल्लाहिन के ऊपर थोपता है । लेकिन सडे हुए फल को खरीदता कौन है ? और बिसेसर से भला गला कहाँ छुडता है ? वह सडे हुए फल का दाम, पन्द्रह रुपया माँग-माँगकर परेशान करने लगता है । आखिर रात के अन्धेरे में तिलेसर मल्लाह अपने ही रोपे पेड को, जो कभी अपना नहीं हो सकता, कुल्हाडी से काट गिराता है । न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी ।

उपर्योक्त कहानियों में 'अविनाश मोटु उर्फ एक आम आदमी कहानी का अविनाश' दुनियादारी को नहीं अपनाना चाहता है, चाहे नफा-नुक्सान कुछ भी हो जाए । ज़माना चाहे जितनी भी गद्दारी की माँग पेश करे, वह साथ नहीं दे सकता । खिलाफ भी उसे नागवार है । बहाव के समानांतर अपनी संकरी राह की काँटों को सम्भालकर धीरे से चलना वह पसन्द करता है ।'बाबुलाल तेली की नाक' का बाबुलाल दुनियादारी से पराजित है । खुद का नुकसान वह पूरे दिल से स्वीकारता है । और खुश होता है कि उसके साथ इतना कम ही बुरा हुआ है । उसकी नाक पकडकर बेडा पार करानेवाले बिरादरियों का भी चित्रण हुआ है ।

कुंजरो वा! कहानी का अख्तर सांप्रदायिक भावना को नेह से जीतता है । उसकी ममता तथा सहिष्णुता के सामने अपराधियों के हाथ खून से रंगे होते हैं ।'मुहब्बत' कहानी दुनियादारी के खिलाफ खुला विद्रोह है । एक घृणित तथा परित्यक्त बीमार वेश्या के हाथ थामने के लिये एक नौजवान आगे आता है । उसके सामने समाज की विरासत सिर झुकाकर खडी है ।'चाल' कहानी में भी समान सन्दर्भ है। शहर की संत्रस्त माहौल में रिश्तों की निरंकुशता को बडी सहज भाव से अपनाते अवाम का चित्रण मौजूद है ।'कटहल का पेड' कहानी भी वक्त की प्रतिक्रिया दिखाती है । जिस व्यवस्था के सम्मुख अपनी मेहनत का फल स्वयं नहीं भोग सकता, उधर मेहनत को ही समाप्त करने का सबक प्रेमचन्द की शंकर, हलकू या घीसू-माधव की याद दिलाती है ।

अविनाश मोटु उर्फ एक आम आदमी,बाबुलाल तेली की नाक आदि कहानियाँ निम्न मध्यवर्गीय परिवेश में लिखी गयी है, इसलिये व्यक्तिगत बलहीनता उनके लिये अभिशाप है। जबकि कटहल का पेड, मुहब्बत, चाल, तथा कुंचरो वा जैसी कहानियाँ निम्नवर्गीय जीवन यापन व संघर्ष के दस्तावेज़ हैं। उनके सम्मुख जीवन बस जीने केलिये है, जिसकी गहराइयाँ उनकी समझ के बाहर है और वे समझना भी नहीं चाहते हैं। उनके सम्मुख खोने के लिये कुछ नहीं है। दुख, दर्द,मान, सम्मान की फिक्र का मौका मेहनत के बीच इन्हें बहुत विरले ही मिलती है। मेहनत ही उनकी ज़िन्दगी है।

निष्कर्ष

पिछले दौर की कहानियाँ ज्यादातर सहानुभूति पर केन्द्रित थी। मज़दूरो के जीवन संघर्ष, उनके निहथेपन, मजबूरियाँ, समाज के बहाव में खुद को बचाये रखने की आकांक्षा तथा पथभ्रष्ट ज़िन्दगी का ही चित्रण हुआ है।'शहादतनामा' कहानी तक आते आते मज़दूर अपने ही वर्ग के भाई की लाश पर चढकर ऊँचाइयों को छूने लगता है या अपने ही मित्रों के खून चूसने वाले भूखे-रीछ बनने लगते हैं। लेकिन अस्सियोत्तर परिवेश में उसकी प्रतिक्रिया मौजूद है।'भूखे-रीछ' कहानी का रामलाल ऐसे एक मज़दूर के हाथ जला देता है, जो एकदम भूखे-रीछ के समान है। संजीव की 'चुनौती' कहानी एक बदबू से शुरू होती है मानो शेखर जोशी की 'बदबू' की प्रतिक्रिया हो।'बदबू' का नायक चुनौती में आकर प्रतिक्रिया तथा चुप्पी के बीच चुनौती कर लेता है और धोखेबाज़ी के खिलाफ आवाज़ उठाता है। टेप्चू, आवाज़ जैसी अमिट कहानियां सिमटती वर्गचेतना को हौसला देती है। लेकिन 'हलफनामा' कहानी ईमान्दार मज़दूर झूठे मुकदमे में फँसकर अदालत तक खींच लाया जाता है।

'शहादतनामा' के बेईमान मज़दूर का प्रतिपुरुष अस्सियोत्तर कहानियों में भी मौजूद है जिसे केवल हरामी की रोटी ही पचती है। भूखे-रीछ का बिहारी, आवज़ का शर्मा, चुनौती

का लतीफ आदि । उनसे भिडने वाले अकेले आदर्शवान मज़दूरों का चित्रण हुआ है। लेकिन आविश्कार कहानी तक आते आते मज़दूर अपने ही कारखाने को गिराने केलिये लैन लगाते हैं । यह परिवर्तन आशंकाजनक है ।

भीष्म साहनी की 'साग-मीट' कहानी का 'जग्गा'ने अपने अपमान की प्रतिक्रिया स्वरूप आत्महत्या की थी । अमरकांत के 'नौकर' को केवल मालिक की जी हुज़ूरी करना ही आता है । अस्सियोत्तर कहानियों में भी समान नौकरों का चित्रण है, जैसे 'हीरालाल का भूत' का हीरालाल, लेकिन बहुत विरले है । यह उल्लेखनीय है कि उधर भी आशा की उम्मीदें दर्शायी गयी हैं, जैसे ठाकुर से बदला लेनेवाले नई पीढी की सूचना जो, हीरालाल का भूत में दिखाई पडती है । 'उसका विद्रोह' कहानी में घरेलू नौकर की प्रतिक्रिया सक्रिय होने लगती है । समझौते के भीतर भी विद्रोह को अदा करने में नौकर कामयाब होता है,चाहे एक गाने से ही क्यों न हो ।'मामला आगे बढेगा अभी' का मोट्या तो मालिक की गाडी को कचरे का डिब्बा बना देता है । 'आप यहाँ है' कहानी की हिन्दिया अपने मालिक को अपने प्रश्नशरों से निश्चेत कर देती है।हालाँकि घरेलू नौकरों की आत्महत्या का भी चित्रण है जो 'बलि' कहानी में चित्रित है, दर असल एक मानसिक विस्थापन की उपज है।

'मंगली की टिकुली' में एक दिहाडी मज़दूर द्वारा संगठित मोर्चे का चित्रण हुआ है जो अन्यत्र दुर्लभ है । कहानी में उसकी कामयाबी होती है ।'धनुष-टंकार' कहानी में कुछ उल्टा ही होता है । कहानी में यूनियन ठेकेदार मज़दूरों को ठगते हैं । सिलिया, तिरिया चरित्तर, भूख जैसी कहानियों में दिहाडी मज़दूरों की पराजय ही चित्रित है । कहानियाँ ज्यादातर सहानुभूति की लीक पर चलती हैं।'तिरिया चरित्तर' की विमली ज़रा हटके है लेकिन परिवेश उसे पराजित कर देती है । कूडा कचरा बीननेवालों के पीछे न कोई संगठन है, न कोई आसरे

की उम्मीद। उनके लिये तो अपना हाथ ही जगन्नाथ है। समाज के तिरस्कार भरे व्यवहार को ये बडी सहजता से अपना देते हैं। जीवन इनके लिये कभी मुसीबत नहीं बल्कि सहज बहाव है। इसलिये रिश्तों की अदला-बदली इनके लिये सरल कार्य है। इस हमाम में, दर्द, कूडा जैसी कहानियाँ उदाहरण है। फिर भी 'अम्मा' कहानी ज़रा हटके हैं, अम्मा को मूल्य की गहरी समझ है, बिरादरी की परवाह भी। केवल मेहनत की रोटी ही इनको पचती है।

'शुरुआत' कहानी सक्रिय विद्रोह की नयी शुरूआत है। 'बेईमान' का लडका अपने परिवेश से बेईमानी सीखता है। 'बच्चों वाली गाडी' का अगनू आखिर समाज की शोषण नीति का शिकार होकर दम तोडता है। वह दुनियादारी जानकर भी उसे अपना नहीं पाता। 'जब तक बिमलाएँ हैं' की बिमला तथा 'चतुरी चमार की चाट'का चतुरी खुद समर्थ है लेकिन बिमला समाज को जीत लेती है और समाज चतुरी को हरा देता है। हालांकि मेहनत ही उनकेलिये भगवान है।

ज्यादातर कहानियाँ रिक्षाचालकों को पियक्कड तथा निरंकुश चित्रित करती है।'जब तक बिमलाएँ है' तथा 'बाबुलाल का परिवार' कहानियों में बेईमानी की रोटी पकाते बेशरम रिक्षाचालकों का चित्रण हुआ है। जबकि 'जिनावर' कहानी में हरामी करने को मजबूर होते रिक्षा चालक चित्रित है। पूरे लगन से मेहनत करने के बावजूद कम से कम पचास रुपया भी घर भेज न पानेवाला रिक्षाचालक 'प्रेत-मुक्ति' में दिखाई देता है। लेकिन 'कर्फ्यु' का शुकूर अपनी मजबूरी में भी ईमानदारी बर्तता है।

'अविनाश मोटु' तथा 'बाबुलाल तेली' समाज को एक नयी चेतना प्रदान करते हैं। दोनो वैयक्तिक आदर्शों को वाणी देते हैं मानो मौजूदा समाज वैयक्तिक आदर्शों का हो।

संक्षेप में कहानियों में मेहनत्कश मज़दूर वर्ग की अभिव्यक्ति ज्यादातर सहानुभूति के दायरे में हुई है, लेकिन अस्सियोत्तर परिवेश में आकर मज़दूर ज्यादा सक्रिय है। हालांकि

ज्यादातर मज़दूरों की फुटकल लडायियाँ ही चित्रित है । कहानियों में मज़दूरों के भीतरी शोषण के बहुत आयाम मिलते हैं । पूर्व पीढी का संघर्ष ज्यादातर व्यवस्था या पूँजीवादी मानसिकता के खिलाफ था, तो फिलहाल वह अपने ही सहकर्मियों से ज्यादा है । मज़दूर अपनों से ज्यादा डरने लगा है । हराम की रोटी ज्यादा पचने लगी है । सामाजिकता से वैयक्तिकता की तरफ यह तीव्र प्रयाण काफी आशंका जनक है । जबकि इस पर कोई परिवर्तन नहीं आया है कि मज़दूरों का संघर्ष आखिर जीने केलिये है । अस्सियोत्तर कहानियाँ उन्हें हौसला दिलाती है । ऐसी संवेदना देती है मानो फिर भी उम्मीद है कोई आमूल गत्यंतरण की ।

****

तीसरा अध्याय

अस्सियोत्तर कहानियों में दलित संघर्ष

"बस कीजिये मैनेजर साहब....अपनी भलाई की बात अब हम खुद सोच लेंगे । आप कष्ट मत कीजिये । सदियों से आप लोग सोचते रहे हैं हमारे लिये । अब आप आराम कीजिये । अपना नफा नुक्सान हम खुद समझेंगे । गलती करके ही लोग सीखते हैं, हमें गुमराह मत कीजिये ।"

-सूरजपाल चौहान

दलित व अवाम

'दलित'मराठी, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में प्रचलित शब्द है । जिसका सामान्य अर्थ गरीब, उद्पीडित आदि है । हालांकि राजनीतिक सन्दर्भ में दलित शब्द का अपना अर्थ विस्तार है । श्री धनश्याम राय के मत में 'दलित शब्द का इस्तेमाल सत्तर के दशक की शुरुआती दौर में बाबासाहब अम्बेदकर के नवबौद्ध अनुयायिओं ने किया था।[1] उन्होंने दलित का मतलब इस प्रकार दिया है-"जिसे तोड दिया है और जिसे उसके सामाजिक दरजे से ऊपर बैठे लोगों ने जान बूझकर नियोजित रूप से कुचल डाला है । इस शब्द में छुआ-छूत, कर्म सिद्धांत, जातिगत श्रेणी क्रम का नकार निहित है।"[2] दलित पाँथरों ने दलित का अर्थ विस्तार से दिया है-"1973 में दलित पाँथेर के घोषणापत्र में दलित की व्याख्या इस तरह की गयी कि राजसत्ता, धर्म, संपत्ति और सामाजिक हैसियत के आधार पर होनेवाली सभी नाइनसाफियों के खिलाफ संघर्ष करने केलिये प्रतिबद्ध अनुसूचित जातियाँ और जनजातियाँ भूमिहीन मज़दूर छोटे किसान और घुमंतू जनजातियाँ दलित मानी जायेंगी । कुछ कार्यकर्ताओं ने इस श्रेणी में महिलाओं, आफ्रिकी और अमेरिकी अश्वेतों एवं अन्य उद्पीडित राष्ट्रीयताओं को भी जोड लिया।"[3] 1981 से प्रकाशित दलित साहित्य अकादमी की पत्रिका 'दलित वॉयस' ने पूर्व अछूतों तथा सभी सताये गये अल्पसंख्यकों और अन्य पिछडे वर्ग को भी दलित मानने की घोषणा कर दी।'[4]

---

[1] धनश्याम राय, अस्मिताओं का सह अस्तित्व, आधुनिकता के आइने में दलित, सं.अभयकुमार दुबे,पृ.196

[2] वही.

[3] वही.

[4] धनश्याम राय,अस्मिताओं का सह अस्तित्व, आधुनिकता के आइने में दलित, सं.अभयकुमार दुबे,पृ.196

डॉ.आयाज़ अहमद कुरैशी की राय में "दलित शब्द डॉ.अम्बेदकर की 'डिप्रेस्ड'का हिन्दी अनुवाद है । दलित या डिप्प्रेस्सेड दोनों समानार्थी शब्द है जिसमें शोषित, उपेक्षित, दबे-कुचले और दमन के शिकार व्यक्ति अथवा वर्ग शामिल है।"[1] उन्होंने आगे कई विद्वानों को उद्धृत किया है जिन्होंने दलित शब्द की व्याख्या की है । "लक्षमण शास्त्री की राय में दलित मानवीय प्रगति में सबसे पीछे धकेल दिया गया सामाजिक वर्ग है।"[2] डॉ.म.न.वानखेडे की राय में-"जो श्रम जीवि हैं, वे सब दलित की व्याख्या में शामिल होते हैं।"[3] गोविन्द शंकर वाघमॉरे के मत में "दलित उसे कहते हैं जो आर्थिक रूप से अत्यंत दबा हुआ है, इस समाज व्यवस्था में सबसे नीचे रहनेवाला कमज़ोर वर्ग दलित समझा जाता है।"[4]

डॉ.विनयकुमार पाठक ने अम्बेदकरवादी सौन्दर्यशास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय विमर्श नामक पुस्तक में अनेक विद्वानों के दलित संबन्धित विचारों को एकत्रित किया है ।[5]-

1. दलित का अर्थ है जिसका दलन, शोषण और उदपीडन किया गया हो (एन.सिंह,कशिश अंक-4,पृ.18)

---

[1] डॉ.आयाज़ अहमद कुरैशी, उरदू अदब में दलित चेतना एवं सामाजिक न्याय ,दलित साहित्य 2002,पृ.64

[2] डॉ.आयाज़ अहमद कुरैशी, उरदू अदब में दलित चेतना एवं सामाजिक न्याय, दलित साहित्य 2002,पृ.64

[3] वही.

[4] वही.

[5] डॉ.विनयकुमार पाठक, अम्बेदकरवादी सौन्दर्य शास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय विमर्श, पं 200-201

2. वस्तुतः दलित या शोषित वर्ग से तात्पर्य है एक ऐसे वर्ग-समूह का, जातिविशेष का व्यक्ति अथवा वह जाति जिसके धन, संपत्ति, माल, अधिकार एवं श्रम आदि का हरण किसी अन्य सत्ता, शक्ति संपन्न वर्ग या जाति के द्वारा किया जाता है (डॉ.भगवानदास कहार,प्रज्ञा साहित्य,दलित विषेषाँक, पृ.24)

3. दलित शब्द की कई मिली जुली परिभाषाएँ है । इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछडी हुई जातियाँ ही नहीं है । समाज में जो भी पीडित है, वे दलित हैं (नारायण सुर्वे,प्रज्ञा साहित्य,दलित विशेषाँक,पृ.24)

4. दलित परम्परा का प्रयोग हिन्दू समाज व्यवस्था के अंतर्गत परम्परागत रूप से शूद्र माने जानेवाले वर्गों केलिये रूढ हो गया है । दलित वर्ग में वे जातियाँ आती हैं जो निम्न स्तर पर है और जिन्हें सदियों से सताया गया है (श्रीमति कुसुम मेघवाल, भूमिका, हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग)

5. दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिन्हें नकारा गया हो (दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ.4 पर ओमप्रकाश वाल्मीकि का उद्धृत कथन, लेखक ,मुन्ना तिवारी)

6. दलित वह है जिसका दलन किया गया हो । उपेक्षित, अपमानित, प्रतडित, बाधित और पीडित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आती है (डॉ.मोहनलाल सुमनासर, दलित साहित्य और उसकी सीमाएँ.पृ.10)

7. दलित शब्द आक्रोश, चीख, वेदना, पीडा, चुभन, घूरना और छटपटाहट का प्रतीक है (डॉ.मोहनलाल सुमनासर, दलित साहित्य और उसकी सीमाएँ पृ.10)

8. दलित सामाजिक प्रगति में सबसे पीछे पडा हुआ या धकेला गया वर्ग है । महाराष्ट्र के हिन्दू समाज में महार, चमार, डोम इत्यादि जिन जातियों को गाँव से बाहर रहने केलिये बाध्य किया गया और समाज, विशेषतः सवर्ण समाज शारीरिक सेवाएँ लेता

था, परंतु जीवनावश्यक प्रारंभिक ज़रूरतों से भी जिन्हें वंचित रखा गया। पशुओं के स्तर पर घृणित जीवन बिताने केलिये बाध्य किया गया, उनको अछूत या दलित कहा गया । (दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास, डॉ.चन्द्रकांत वान्देवडेकर का उद्धृत विचार, लेखक.डॉ.मुन्ना तिवारी,पृ.6)

9. दलित जातियाँ वे हैं, जो अपवित्र होती है, उनमें निम्न श्रेणी के कारीगर, धोबी, मोची, भंगी, बसौर, सेवक जातियाँ जैसे चमार, डॉंगरी, सौरी, कुछ जातियाँ परम्परागत कार्य करने के अतिरिक्त कृषि मज़दूरी का कार्य करती है (अम्बेदकर का उद्धृत कथन, दलित साहित्य और उसकी सीमाएँ,पृ.9)

इन परिभाषाओं के ज़रिये कुछ विद्वान दलितों को जातिपरक सीमा के अंतर्गत रखना चाहते हैं जबकि अन्य अनेक विद्वतजन दलित को एक सार्वलौकिक अस्मिता प्रदान करना चाहते हैं। यह अंतर्विरोध विवादास्पद है, लेकिन सभी विद्वान दलित जीवन की निम्न स्तरीयता एवं सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक जैसी बुनियादों के तहत बहुआयामी शोषणों के शिकस्त होने की वास्तविकता से सहमत है । परिभाषाओं से बढकर परिवेशगत यथार्थ दलित को अवाम बना देता है, जो इस अध्ययन का विषय है । अभिजन संस्कृती की शोषणनीति के सन्दर्भ दलित एवं अवाम समानार्थी विकल्प बन जाते हैं।

दलितों का जीवन सन्दर्भ

माना जाता है कि मनुष्य की ज़िन्दगी एक अमूल्य वरदान है । लेकिन दलित जीवन अभिशाप से बढकर कुछ भी नहीं। प्राचीन काल से लेकर दलितों को मनुष्य की हैसियत से बहुत विरले ही देखा गया है। दरअसल जो दलित कहे जाते हैं,वे भारतवर्ष के मूल निवासी रहे हैं। आर्यों के अगमन के साथ उनके और आर्यों के बीच घोर युद्ध छिड गया, जिसमें आर्यों की जीत हुई और भारत में अपनी सांस्कृतिक विरासत के साथ रहने लगे । इस तरह भारत में दो अलग-अलग संस्कृतियों का विकास होने लगा-आर्य संस्कृति और अनार्य संस्कृति- "वैदिक काल के पूर्व युग में ही वर्णों का समाज संगठित होने लगा था।'आर्य' और 'अनार्य' के

रूप में दो प्रधान प्रतिस्पर्धी संस्कृति सामने आ चुके थे । यह वर्गीकृत विभाग उनके प्रजातीय और साँस्कृतिक पार्थक्य का प्रतीक है।"[1] धीरे-धीरे दोनों समाजों के बीच आपसी मेल सहज होने लगा । लेकिन आर्य समाज के अभिजनों की दृष्टि में यह गलत था । उन्हें अपनी वंशीय वर्चस्विता कायम रखनी थी । इस साजिश के तहत उन्होंने समाज को चार वर्णों में बाँट दिया और अनार्यों को सबसे निचली श्रेणी प्रदान की जिनका केवल आश्रित होना ही लिखा था।"आर्यों ने अपनी संस्कृति एवं खून को बचाये रखने केलिये सम्पूर्ण समाज का पुनर्गठन किया और चारों वर्णों की व्यवस्था की । ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अंतर्गत उन्होंने समस्त अनार्य वर्ग को सम्मिलित किया तथा प्रारम्भिक तीनों वर्णों में आर्यों को संयोजित किया ।"[2] यह षड्यंत्र मनुस्मृति जैसे वैदिक ग्रन्थों में निहित है ।

"मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मा ने सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा केलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अलग-अलग कर्मों की सृष्टि की । पढाना, पढना, यज्ञ कराना, करना, दान देना और लेना इन कर्मों को ब्राह्मणों केलिये बनाया । प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढना, विषय में आसक्ति नहीं रखना । इन करमों को क्षत्रियों केलिये बनाया । पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढना, व्यापार करना इन कर्मों को वैश्यों केलिये बनाया । ब्रह्मा ने ब्राह्मण आदि तीनों वर्गों की अनिंदक रहते हुए सेवा करना ही शूद्रों केलिये कर्म बनाया है।"[3]

---

1 डॉ.विनयकुमार पाठक, अम्बेदकर्वादी सौन्दर्यशास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय विमर्श .पृ 78

2 डॉ.विनयकुमार पाठक, अम्बेदकर्वादी सौन्दर्यशास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय विमर्श पृ.80

3 डॉ.विनयकुमार पाठक, अम्बेदकर्वादी सौन्दर्यशास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय विमर्श .पृ.182

मनुस्मृति में शूद्रों को उनकी छोटी से छोटी छूट को भी कठिन से कठिन शिक्षा देने की व्यवस्था का निर्धारण है।"द्विज को दारुण वचन से आक्षेप करनेवाले शूद्र को उसकी जीभ काटकर दण्डित कराना चाहिये, क्यों की वह नीच से उत्पन्न है -

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन
जिह्वायाः प्रप्नुयाच्छेदम जघन्यप्रभवौ हि सः॥[1]

इनके नाम तथा जाति का उच्चारण कर कटुवचन करनेवाले शूद्र के मूँह में जलती हुई दश अंगुल लंबी लोहे की कील डालनी चाहिये ।

नाम जातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः।
निक्षेप्योयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः॥[2]

मनु के अनुसार शूद्र ने जिस अंग से द्विजाति को मारा है राजा उसके उसी अंग को कटवा डाले । हाथ उठाकर या डंडे से ब्राह्मण को मारनेवाले शूद्र का हाथ कटवा डाले तथा पैर से ब्रह्मण को मारनेवाले शूद्र का पैर कटवा डाले-

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति।
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति॥[3]

ब्रह्मण के साथ एक आसन पर बैढे हुए शूद्र की कमर को तपाये गये लोहे से दगवाकर निकाल दे अथवा उसके नितंब को कटवा डाले । शूद्र यदि ब्राह्मण का अपमान दर्प के कारण थूक फेंककर करे तो राजा उसके दोनों ओष्टों को,मूत्र फेंककर करें तो उसके लिंग को तथा अपशब्द कर करें तो उसके गुदा को कटवा ले ।

---

[1] मनुस्मृति, 8/260, पृ 443

[2] वही, 8/271, पृ.443

[3] वही, 8/280, पृ 445

अवनिष्ठिवतो दर्पाद द्वावोष्ठौ छेद्येननृपः

अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम्,॥[1]

शूद्र यदि अभिमान से ब्राह्मण के बालों को पकड ले तो बिना विचार किये शूद्र के दोनों हाथों को कटवा ले और अभिमानपूर्वक मारने केलिये ब्राह्मण के दोनों पैरों दाढी, गर्दन तथा अण्डकोश को शूद्र यदी पकड ले तो उसे वही दण्ड देना चाहिये ।

केशेषु गृह्लतो हस्तौ छेदयेदविचारयन।

पादयोर्दाडिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च॥[2]

वर्णव्यवस्था के अनुसार "शूद्र को वेतन देकर या नहीं देकर उससे दास कर्म को करावें; क्यों कि ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की सेवा केलिये ही शूद्र की सृष्टि की है । स्वामि के द्वारा छोडा गया भी स्वामि से छट्कारा नहीं पाता क्योंकि वह उसका स्वाभाविक कर्म है।"[3]

मनुस्मृति के अनुसार शूद्र को आर्थिक स्वातंत्रता निषिद्ध है । ब्राह्मण बिना विकल्प दिये शूद्र की सम्पत्ति को ले सकता था । क्योंकि उसका निजी धन कुछ नही है और वह स्वामि से ग्रहण करने योग्य धनवाला है अर्थात शूद्र के धन को ग्रहण करने का अधिकार उसके स्वामि को है -

विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद द्रव्योपादानमाचरेत।

न हि तस्यास्ति किंज़ित्स्वं भर्तृहायधनो हि सः॥[4]

---

[1] वही, 8/282, पृ 446

[2] मनुस्मृति,8/283, पृ.446

[3] डॉ.विनयकुमार पाठक, अम्बेदकर्वादी सौन्दर्य शास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय विमर्श।, पृ.184

[4] मनुस्मृति 8/417 ,पृ.474

उस ज़माने में दलितों की ज़िन्दगी कुत्तों से भी बदतर थी। फिर बदलाव के दौर कई आये। अर्थ केन्द्रित सामाजिक व्यवस्था साबित हो गयी, जबकि दलितों की बदहालत का कहीं परिवर्तन नहीं हुआ। "आज भी दलित गोबर से दाने चुनते हैं; नीच से नीच काम करने केलिये विवश है। भूख से इनके बच्चे आज भी बिकते हैं। भूखमरी और कुपोषण आज भी उनके यहाँ सबसे ज्यादा हैं। सदियों से बहते ज़खम आज भी रिस रहे हैं।"[1] कुछ अलग अन्दाज़ में।

मनुमहाराज कब का मर चुका लेकिन उनकी गानेवालों की कतार की मानो कोई अंत ही नहीं। सामाजिक ढाँचा बदल गया। राजसत्ता बलपूर्वक हटा दी गयी। प्रजातंत्र साबित हो गया। समाज में प्रत्येक नागरिक का समान कानूनन अधिकार हासिल हुआ। फिर भी सवर्ण गरिमा का कभी अंत नहीं हुआ है। उसका अनजाम दलित समाज को आज भी भुगतना पड रहा है। दलित खेत-मज़दूरों को आर्थिक शोषण के साथ-साथ जघन्य सामंती शोषण का भी शिकार होना पड रहा है। "सीधे तनकर चलना, साफ धोती पहनना और ज़मीन्दार के सामने खटिया पर बैठना नामुमकिन है"[2] वक्त के गुज़रने के साथ छुआ-छूत की प्रथा में थोडा हल्कापन आया है, ज़रूर लेकिन शोषण के नये तरीके भी ईजाद हो गये। 'डोला प्रथा' उनमें से एक है, जिसके तहत नव ब्याही दलित कन्या को अपनी पहली रात ज़मीन्दार के साथ गुज़ारनी पडती है। 'बीसवीं सदी की शुरुआत में ही शहाबाद के इलाके में

---

1 डॉ.विनयकुमार पाठक, अम्बेदकरवादी सौन्दर्य शास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय विमर्श, पृ.187

2 बेला भाटिया, नक्सल्वादी बनते दलित, आधुनिकता के आयिने में दलित, सं.अभयकुमार, पृ.323

(आज के भोजपूर और रोहतस जिले) सामंतों ने डोला प्रथा चला रखी थी'[1] मज़दूर महिलाएँ राजपूत, भूमिहार ज़मीन्दार एवं उनके कारिन्दों के आखेट की शिकार रहती है ।

अपने नाम से पुकारे जाने का सौभाग्य दलितों को नसीब नहीं होता । मालिक केलिये दलित को उसका नाम लेकर पुकारना मानो नाक कटवाने के बराबर है । वे उन्हें 'अरे' बोलकर सम्बोधित करते हैं । नाम अगर लेते भी हैं तो उसमें 'व' लगा देते हैं, जैसे लखन का लखनवा । नाम के साथ गालियों की बौछार सुननी पडती है।[2] आर्थिक तौर पर भी दलितों की ज़िन्दगी काफी निराशाजनक है। दलितोद्धार के लिये सरकार की बनायी गयी सारी योजनाओं के बावजूद दलित आर्थिक तौर पर असुरक्षित है । बिहार के परिप्रेक्ष्य में बेला भाटिया लिखती है -"इस समय में (बीसवीं सदी का उत्तरार्थ) मज़दूरी की दर साढे तीन रुपया प्रतिदिन है, जिसे अक्सर नकदी में न देकर खाद्य पदार्थों के रूप में दिया जाता है । नब्बे की दशक की शुरुआत में इस हिसाब से खेत मज़दूरों को चार किलो धान, आधा किलो सत्तू अथवा चूडा (चिवड) मिलना चाहिये था । लेकिन वास्तव में अधिकतर इलाकों में उन्हें केवल दो-ढाई किलो मोटा अनाज ही दिया जाता था । चमारों और मुसहरों को पशुओं की तरह छोटी सी खंखाल में रहना पडता था । वे ज्यादा से ज्यादा तीन से पाँच रुपया रोज़ पाते थे और जानवरों को खिलायी जानेवाली खेसारी से पेट भरते थे । इस आहार के कारण उन्हें चर्म रोग तथा गठिया जैसी बीमारियाँ हो जाती थी।"[3] कभी-कभी जी-तोड मेहनत के बावजूद इनको वेतन महीने-दो महीने बाद मिलता था ।

---

[1] बेला भाटिया, आधुनिकता के आयिने में दलित, सं.अभयकुमार दुबे, पृ.323

[2] बेला भाटिया, आधुनिकता के आयिने में दलित, सं.अभयकुमार दुबे, पृ.323

[3] बेला भाटिया, आधुनिकता के आयिने में दलित, सं.अभयकुमार दुबे, पृ.322

मेहनत के अलावा दलितों को जीने का और कोई चारा नहीं है । जब्कि महनत कठिन तपस्या समान व्यतीत होने के बावजूद इन्हें बुनियादी ज़रूरतों तक का सामान जुटाना दूभर है। कभी उनके मिट्टी के बरतनों को आलू-मटर ही क्या खाली रोटी भी मयस्सर नहीं होता । जाडे की महीनों में इनके 'घर' शब्द से अभिहित होती मिट्टी के खंडहरों में या प्लेस्टिक के छलदारी में 'सविस्तार सिकुडकर' सोते हैं । दलित खेतीहर मज़दूर जाडों की फसल के बाद चावल और गर्मियों में गेहूँ खाकर काम चलाते हैं । साथ में हरा साग,आलू,मिर्च और आम का अचार होता है दाल खाने की औकात बहुत कम मज़दूर परिवार की होती है । सत्तू तरह-तरह के रूपों में खूब खाया जाता है । बारिश में नहर से छोटी-छोटी मछलियाँ पकड ली जाती है । दूध और माँस जैसी चीज़ें केवल त्योहारों के दौरान ही खाने को मिल जाती है । पोशाक के नाम पर फटे पुराने पैबन्द लगे और धुल-धुलकर घिस चुके कपडे अपने आप में गरीबी का बयान है । अधिकतर औरतों के पास दो से अधिक साडियाँ नहीं होती है । बच्चे कम से कम कपडे और एक जांघिये में देखे जाते हैं । स्कूली पोशाक पहन सकने वाले बच्चों की संख्या बहुत ही कम है । जाडों में इक्का-दुक्का के पास ही स्वेटर या शाल होती है । ये लोग आम तौर पर नंगे पाँव ही रहते हैं । चप्पल गाँव के बाहर जाने पर ही पहनी जाती है । ज्यादातर के पास तो चप्पल होती ही नहीं औरतों के जीवन में रंग के नाम पर केवल काँच की कोई चूडियाँ और सिन्दूर ही होती है । देशी दारू और हुक्का पीकर ये लोग कभी-कभी अपना गम गलत करते हैं।"[1] इस तरह दलित मज़दूरों का जीवन अपनी बुनियादी ज़रूरतों को हासिल करने की दौड में समाप्त हो जाता है ।

रहन-सहन की उचित व्यवस्था न होने की वजह दलित बस्तियों में रोग बिन बुलाये आते मेहमान है -"खेती मज़दूरों के टोले में हैजा हो जाने का मतलब है, मौत । बच्चे बिना

---

[1] बेला भाटिया, आधुनिकता के आयिने में दलित, सं.अभयकुमार दुबे, पृ.323

किसी टोके के पोलियो, टिटिनेस और डिफ्टैरिया जैसी बीमारियों के होने के अन्देशा से ग्रसित रहते हैं। कुपोषण और रक्ताल्पता की समस्या तो आम है। अगर आँख कमज़ोर हैं तो वे न इलाज कर सकते हैं।"[1] औरतों की इससे भी बुरी हालत है। "महिलाओं नहाने और शौचादि केलिये कोई अलग व्यवस्था नहीं है। बच्चा पैदा करने में आयी कोई भी मुश्किल घातक साबित हो सकती है। गाँवों में किसी भी किस्म की स्वस्थ सेवा का पता तक नहीं बिजली लापता है और सडकें पक्की केवल वे हैं,जो गाँव को मुख्य कस्बे से जोडती हैं। अवागमन की सुविधाओं का पूरी तरह से अभाव है। शहर जाने केलिये गाँववालों को पैदल पक्की सडक तक जाकर स्थानीय ज़मींदार और व्यापारियों द्वारा चलाई जानेवाली बस का इंतज़ार करना पडता है। सार्वजनिक वितरण केवल कुछ गाँवों में ही सक्रिय है और वहाँ भी उसका कामकाज संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।"[2] दलितों को शिक्षा दिलाने की सरकारी योजनाएँ हैं। मन में लगन भी है, पर कोई दलित बच्चा ऐसा कोई उम्मीद भी रख सकता है? "गाँवों में स्कूल हैं लेकिन दलितों के बच्चों को नसीब नहीं हो पाते।क्योंकि उनकी झोंपडियों में न पढने की हालत है और न ही जागरूकता के अभाव में उनके माँ-बाप को उन्हें पढाने की चिंता है।"[3]

वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में भी दलितों की बदहालत में बुनियादी बदलाव नहीं आया है। काफी इंतज़ार के बाद 2007 में एक जानेमाने दलित नेता का मुख्यमंत्री बनना और उनके नेतृत्व में बहुजन समाजवादी पार्टी के सत्ता में अना दलितों में उम्मीद जगानेवाली घटना थी। हालांकि देश भर से दलित शोषण के बारे में मिलते खबरें कुछ और हकीकत ही बता रही है। राजनीतिक जगत के उस ऐतिहासिक घटना के ठीक एक साल बाद उत्तर प्रदेश में ओब्सेर्वस रिसर्च फाउंडेशन' (Observers Research Faundation-

---

[1] बेला भाटिया, आधुनिकता के आयिने में दलित, सं.अभयकुमार दुबे, पृ.323

[2] वही

[3] बेला भातिया, आधुनिकता के आयिने में दलित, सं.अभयकुमार दुबे, पृ.321

ORB) द्वारा आयोजित एक संगोष्ठी में दिल्ली के एक वरिष्ठ समाज विचारक ने एक पर्चा प्रस्तुत की । उस पर्चे के मुताबिक मायावती सरकार के सत्ता संभालने के एक महीने के अंतर्गत मुजफ्फर नगर में सात दलितों की हत्या हुई और तीन दलित स्त्रियों का बलात्कार हो गया । 'दि नेशनल क्राइम रेकॉर्ड्स ब्युरॉ (the national crime records bureau-NCRB)' की गणना के अनुसार पूरे भारत में दलितों के खिलाफ हुई ज्यादतियों में 10.2 प्रतिशत की बढोत्तरी हुई है । और इस मामले सबसे आगे उत्तर प्रदेश है । कुल 9819 घटनाओं में 2113 घटनाएँ उत्तर प्रदेश में घटित है ।[1]

दरअसल दलितों के खिलाफ होती ज़्यादतियाँ दिन-व-दिन बढती जा रही है । हकीकत बताती है कि दलित अधिनियम के अनतरगत मुकदमे दर्ज करने में दलित जन असमर्थ हो रहे हैं । कभी यह अधिकारियों की कूटनीती की वजह है तो कभी अज्ञतावश । दि नेशनल ह्यूमन राइट(The National Human Right-NHRC) ने 2002 के अपने सालाना रपट में सूचित किया है कि अधिकारियों द्वारा दलितों पर की गयी ज़्यादतियों की रपट को छिपाना एक मामूली प्रवृत्ति बन गयी है । अनुसूचित तथा जनजातियों की शिकायतों को एस.सी.एस.टी अधिनियम के तहत दर्ज करने से पुलिस खिसकने की कोशिश करते हैं ताकि घटना का गौरव मिट जाएँ और अभियुक्त गिरफ्तारी तथा मुकदमे से बच जाए।[2]

नेशनल दलित मोव्मेंट फोर जेस्टिस(National Dalit Movement For Justice-NDMJ) की गणना के मुताबिक 1992 से 2007 तक की अवधि में दलितों पर अत्याचार

[1] Victims always, Venkatesh Raamakrishnan and Ajoy Ashirwad Mahaaprashasta, Front Line, December 2009, page5

[2] Victims Always, FrontLine, December 4,2009,page.6

की घटनाओं में केवल 33 प्रतिशत ही एस.सि.एस.टि अधिनियम के तहत अभिलिखित है । ज्यादातर घटनाओं की अभिलेखा I.P.C के अंतर्गत हुई है ।[1] यह इस तथ्य को सही साबित करती है कि दलितों के प्रति सवर्णमानसिकता में अब भी परिवर्तन आना बाकी है । इसी वजह दलितों पर होती अत्याचरों की ज्यादातर घटनाओं में सवर्ण लोग मुकदमे से बच निकलते हैं । सत्ता की तरफ से मिलता यह अनुमोदन दलित शोषण को और भी गहरा कर रहा है । देश के विभिन्न कोनों से इसी तरह दलित शिषण की खबरें मिल रही है । मुम्बई के सत्तारा जिला के कुलकजय गाँव के निवासी मधुकर खाट्गे ऐसी ज्यादतियों का एक शहीद है । रेलवे की नौकरी से सेवानिवृत्ति के बाद उसकी बस एक ही इच्छा थी-गाँव में अपनी ज़मीन पर खेती करना । पंचायत से अनुमति पाकर उसने अपनी ज़मीन में एक कुआँ बनाया । लेकिन यह इच्छा उसकी अंतिम संस्कार बन गयी । खाट्गे के सवर्ण पडोसियों द्वारा यह जुर्रत सहा नहीं गया । 26 अप्रैल 2007 को सवर्णों ने लाठी-कुठार लेकर उन पर वार किया और अस्पताल की राह में उसकी मौत हुई । 12 लोगों की गिरफ्तरी हुई लेकिन उन्हें ज़मानत पर छोड दिया गया। [2]

मुँबई के भंडारा जिले के खैरलांजी गाँव में घटित एक दुर्घटना दलितों के खिलाफ सवर्ण घृणा क मकुट उदाहरण है । 2006 के सितम्बर के एक दिन सरेआम चार सदस्यों के एक परिवार की निर्मम हत्या की गयी । ज़मीन पर अपना हक जताने केलिये सवर्णों ने ही उनकी हत्या की थी । उनमें से दो नारियों को दिन-दहाडे नंगा घुमाया, उनकी सामूहिक बलात्कार किये तथा बाद में हत्या कर दी गयी ।[3]

---

[1] Victims Always, FrontLine, December 4,2009, पृ.7

[2] Unvilling to aact, Front Line, December-4, 2009

[3] वही

वर्तमान विखटनकामी दौर में विभिन्न जाति व सांस्कृतिक इकाइयों के भीतर अपने अपने अलग-थलग राजनीतिक गठबन्धन पनप रहे हैं । इन छोटे-मोटे संघों के सदस्य कभी अपने दल को चर्चा में बनाये रखने केलिये, अपनी गरिमा को बरकरार रखने तथा अपना संघबल जताने केलिये मासूमों पर टूट पडते हैं । अक्सर इनके शिकार बनते दलित ही हैं । बिहार से मिली खबर के अनुसार पिछले 25 वर्षों के अंतर्गत सवर्णों के अनेक राजनीतिक संघों का रूपायन हुआ है । इसी कालसीमा में दलितों के खिलाफ 80 सशस्त्र हमलाएँ हो चुकी हैं । इनमें कुल 300 लोगों की मृत्यु हुई है ।[1]

'दि स्टेट्स क्राइम रेकॉर्ड्स ब्युरों' (The States Crime Records Bureau) के अनुसार 2003 से 2008 तक की अवधि में चेन्नई में दलितों के खिलाफ कुल 8209 अपराधों के अभिलेखा हुई है ।[2] 31 आगस्त 1995 के 'कोटियंकुलम हिंसाकाण्ड' में पुलिस ने ही दलितों की बस्ती में लूट मचा दी । इसी तरह 'तामरभरणी जनसम्हार' में भी पुलिस के हमले की वजह 17 दलितों की जान चली गयी । सरकारी जानकारियों के मुताबिक चेन्नाई के 23 जिलों में दलितों के खिलाफ भेदभाव की मानसिकता कायम है।[3] आगस्त 1987 में बेलूर की एक घटना में बेल्गाम जिला के बेण्डीगिरे गाँव में मक्के की चोरी के इल्ज़ाम में पकडे गये चार दलितों को एक दूसरे के मल खिलवाया गया।[4]

अर्थात यह हकीकत है कि दलितों का शोषण वेदोत्तर काल से लेकर आज भी ज़ारी है । दरअसल जाति प्रथा शूद्र शोषण केलिये बनाई गई साजिष थी । सवर्णों ने उसे ईश्वर-प्रदत्त ठहराया तथा पूरे अधिकार से दलित मासूमों पर अत्याचार करता आया । सवर्ण गरिमा की

[1] Unvilling to aact, Front Line, December-4, 2009, पृ14

[2] Unvilling to aact, Front Line, December-4, 2009,पृ.15

[3] वहीं

[4] वही

चमत्कार के सम्मुख दलित समाज भी अपनी पहचान भूलता आया । समकालीन दौर में उनके लिये एक और हादस यही है कि पढे लिखे दलित नौजवान अपने ही लोगों के पीठ पर छुरा भोंक देता है । दलित होने के नाते आरक्षण के सारे अनुदानों तथा अनुमतों को भुगतने के बावजूद अपने ही सगे संघियों को किनारा कर देते हैं । "देखने में आया कि पढा-लिखा दलित समाज अपने दलित पहचान से शर्मिंदा है । अपने गाँव, अपने नाते रिश्तेदारों से कटकर भागते हैं । पढा-लिखा आज का दलित आरक्षण की बैशाखी तो चाहता है, मगर दलित पहचान नहीं"[1] दलित समाज के ही भीतर आर्थिक शोषण की समस्या गम्भीर है । उनके बीच भी जातिपरक वरीयता कायम है । उच्च जातवाले नीचजातवाले को सताते हैं, जैसे विनयकुमर पाठक ने सूचित किया है-"एक ओर बडी समस्या दलितों में है-वह है, दलितों में दलित की, अछूतों में अछूत की । खटिकों में भी खटिक है । बकरा काटनेवाला खटिक सुवर काटनेवाले खटिक से अपने आप को ऊँचा समझता है,श्रेष्ठ मानता है।"[2]

इस तरह दलितों का जीवन सदियों से समस्याओं की गिरफ्त में गुज़रा है । दलित समाज अपनी अस्मिता को तलाशता रहा है । फिर भी अपना हक और सही पहचान नहीं कर पायी है। उनकी तलाश अब भी ज़ारी है, लेकिन पहले से काफी बेहतर है । अब वे मानव की हैसियत से अपने जन्मसिद्ध अधिकार को माँगने लगे हैं।महात्मा जोतिबा फूले, डॉ. बी. आर. अम्बेदकर जैसे महारथियों के प्रयत्न तथा शिक्षा से उपलब्ध समझदारी की वजह दलितों में चेतना जगी हुई है । आज दलित समाज संघर्षरत है । अपने अतीत को वर्तमान से जीतने केलिये वे सक्षम हो रहे हैं । उन्हें लडना आता है, अपने अतीत से, वर्तमान से, सुन्हरे

---

1 डॉ.विनयकुमार पाठक, अम्बेदकरवादी सौन्दर्य शास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय विमर्श, पृ.193

2 डॉ.विनयकुमार पाठक, अम्बेदकरवादी सौन्दर्य शास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय विमर्श , पृ.193

भविष्य पर छाई अन्धकार से। सवर्णमानसिकता के सामने उनके पैर फिसलते ज़रूर हैं, लेकिन उनका कदम आखिर आगे की तरफ ही बढता है ।

अस्सियोत्तर दलित कहानियों में संघर्ष चेतना

दलित कहानियाँ दलित चेतना के निदर्शन हैं । ये सचेत दलित कामनाओं का प्रतिफलन करती हैं । अस्सियोत्तर दलित कहानियों में शोषण के खिलाफ संघर्षरत दलितों के विभिन्न आयाम नज़र आती हैं । ये बहुस्तरीय हैं । इनका कथ्य दलित पहचान से सम्बन्धित है और कथन अपनी आकांक्षाएँ तथा आक्रोशों से गूँजित । ये कहानियाँ दलित जीवन के विभिन्न थल-काल सीमाओं से गुज़रकर पाठकों के सम्मुख दलित जीवन का संपूर्ण एवं सजीव चित्रण प्रस्तुत करती हैं, जो उन्हें मेहनतकश अवाम के समकक्ष खडा करते हैं । और उनमें जो चेतना निहित है, पूरे मेहनतकश वर्ग केलिये प्रेरणादायक है ।

ज़मीन्दारी शोषण नीति तथा दलितों की संघर्ष चेतना

जैसे सूचित किया गया है, दलित समाज सालों से सवर्णों की सामंतवादी नज़रिये का शिकार रहा है । प्रजातांत्रिक सत्ता ने सवर्णों की तानाशाही को थोडा कम कर दिया है लेकिन अपने जन्म सिद्ध कहे जानेवाले अधिकारों को छोडना उनके लिये नागवार है । सत्ता की गुप्त सहमती से ही ये दलितों पर अत्याचार करते रहते हैं।

दलित औरतें अक्सर ज़मीन्दारों की अनियंत्रित यौन कामनाओं की शिकार होती रहती हैं । मोहनदास नैमीशराइ की 'अपना गाँव' कहानी में ज़मीन्दर के मंझले लडके तथा उनके चार लठैतों द्वारा कबूतरी नामक दलित औरत पूरी बस्ती के सामने नंगी घुमायी जाती है । जिस बहु की आज तक किसीने चेहरा तक नहीं देखा था उसके नंगे बदन को सारे गाँव देख लिया और देखता रह गया । उसकी गलती यह थी कि ठाकुर के बुलाने पर वह हवेली पर काम करने नहीं गयी । ठाकुर की हवेली में किसी लडकी के काम करने जाने का मतलब था-अपनी इज्जत से हाथ धोना । वह और उसके गाँव के सभी मरद-औरत इस सच्चाई

से पूर्णतया अवगत है । इसलिये वह मना करती है । ठाकुर को यह अपने अधिकार पर लगा सवाल महसूस होता है । अपने अधिकार पर लगी ठेस मिटाने केलियेवह कबूतरी को नंगा घुमाता है, ताकि कोई आइन्दा ऐसी जुर्रत न करे ।

इस अत्याचार के प्रति दलितों की प्रतिक्रिया में वैचारिक या संवेदनात्मक समानता नहीं है । समस्या की गम्भीरता से अवगत होकर एक युवक बोल उठता है - "पर ऐसे कब तक चलेगा कल संपत्त की घरवाली को नंगा किय, आज किसी और के भैन-बेटियों को भी नंगा घुमा सकते हैं।"[1] उसके प्रतिरोध में रोडा अडाते हुए एक वृद्ध बोलता है -"पर गरीब गुबरा लोग कर भी क्या सकते हैं ?"[2] नई तथा पुरानी पीढियों के बीच यह अंतर्द्वंद्व कहानी के आद्यंत मौजूद है । अपनी औरत के अपमान की खबर पति संपत्त को दिलाने से उसका ही भाई रोक लगा देता है ताकि कोई झगडा न मोल ले -"कौन जाने वह आते ही ठाकुर से झगडा कर बैठे । गरम खून है, फिर शहर की हवा लग चुकी है । कहाँ सहन होगा उससे यह सब । हम तो गाँव में रहते हैं, गाँव की परम्पराओं को जानते हैं । चुप रहना सीखा है, ज़ुल्म अत्याचार भी सहते रहे हैं । पर वह तो यह सब चुपचाप सहन नहीं कर पाएगा । ज़रूर कुछ टेढा-बखेडा होगा उसके आने पर।"[3] ज़मीन्दार के आतंक की रजनीति उसके मन में डेरा डाल कर बसा हुआ है । परंतु वह गान्धीबाबा के अन्दाज़ में प्रतिक्रिया करने का ऐलान करता है, जो ऐसी दानवीयता के सामने काफी सन्देहास्पद है । अन्धेरा घिरने से पहले उसने ऐलान किया -"हम अनशन करेंगे भूख हडताल करेंगे । हमारी समाधियाँ यहीं बनेंगी । अन्न का दाना भी न खाएँगे । उनके मरने के बाद ही अब गाँव के लोग उनकी अस्थियों को कन्धा दें,

---

[1] अपना गाँव, मोहनदास नैमिशराय, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ.36

[2] वही .पृ. 36

[3]अपना गाँव, मोहन्दास नैमिशराय, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता .प्र.36

बहुत सह लिया ठाकुरों के पीढी दर पीढी जुल्म । अब और न सहेंगे।"[1] चाहे वह सत्याग्रह की सोचता है, उसे एहसास है कि उसके साथ कुछ गलत हो रहा है । यह काफी आशादायक है ।

युवा संपत्त की सोच अलग है । वह भाई को समझाता है -"भय्या हम कब तक कमज़ोर बने रहेंगे ? कब तक हम गुलामों की तरह रहेंगे?"[2] संपत्त की यह पहचान नई पीढी की नयी संघर्ष चेतना को द्योदित करता है । वह अपना अलग गाँव बसाने के बारे में सोचता है, एक नई शुरुआत जिसमें दलित, दलित होकर नहीं बल्कि इनसान की हैसियत से जी पायें । कहानी में अपमान की शिकार-कबूतरी की प्रतिक्रिया बस रुवाई तक सीमित होती है, लेकिन अन्य कई दलित कहानियाँ ईंट का जवाब पत्थर से देने की संवेदना प्रदान करती है ।

कुसुम मेघवाल की 'अंगारा' कहानी में ठाकुर द्वारा एक दलित युवती 'जमना' का बलात्कार एवं उसका प्रतिरोध दर्शाया गया है । मौका मिलते ही जमना ठाकुर के बेटे सुमेर सिंह का 'पुरुषत्व के प्रतीक अंग' को ही काट गिराती है । जमना का भाई 'हीरा' का एक वीर पुरुष समान चित्रण हुआ है । वह सुमेर सिंह से लडता है और कसम लेता है-"माँ मैं तुम्हारी कसम खाकर कहता हूँ, जब तक जमना की इज्जत लूटने वाले से बदला नहीं लूँगा, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा।"[3]

बलात्कार की शिकार होकर भी जमना साहस नहीं छोडती । वह अपने को पराजित नहीं मानती । इसलिये वह बलात्कारियों से सवाल दाग देती है-"आप लोग दिन के उजाले में हमारी पर्छाई से भी परहेज करती है, किंतु रात के अन्धेरे में हमारा पसीना और होठों

[1] अपना गाँव, मोहनदास निमिशराय, दलित कहानी संचयन ,सं.रमणिका गुप्ता, पृ.38

[2] अपना गाँव, मोहनदास निमिशराय, दलित कहानी संचयन ,सं.रमणिका गुप्ता,पृ.41

[3] अन्गारा ,कुसुम मेघवाल, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ143

से....पर आप अपवित्र नहीं होते ? ऐसे लिपट जाते हैं जैसे आप में और हम में कोई फर्क नहीं है ? आप की छूत-छात और जाति-पाँत कहाँ चली गयी?"[1] जमना को यद्यपि उनके पशुबल के सामने झुकना पडे, मौका मिलते ही वह बदला लेती है । वह सुमेर सिंह के पुल्लिंग को काट फेंककर अपने साहस और धैर्य का परिचय अदा करती है ।

सदियों की गुलामी से उपज हीनताबोध की वजह गाँववाले जमना को ही दोषी ठहराते हैं-"छिनाल कैसी कूदती फिरती थी, अपनी जवानी बताने को । पता नहीं किन-किन के साथ मूँह काला करके आयी है।"[2] वे ठाकुर के सामने सरे आम उसकी वरीयता का ऐलान करते हैं-"कुछ नहीं बोलेंगे हुज़ूर (बलात्कार के बारे में), आप तो अन्न दाता है । जल में रहकर मगर से बैर कैसे हो सकता है।"[3]लेकिन कहानी में यह मानसिकता चिर नहीं है । मौके पर वार करना उन्हें भी आता है । कहानी के अंत में गाँववालों की सलामी साहस में बदलती है - "हीरा साहस देखकर अन्य युवक भी अपनी झोंपडियों से लठ लेकर मदान में आ कूदे । फिर तो औरतें भी पीछे नहीं रही । देखते ही देखते वहाँ एक युद्ध का दृश्य उपस्थित हो गया।"[4] भीड के संघर्ष में शरीक होने का यह चित्रण अवश्य आशावादी है ।

राजेश कुमार बौद्ध की 'आतंक' कहानी का कथ्य भी अंगारा से मिलता जुलता है । कहानी का 'वह' ज़मीन्दारों के नृशंसता का शिकार है । उसके बेटे और ठाकुर के बेटे के बीच हुए मामूली स्कूली झगडे को मामाला दिखाकर ठाकुर उस औरत को पूरी बस्ति के सामने

---

[1] वही

[2] अंगारा, कुसुम मेघवाल, दलित कहानी संचयन, स.रमणिका गुप्ता, पृ.142

[3] अंगारा, कुसुम मेघवाल, दलित कहानी संचयन, स.रमणिका गुप्ता, पृ.142

[4] वही

नंगा करता है । उसका बलात्कार करता है । अनेकों ताडनाओं के उपरांत वह ज़िन्दा जला दी जाती है। पूरे गाँव यों ही देखते रहते हैं । लेकिन कहानी इधर खतम नहीं होती । जिस तरह दमन एवं आक्रामक नीति की हद होती है, उसी तरह भय की भी सीमा होती है । मानव का मन जब उस हद को पार जाता है, तब उसे रोकना नामुमकिन हो जाता है । कहानी की 'विमला' जो 'वह' की देवराणी है, लाश को उठाने आये पुलिस से गरजती है -"इसे क्यों मारा । इसका कसूर क्या था ? हमें नियांब दिलाओ।"[1] वह ' घायल शेरनी फूलन देवी और झलकारी बाई का रूप' धारण कर लेती है । वह ठाकुर का 'गला मरोड' देती है और ठाकुर की रिवोल्वर से उसके सात कारिन्दों को ढेर बना देती है । विमला का यह संघर्ष दमित मन का विस्फोटनात्मक परिणाम है ।

सरकार द्वारा बनाई गयी विभिन्न योजनाएँ दलितोद्धार में बडी भूमिका निभाई है । छुआ-छूत तथा भेदभाव मिटाने में तथा दलितों को बराबरी का हक दिलाने केलिये संसद और विधान सभाएँ यानी संविधान में प्रावधान है । दलित अब थोडा बहुत शिक्षित भी होने लगे हैं। उच्चवर्ग के शोषण नीति के सम्मुख अब वे नतमस्त नहीं हैं । अडिग खडे होकर बदला लेने केलिये भी वे सक्षम हो गये हैं । यह अवश्य पुरोगामी रवैया है । दूसरी तरफ ज़मीन्दार लोग इस परिवर्तन से आतंकित हो गये हैं, जबकि अपनी सवर्णमानसिकता की पराजय उनके लिये सहनीय नहीं है । अपनी पैदाइशी हकों को मानवीयता के वास्ते इतनी आसानी से कैसे छोडा जायें? इसलिये उन्होंने अपना चाल बदला है । पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की 'प्रतिशोध' कहानी में ज़मीन्दारी ज़्यादतियों का भयावह चित्रण हुआ है-"पिछले साल अन्य सालों की तुलना में कुछ ज्यादा ही ज़्यादति सवर्णों द्वारा कॉसल गाँव के आदिवासी हरिजन परिवारों के साथ की गयी । लोगों के धैर्य तोडने के साथ-साथ सवर्णों के आतंक का भयाक्रांत व्यवहार

---

[1] आतंक, राजेश कुमार बौद्ध, दलित साहित्य 2002, पृ.317

टपरियों पर बरसा। ज्वार, मक्का, धान के खेतों में ज़बरिया ढोर चरा दिये गये। सोयाबीन की फ़सल जला दी गयी, गाँवों के कच्चे घरों को तोड दिया गया तो खेतों पर टपरियाँ भी जला दी गयी.....घूँटे से बन्धे जानवर छुटने केलिये छटपटाते वहीं ठेर हो गये।.......महिलाओं का मिमियाना आग की बढती लपेटों की खौफ से बन्द हो गया था। पीने के पानी के लाले पड गये थे, फिर आग बुझाने केलिये पानी कहाँ से लाते। सवर्णों के कई कुए पानी साराबोर थे, लेकिन उनकी जगत पर पैर रखना मौत का सीधा आलिंगन था।"[1] गाँव का एक लडका 'धावर्या' इस पैशाचिकवृत्ति का बदला लेता है। वह ठाकुरों के घरों में आग लगा देता है।

ज्यादातर ज़मीन्दार लोग दलित शोषण केलिए आक्रामक रवैया अपनाते हैं। लेकिन ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'पच्चीस चौका डेढ सौ' कहानी के चौधरी का अन्दाज़ अलग है। वह सुदीप के पिता की अज्ञता तथा अपने ऊपर उनके गहन विश्वास का गलत फायदा उठा लेता है। वह सुदीप के पिता की मदद कर अपनी ज़िम्मेदारी जताता है। उसकी पत्नी के इलाज केलिये सौ रुपया उधार देकर अपनी ईमानदारी दिखाता है। फिर पच्चीस चौका डेढ सौ का गलत पहाडा सुनाता है और सूद के डेढ सौ रुपयों में से बीस रुपया माफी कर सौ के बदले एक सौ तीस रुपया हडपता है। ऐसा चाल चलाता है जिससे न कभी उसकी इज्जत पर कलंक लगती है, न कभी उसका धन्धा गिरता है। चौधरी के पिछले पैंतीस साल के इस धोखा-धडी के सामने सुदीप का पिता हतप्रभ रह जाता है। वह बस इतना ही कह पाता है कि -"कीडे पडेंगे चौधरी....कोई पानी देनेवाला भी नहीं बचेगा।" [2]

यों यह बात साफ जाहिर है कि ज़मीन्दारी व्यवस्था ज्यादातर आतंकवादी है, कभी वह चालाकी भी अपनाती है। इन शोषण नीतियों के सम्मुख दलित कभी हतप्रभ होते हैं,

[1] प्रतिशोध, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ.107

[2] पच्चीस चौका डेढ सौ, ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित कहानी संचयन.सं.रमणिका गुप्ता, पृ.107

कभी ईंट का जवाब पत्थर से भी दे देते हैं। बरसों से वे ज़ुल्मों को सहते आये हैं लेकिन वे कतिपय सालों में अपनी प्रतिक्रिया संघर्ष के रूप में जाहिर भी करते हैं।

सवर्ण अधिकारियों के कुचक्र तथा दलितों के संघर्ष

ज़मीन्दारों की तुलना में सवर्ण अधिकारियों का शोषण ज्यादातर बौद्धिक स्तर पर है। सूरजपाल चौहन की 'साजिश' कहानी का बैंक मैनेजर राम साहाय इसकी ज्वलंत मिसाल है। ट्रैंस्पोर्ट के धन्धे केलिये लोण माँग के आये दलित युवक नत्थू को वह पिगरी लॉण में पटाता है, इसलिये कि उसका पुश्तैनी धन्धा सुवर पालना है, जो उसके लिये बहुत आसान है। दरअसल यह उसकी रहमदिली नहीं, बल्कि एक साजिश है, जिसके तहत दलितों की गुलामी का इरादा कायम है -"अगर ये अछूत अपना खानदानी धन्धा बन्द कर कोई नया धन्धा करने लगेंगे तो आनेवाली पीढियाँ हमारे घरों की गन्दगी कैसे साफ करेंगी।"[1]

नत्थू को वह उल्लू बनाता है। लेकिन गाँव में और भी कई है जो सचेत हैं। नत्थू की पत्नी शाँता समझदार है। वह गाँववलों को जुटाकर बैंक मैनेजर की 'भलाई की सोच' को चेतावनी देती है –"बस कीजिये मैनेजर साहब् .....अपनी भलाई की बात अब हम खुद सोच लेंगे। आप कष्ट मत कीजिये। सदियों से आप लोग सोचते रहे हैं हमारे लिये। अब आप आराम कीजिये। अपना नफा-नुक्सान हम खुद समझेंगे। गलती करके ही लोग सीखते हैं हमें गुमराह मत कीजिये। आप अपने बेटे को पिगरी का लॉण देकर प्रशिक्षित करें तो अच्छा होगा।"[2]शाँता की प्रतिक्र्या चेतना सम्पन्न है।

दयानन्द बटोही की 'सुरंग' कहानी में कथावाचक को पि.एच.डी केलिये भरती होने से

---

[1] साजिश,सूरजपाल चौहान,दलित कहानी संचयन,सं.रमणिका गुप्ता,पृ.68

[2] साजिश, सूरजपाल चौहान, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ.70

रोकी जाती है । वह योग्य है, फिर भी उसको हरिजन होने के नाते टाला जाता है । एक बार डॉ.विष्णु साफ-साफ बता देता है कि "जब तक में हूँ, हरिजन को रिसेर्च करने नहीं दूँगा।"[1] आखिरकार कथावाचक को यूनियान वालों की मदद लेनी पडती है । नतीजतन डॉ.विष्णु हार मानता है, कथावाचक की भरती हो जाती है । कहानी में नयी पीढी की संघर्ष चेतना विशेष उल्लेखनीय है, जाति-पाँत की भावना से मुक्त हैं। वे मानवता वादी हैं –"हम सब मानवतावादी हैं । अब पुरानी ढोंग नहीं चलेगा, हम सब एक हैं।"[2]

लेकिन नई पीढी को साथ देने में पुरानी पीढी अब भी दकियानूसी दिखाते हैं । कहने केलिये वे कहते हैं कि हम छुआ-छूत, जाति-पाँत को नहीं मानते हैं और नया फैशन ओढ लेते हैं, लेकिन भीतर ही भीतर मनुवादी संस्कार कायम है । जयप्रकाश करदम की 'नो बार' कहानी में इस विडम्बना का प्रस्तुतीकरण है । 'वाण्टेड सूटबिल ग्रूम.....कैस्ट नो बार' का विज्ञापन देखकर राजेश अपना 'बयॉडाटा' भेजता है । लडकीवालों की भावनाओं की मान्यता रखते हुए उसने अपने केस्ट के बारे में कुछ भी नहीं लिखा था । लडकी वालों को वह पसन्द आया । लडकी भी शादी केलिये राज़ी हुई । शादी पक्की हो गयी। हालांकि लडकी वालों की उसकी एस.सी.होने की खबर मिलती है तो सिक्का पलटती है -"आखिर नो बार का यह मतलब नहीं कि किसी चमार चूहडे के साथ.......।"[3] कहानी में समकालीन सवर्ण समाज की प्रगतिशील रवैयों पर व्यंग्य कसा गया है । लडकी का बाप कहताहै - देखिये राजेश जी हम बडे खुले विचार के अदमी हैं । जाति-पाँति, धर्म-संप्रदाय किसी प्रकार के बन्धन को हम

[1] सुरंग, दयानंत बटोही, दलित कहानीसंचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ.155
[2] सुरंग, दयानंत बटोही, दलित कहानीसंचयन, सं.रमणिका गुप्ता,पृ.156
[3] नो बार,जयप्रकाश कर्दम,दलित कहानी संचयन,सं.रमणिका गुप्ता,पृ.60

ाहीं मानते । ये सब बातें पिछडेपन का प्रतीक है । हमारी नज़र में लडका और लडकी एक ्रूसरे को अच्छी तरह देखें, बातचित करें और यदि वे दोनों एक दूसरे को पसन्द करते हैं, एक ्रूसरे से संतुष्ट होते हैं और उन्हें लगता है कि वे एक दूसरे के साथ 'एडजेस्ट' कर सकते हैं, ास यही काफी है । इसके अलावा सब चीज़ें गौण हैं।"[1] जबकि लडकी को ही आखिर अपने पेताको समझाना पडता है कि उसकी करनी वाकई नीरा ढोंग है – "मैं ने तो बस यही देखा के उसकी नीयत बहुत अच्छी है । उसे एटिकेट्स आती है, और उसमें कोई बुराई नहीं है, ्मोकिंग तक वह नहीं करता और फिर पापा हमारे 'एड' में पहले ही नो बार छपा था, ्सलिये उसके केस्ट के बारे में जानने की या इस और ध्यान देने की कोई तुक नहीं....जब ्म जाति-पाँति को मानते ही नहीं तो फिर वह किसी भी केस्ट का हो, उससे क्या फरक ाडता है ।"[2]

जयप्रकाश कर्दम की 'मोहरे' कहानी का सत्यप्रकाश काबिल अध्याप्क है । बच्चों की ागति केलिये जी-तोड मेहनत करने केलिये वह हर वक्त तैयार है । वह इस उम्मीद में ाढाता है कि बच्चे स्वयं कुछ कर दिखाने के काबिल बने । उस विद्यालय के ज्यादातर बच्चे ्लित परिवार के हैं, इस वजह सत्यप्रकाश उन्हें दिलो-जान से पढाता है । यदी पीरियड ्वलते रहने के दौरान कोई छात्र कक्षे के बाहर इधर-उधर घूमता हुआ दिखाई देता तो वह उसे पकडकर कक्षा में भेज देता । वह नहीं चाहता था कि कोई भी छात्र पढाई-लिखाई से ाचे या अपना समय बरबाद करे। यदी कोई भी छात्र प्यार से कहने या सम्झाने से नहीं ानता तो वह सख्ती से पेश आकर उसको डाँट भी देता था ।

वही,53

[2] नो बार, जयप्रकाश कर्दम, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ.60

सत्यप्रकाश के इस नेकदिली से सवर्ण अध्यापक नाराज़ थे उनकी बढती प्रतिष्ठा के सम्मुख रामदेव त्रिपाठी नामक अध्यापक दकियानूसी करता है । एक दिन सत्यप्रकश द्वारा एक बच्चा डाँटा जाता है । मौका पाकर रामदेव त्रिपाठी ढोंग रचता है । वह लडके के माँ-बाप को बहकाता है, जो निरे गँवार थे । वे सत्यप्रकाश के खिलाफ शिकायत करते हैं और उसका तबादला होता है । इस तरह दलितों के खिलफ दलितों का ही इसतेमाल हो जाता है । सवर्ण की साजिश को परदाफाश करके दलितों को सचेत करने के इरादे में यह कहानी रची गयी है ।

दलित कहानियाँ सवर्ण अधिकारियों के कुचालों के प्रति दलितों को चेतावनी देती हैं और उनके खिलाफ लडने की चेतना प्रदान करती हैं।

ब्राह्मण वर्चस्व के खिलाफ दलितों का संघर्ष

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'ब्रह्मास्त्र' कहानी का पंडित एक दलित को नैथानियों की बारात में आने से रोकने के लिये हिकमत चलाता है । अपनी ज़िद को सही साबित कराने पंडित एक दफा शादी का बहिष्कार करने का ऐलान कर देता है -"आप को लगता है कि उसे ले जाना उचित और ज़रूरी है तो ले जाइये । लेकिन उस स्थिति में मैं नहीं जाऊँगा......मुझे क्षमा कीजिये ....मैं यहीं से लौट जाता हूँ...वह डोम पढा-लिखा हैं उसी से शादी के संस्कार भी करा लेना।"[1] इस ब्रह्मास्त्र के सामने परिवारवाले अवाक खडे होते हैं । दलित के बिना भी बारात निकल सकती है लेकिन पंडित के बिना शादी कौन कराएगा । अपने सगे मित्र के माँ-बाप की परेशानी देखकर कंवल बारात से स्वयं अलग होता है ।

राम निहोर विमल की 'अब नहीं नाचब' कहानी का पंडित विद्यासागर चतुरवेदी भी कुछ इस तरह की शोषण नीति अपनाता है । बरक्स इधर उसका निशान चूकता ही नहीं भस्मासुर को दिया गया वर समान अपने ही माथे का बला साबित होता है । मंगरू भगत

[1] ब्रह्मास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, वसुधा.58, पृ.234

अपने घर आये समधी की खातिरदारी केलिये अपने मालिक बाबुसाहब शेर सिंह के यहाँ थोडा गेहूँ मांगने जाता है । उसकी बदकिसमती से उस समय ठाकुर के यहाँ पं.विद्यासागर चतुरवेदी पधारे हुए थे, जो दलितों की प्रगति से सख्त नफरत करता था । वह टाँग अडाता है-"बाबु साहब हमारे पूर्वजों ने वर्ण व्यवस्था, छुआ-छूत और ऊँच-नीच की बातें खूब सोच समझकर ही बनाई हैं । इन चमारों को आप ठिकाने नहीं जानते ...मेहमानों को खिलाने केलिये आज गेहूँ मांगने आया है, कल गाय का घी लेने आ जायेगा।........चमारों की इज्जत जाने से गाँव की इज्जत नहीं जाती और जिस गाँव में चमारों की इज्जत हो, उसमें फिर हम लोगों की इज्जत नहीं हो सकती । यही अधर्म है, यही व्यवस्था का विरोध है और यहीं अनीति है।....चमारों शूद्रों और हम लोगों के बीच खाद्य-अखाद्य का भेद तो बनाये रहना ही होग।"[1]बेचारा बाबु साहब, जो सचमुच गेहूँ देने को राज़ी था, पंडित की बातों में फँसता है । दोनों मिलकर एक कहानी गढ लेते हैं कि अचानक गेहूँ देवता समान बोलने लगा कि वह स्वयं चमारों के घर जाना नहीं चाहती । करोडों देवी-देवताओं की लम्बी कतार में पं.विद्या सागर चतुर वेदी की अपनी देन-गेहूँ देवता । अब गेहूँ देवता नहीं आना चाहती हैं तो कौन क्या कर सकता है । बेचारा मंगरू सूनी हाथ लौटता है । लेकिन ईण्ट का जवाब पत्थर से देना तो कोई इन दलित किसानों से सीखे । 'गेहूँ देवता' अगर बोल सकती है, तो 'हल देवता' क्यों नहीं बोल सकती ? वे भी गढ लेते हैं अपनी कहानी जिसमें हल देवता भी बोलने लगती है । कहानी के अनुसार हल देवता बोलती है कि वह दलितों के हाथों से छुए जाना नहीं पसन्द करती हैं । खोदा तो पहाड था पंडित ने, पर निकली तो चुहिया ही । अब हल चलाये बिना खेती कैसे सम्भव है । आखिर बाबू साहब को अपनी पगडी उतार कर मंगरू के पैरों तले रखना पडता है उसे खेती केलिये राज़ी करने केलिये ।

[1] अब नहीं नाचब, राम निहोर विमल, दलित साहित्य 2002, पृ.247

रत्न कुमार साँभरिया की 'डंक' का पूजारी अपनी मनुवादी परम्परा को कायम रखने के लिये युवा दलित खेरा का कमर तक तोड देता है । पूजारी भक्त और भगवान के बीच का संवाददाता है । भक्तों को भगवान से मिलाना उनका काम है । लेकिन 'सताना पूजारी' का भगवान तो स्वयं लक्ष्मी तथा अपनी प्रतिष्ठा ही हैं । वह मनु को ही मानता है -"मनु की उक्ति है, शूद्र का धन संचय पीडाएँ पहूँचाता है । वक्त की शेर खिसक गयी, नहीं तो इस कुपात्र का सारा पैसा हडपकर उस के कानों में सीसा भरकर गाँव से खदेड देता।"[1] सतना की बेटी की शादी के लिये खेरा ने ही धन उधार दिया था वह भी बिन ब्याज । लेकिन सतना के सम्मुख खेरा की रहमदिली कुछ भी मायने नहीं रखती । उसको ऐसा लगता है मानो वह उधार कहाँ 'जूतिये में खीर ओट ली हो' । सतना को देखकर खेरा ने अपनी कुरसी नहीं छोडी थी । जैसे मनुस्मृति में लिखा गया है इतनी बडी जुर्रत दिखानेवाले शूद्र की कमर दगवा देनी चाहिये । सतना रात के अन्धेरे में खेरा का कमर तोडकर अपने धर्म की रक्षा करता है । ब्राह्मण की धर्मान्धता पर यह कहानी अपना पंचा मारती है ।

इस तरह दलित कहानियों में ब्राह्मण कभी देवता नहीं बल्कि खूँखार दैत्य है । ब्राह्मणों की शोषण नीति घृणा से लैस है तथा छल-कपट की सभी मायनों को तोडनेवाली है । इसके खिलाफ दलित अवश्य संघर्षरत है, लेकिन न अमानवीय है, न बेरहम ।

राजनैतिक शोषण के खिलाफ दलितों का संघर्ष

समाज ही नेता को जन्म देता है । समाज में ही उसकी अस्मिता है । यह सच है कि काबिल नेता के विचारों के अनुसार समाज का परिवर्तन होता है । लेकिन वर्तमान युग में ऐसे नेता नदारद हैं । आज ऐसे ही नेता मयस्सर है कि जो समाज के सामने अपनी छवि बनाये रखने केलिये धोखा-धडी की राजनीति को अपनाता है । कई ढोंग रच देते हैं जिसकी

---

[1] डंक, रत्नकुमार साँभरिया, वसुधा 58, पृ 226

वजह समाज का चाहे जितनी भी नुकसान हो जाये, पर खुद को कोई दोष न आये । अनेक दलित कहानियाँ इस राजनीतिक ढोंग का पर्दाफाश करती है।

सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया' कहानी में एक युवा नेता समाज में अपनी प्रतिष्ठा कायम करने के लिये एक दलित कन्या के साथ शादी करना चाहता है । उसकी बस एक ही शर्त है कि लडकी कम-से-कम मेट्रिक पास हो । गाँव में सिलिया पर दबाव पडता है, चूँकि वही इलाके की एकमात्र दलित लडकी है जिसने मेट्रिक पास की है । लेकिन सिलिया प्रस्ताव को टालती है -"हम क्या इतने भी लाचार हैं, आत्मसम्मान रहित हैं, हमारा अपना भी तो कुछ अहंभाव हैं । उन्हें हमारी ज़रूरत है, हमें उनकी नहीं । उनके भरोसे क्यों रहें । पढाई करूँगी, पढती रहूँगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बडा बनाऊँगी। उन सभी परम्पराओं के कारणों का पता लगाऊँगी जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है।"[1] शिक्षा ने उसे अपनी पहचान दिला दी है ।

पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की 'प्रतिशोध' कहानी का सरपंच बडा चालाक है । हर साल दलित बस्ती में सवर्णों द्वारा आग लगा दी जाती है । लेकिन इलज़ाम अक्सर किसी दलित के ऊपर ही लगती है और फायदा नेताओं को मिलती है । पिछले साल की सरकारी सहायता, नये चद्दरों और बँस बलियों से सरपंच के ढोर बाँधने का बडे कच्चे मकान के रूप में खडा हो गया था । इस बार भी सरपंच वही चाल चलाता है । गाँव के ही दो मज़दूरों पर आग लगाने का इल्ज़ाम लगाकर वह पैसा हडपना चाहता है -"देवा और छीतर्या तुम दोनों इस गुनाह को कुबूल कर लो, अन्यथा पुलिस तुम्हारी चमडी उधेड देगी । तुम्हीं लोगों ने उस कुम्हार से बदला लेने केलिये उसके घर पर आग लगाई । वहीं आग तुम्हारी झोंपडियों और टपरियों को

---

[1] सिलिया,सुशीला टाकभौरे,दलित कहानी संचयन,पृ64

भी राख बना गयी।"[1] गाँव के ज्यादातर मासूम लोग सरपंच की बातों को सही मानकर अपने ही भाइयों को बलि का बकरा बना देते हैं, जबकि गाँव का एक जोशीला युवक सरपंच तथा अन्य सवर्णों की बस्तियों पर भी आग लगा देता है।

गौरीशंकर नागदंश की 'जंगल में आग' कहानी में मंत्री जगन लाल और नेता निर्मल लाल का चित्रण है। निर्मल 'फूल तोडनी देवी' को, जो पनचक्की 'सुरक्षित विधान सभा के विधायिका के रूप' में चुनी गयी है, पाट्ना ले जाता है और उसे बेहोश कराके उसकी इज्जत लूट लेता है और इस अधिकार से ज़बरन उसका पति बन जाता है। 'उसके सामने बस हज़ार रुपया महीने कमाने वाली विधायिका घूमने लगी' थी। उसके सामने फुलतोडनी देवी चुप होती है, इसलिये कि वह अब उसका पति बन गया है। लेकिन अपनी बहन समान बसुमतिया का मंत्री जगन्नाथ जब बलात्कार करता है, उसका विद्रोह उस हद तक अग्रसरहोती है कि वह मंत्री की जान लेने में भी हिचकती नहीं।

संक्षेप में दलित कहानियों में नेताओं की अवसरवादिता, छल-कपट की राजनीति के कई उदाहरण मौजूद हैं। ज्यादातर दलित इस कुचाल को समझने केलिये तथा उसका प्रतिरोध करने केलिये सक्षम है।

सजातीय शोषण का चित्रण

हकीकत है कि दलित समाज सजातीय शोषण का भी शिकार है। सदियों की गुलामी उनके भीतर ऐसी एक मानसिकता पैदा की है, मानो वे भी गुलामी करने के आमादा हैं। आरक्षण की सुविधा से मिली प्रतिष्ठा तथा ओहदाओं की वजह दलित कभी सवर्णों की तरह अपने भाइयों के साथ पेश आते हैं। डॉ.उमेश कुमार सिंह की 'माफी' कहानी का कप्तान

[1] प्रतिशोध, पुरुशोत्तम सत्यप्रेमी, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता

रघुनाथ का ऐसा ही चित्रण हुआ है । उसके सोचने के अन्दाज़ पर कहानीकार लिखते हैं- "कभी उनके गाँव से कोई भूला-भटका आदमी लोगों के ज़ुल्मों से तंग आकर उनके पास सिफारिश केलिये आ जाता तो वह उसे अपमानित करने, ताने उलाहने केलिये पूरा समल निकाल लेते थे।"[1] गाँव से उसका एक दूर का रिश्तेदार मदद माँगने आता है । वह उसकी बेइज्ती करके उसे लौटाता है । इससे सदमा खाकर रघुनाथ का पिता मरता है । गाँववालों को बदला लेने का मौका मिलता है। लेकिन हर कोई रघुनाथ जैसा नहीं होता। गाँववाले ऐसे नहीं करते बल्कि रघुनाथ के इंतज़ार में अग्निसंस्कार की तैयारियाँ करते हैं । उसके आने पर उसे प्यार से समझाने लगते हैं- "बेटा तुम कल भी हमारे थे और आज भी हमारे ही हो । लाख पूत कपूत हो जाये परंतु बाप के लिये पुत्र पराया नहीं होता।"[2] बस्तिवालों के प्यार के सम्मुख उसका सिर झुकता है और वह माफी माँगता है।

सत्यप्रकाश की 'दलित ब्रह्मण' कहानी का कथ्य 'माफी' से मिलता जुलता है । विजय शंकर कुरील भारत सरकार उच्च अधिकारी है । अपने दलितत्व की वजह ही उसे वह नौकरी मिली है । लेकिन वह मौकापरस्त निकलता है । वह डी.पी.सी में एस.सी.एस.टी.का सदस्य है । लेकिन कभी मीटिंग में नहीं जाता । फाइल को अपने घर बुलाता है और उसे ले आनेवाले सवर्ण को निस्तेज कराके, उसका मज़ाक उठाकर दो चार घंटों के बाद उसे बिना पलट के देखे नीचे हस्ताक्षर किये भेज देता है । लेकिन उसका मित्र शिवदत्त जो स्वयं एक दलित है, उसे सुधारने का प्रयास करता है । "हमें अपने सामाजिक दायित्वों को कदापि नहीं भूलना चाहिये । उसके हितों की रक्षा केलिये कटीबध होनी चाहिये ।......हम ब्राह्मणों या दूसरे सवर्णों की आलोचना और शिकायत कर लेते थे, उन्हें कोस लेते थे कि वे हमारे खिलाफ

---

[1] माफी, डॉ.उमेश कुमार सिंह, वसुधा 58, पृ.215

[2] वही, पृ.220

अन्याय कर रहे हैं । इसलिये हमें हर क्षेत्र में प्रतिनिधित्व चाहिये । अब चूँकि कुरील साहब भी दलित है, वह दलितों का अहित कर रहा है।"[1] इधर एक दलित खुद दलितों का अहित करता है और दूसरा दलित उसकी गलती सुधारने की कोशिश करता है तथा उसे चेतावनी देता है।

दलित समाज के भीतर ऐसे अनेक अयाचित धार्मिक कुरीतियों का प्रचलन है, जिनके तहत कोई न कोई दलित का ही शोषण होता है । सूरजपाल चौहान की 'बस्ति के लोग' कहानी में इस तरह की शोषण नीती का चित्रण है । नन्दकिशोर की बस्ती के लोग उसके पिता के देहसंस्कार से विमुख हो बैठे हैं । वजह यह है कि नन्दकिशोर ने गाँववालों को मृतकभोज नहीं दिया । पिता के देहसंस्कार के बाद नन्दकिशोर का भाई गाँववालों को मनाता है । वह ढाई मन के सुअर की बलि चढाकर उसके माँस की दावत देता है और दारू पिलाता है । दावत से खुश होकर नन्दकिशोर का चाचा पूरी कहानी का अंत एक 'प्रेत नाटक' से करता है । वह अपने ऊपर सिब्बू भगत (नन्द किशोर का पिता) के प्रेत के आने का ढोंग रचता है और नन्दकिशोर को खूब गाली गलौज झोंकता है -"नालायक मेरे मरने पर तूने बस्तिवालों को दारू नहीं पिलाई, इसलिये बस्तिवालों ने मुझे कन्धा नहीं दिया......तू मेरा पूत नहीं कपूत है चल हट मेरे नज़रों के सामने से।"[2] इस तरह भर-पेट खाने की लालसा में दलित समाज असहयोग तथा छल-कपट की नीति अपना लेता है, जो बिलकुल शर्मनाक कदम है।

सूरजपाल चौहान की 'कारज' कहानी में भी समान सन्दर्भ मयस्सर है । मगन लाल कई सालो से शहर में नौकरी कर रहा था । वह अपनी कमाई से गाँव का अपना घर पक्का

---

[1] दलित ब्राह्मण, सत्यप्रकाश, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ.158

[2] बस्ति के लोग, सूरजपाल चौहान, वसुधा58, पृ.243

बनना चाहता था । इस उम्मीद में वह गाँव लौट आया है । लेकिन गाँववाले उसकी चाहत पर रोडे अटकाते हैं । उनकी राय में मगनलाल को तीन साल पहले मरे अपने पिता का कारज कराना चाहिये । कारज का मतलब है, सुवर की बलि, दारू-दावत, यानी ढेर सारे पैसे का खर्चा । फिर मकान का बनना नादारद । गाँववालों को उससे ज्यादा दावत की फिक्र है । वे कहते हैं -"मगना बावरो मत बने, उलटी गंगा मत बहा, बरसों से चले आ रहे रीति रिवाज़ को ताक पर मत धर.....पहले अपने बाप की चिता के आग को ठंडा करवे की सोच जासे वाकि आत्मा को शाँति मिल सके।"[1] वह गाँववालों को समझाने की कोशिश करता है । लेकिन अज्ञान के अन्धकूप में जुगनू की रोशनी क्या भूमिका अदा कर सकती है । उसे राज़ी होना पडा कि गाँव में रहना है तो वहाँ की रीति रिवाज़ों को भी मानना पडेगा, आखिर जल में रहकर मगर से कोई कैसे बैर रख सकता है । वह शहर लौट जाता है ।

गौरी शंकर नागदंश की 'जंगल में आग' कहानी की फुलतोडनी देवी प्रेमी के साथ भाग गयी थी। उसकी वापसी पर उसे दुबारा कुँवारी मानने केलिये 'चूल्हिया-नेवाड' (एक प्रथा जिसमें किसी ग्रामीण के यहाँ चूल्हा न जले और सबका भोजन उक्त कार्यक्रम में ही हो ।) भात का प्रस्ताव रखते हैं । दावत देने पर फुलतोडनी को दुबारा कुँवारी माना जाता है । काश वेश्याओं के पास भी इतना पैसा जमा होता कि हर रोज़ वे चूल्हिया नेवाड कराएँ ! दावत की लालसा में दलितों द्वारा अपने ही भाई-बहनों का शोषण होता रहता है ।

इस तरह दलित कहानियों में सजातीय शोषण के कई दस्तावेज़ विद्यमान है । इनमें कहीं दलित अपने दलित कहे जाने की लाजवश, कभी सवर्णो से सीखी दमन नीति की बतौर अपने लोगों का शोषण करते हैं तो कभी रूढियों पर गहन आस्था की वजह तथा भर-पेट खाने की लालसा से सजातीयों का शोषण करते रहते हैं ।

---

[1] कारज , सूरजपाल चौहान, दलित सहित्य 2002, पृ.310

आर्थिक स्तर पर दलितों के ऊपर ज़्यादती एवं उनकी संघर्ष चेतना

वर्तमान अर्थकेन्द्रित व्यवस्था में जीवनयापन केलिये अर्थोपार्जन मानव की अनिवार्य ज़रूरत है। यह प्रत्येक ज़िन्दा व्यक्ति का अधिकार है । हालांकि किसी के पास ज़रूरत से ज्यादा अर्थ का केन्द्रीकरण सामाजिक संतुलन को बिगाड देता है । अर्थ के प्रति यह अदम्य लालसा दूसरों का हक छीनने केलिये मानव को उकसाता है । दलितों पर ज़्यादतियों के तहत उच्चवर्गीय दमन की राजनीति की जितनी भूमिका रहती है, उतनी आर्थिक पहलू की भी । धार्मिक शोषण के तहत भी यह यह आर्थिक नीति कार्यरत है । दलित कहानियों में इसके कई निदर्शन दृष्टिगोचर है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'पच्चीस चौका डेढ सौ' कहानी का चौधरी उपर्योक्त अर्थनीति का बडा समर्थक है । वह चालाक है । आर्थिक शोषण केलिये न तो वह किसी की पिटाई करता है, न आतंक का सहारा लेता है । वह बस दलितमन की अज्ञता तथा भोलेपन का फायदा उठाता है और इतनी चालाकी से की ऊँगलियों के बीच से धन का रिसना खुद देनेवाला भी नही पहचान पाता है । सुदीप का पिता पिछले पैंतीस सालों से चौधरी के यहाँ अपने सौ रुपये का कर्ज चुकाता आ रहा है । कर्ज उसने अपनी बीवी की इलाज बतौर लिया था । मौका पाकर चौधरी ने अपना चाल चलाया था "मैं ने तेरे बुरे बखत में मदद करी तो तू ईमानदारी से सारा पैसा चुका देना । सौ रुपये पर हर महीने पच्चीस रुपये ब्याज के बनते हैं । चार महीने हो गये हैं। ब्याज के हो गये हैं पच्चीस चौका डेढ सौ । तू अपना आदमी है । तेरे से ज़्यादा क्या लेगा । डेढ सौ में से बीस रुपया कम कर देना । बीस रुपया तुझे छोड दिये । बचे एक सौ तीस । चार महीने का ब्याज एक सौ तीस अभी दे । बाकी रहा मूल जिब होगा तब दे देना, महीने के महीने ब्याज देते रहणा।"[1]इस तरह पच्चीस चौका डेढ सौ का गलत

---

[1] पच्चीस चौका डेढ सौ, ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका, गुप्ता, पृ.24

पहाडा बताकर चौधरी आजीवन सुदीप के पिता का शोषण करता रहता है । भोलेभाले निरक्षर किसान का तो क्या, काला अक्षर भैंस बराबर । और चौधरी का तो आम के आम गुढली के दाम ।

लेकिन किसान का बेटा शहर जाकर पढता है और अपने पिता की गलती सुधारता है । सच जानकर वह बूढा बस इतना ही कह पाता है कि "कीडे पडेंगे चौधरी, कोई पानी देनेवाला भी नही बचेगा।"[1] बरसों की आस्था को टूटते पाकर उस बेचारे के मूँह से बस यही वेदन भरी चीख ही निकलती है । लेकिन यह चीख सचमुच संघर्ष है, जो अपनी जगह चेतना संपन्न हैं ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की'रिहाई' कहानी में लाला रामसुखलाल नामक लालाची आदमी का चित्रण हुआ है, जिसने अपने 'किले' समान गोदाम में मिट्ठन तथा बीवी बच्चा सहित उसके पूरे परिवार को गोदाम की देखरेख के लिये उम्र कैद गुलाम बनाकर रखा है । "सुगनी और मिट्ठन कई बरसों से इसी गोदाम में बन्द है । राशन का इंतज़ाम लाला खुद करता था उनके लिये । दिन रात गोदाम में रहकर गोदाम की रखवाली से लेकर रख-रखाव तक उनकी ज़िम्मेदारी थी । बाहर का ताला लाला के आने पर ही खुलता था ।..........गोदाम के इर्द-गिर्द ही उनकी दुनिया थी।"[2] काम के बदले उन्हें केवल दाल-रोटी ही मयस्सर है । एक बार लाला हद से गुज़र जाता है । तेज़ बुखार से तडपते मिट्ठन से नब्बे किलो के बोरों को ट्रक से उतरवाता है । बोरे के नीचे आकर मिट्ठन की रीढ की हड्डी टूटती है । लाला उसे वैसा ही छोडता है और गोदाम को ताला लगाकर चला जाता है । दर्द में मिट्ठन की मौत होती है । बन्द दर्वाज़े पर पीट-पीट कर सुगनी भी मरती है । लेकिन उनका बेटा छुटकू

---

[1] वही,पृ.28

[2] रिहाई, ओमप्रकाश वाल्मीकि, हंस, आगस्त 2006, पृ.83

बदला लेता है । वह बच्चा है, इसलिये सीधे अन्याय को देखता है और समझता है । वह पूरे गोदाम को आग लगा देता है और लाला के माथे पर पत्थर दे मारकर वहाँ से भाग निकलता है । उसकी प्रतिक्रिया में सहजता है ।

'बस्ति के लोग' कहानी में दलितों द्वारा दलितों के आर्थिक शोषण का चित्रण है । गाँव में एक ऐसा रिवाज़ है कि किसी की मौत पर उसके नाम पर एक सुवर की बलि चढानी चाहिये और उसके माँस से बस्तिवालों को दारू-दावत दिलाना चाहिये तब ही मरे हुए की आत्मा को मुक्ति मिलेगी । दावत के बात 'जगराते' का आयोजन होता है । बनिस्बत किसी दलित समुदय के कलाकारों के संगीत सभा का कार्यक्रम होता है । बस्ति मे घटित प्रत्येक मौत के साथ आर्थिक शोषण के कई आयाम जुडे हुए हैं । हालांकि नन्दू इन कुप्रथाओं को नहीं मानता । वह दारू-दावत तथा जगराते के आयोजन को नकारता है । प्रतिक्रिया माफिक गाँववाले उसके पिता की अर्थि को कन्धा नहीं देते ।

नन्दू का भाई भी पढा लिखा है । मगर वह अलग ढंग से सोचता है -"बस्ती में रहकर लोगों की बातों को माननी ही होगी, तूने उनकी बात न मानकर रार मोल ली है ....तू तो नोएडा में रहने लगा है, इनके साथ बस्ती में तो मुझे रहना है।"[1] वह बस्तीवालो के खिलाफ लड नहीं सकता, इसलिये उनका साथ देता है, ताकि अपनी ज़िन्दगी में रार न मोल लें । बस्ती के लोग इस आर्थिक शोषण से चाहे अनभिज्ञ हो, शोषण का हिस्सा बन जाते हैं तथा भर-पेट खाने का मौका हाथ से छूटने नहीं देते हैं । एक तरफ पढा-लिखा नन्दू अपनी जाती के आर्थिक शोषण नीति के खिलाफ़ लडता है, दूसरी तरफ उसका भाई शोषण का साथ देने में मजबूर हो जाता है । दलित संघर्ष की यह एक विडंबना है ।

---

[1] बस्ती के लोग, सूरजपाल चौहान, वसुधा 58, पृ.241

'कारज' कहानी में भी सजातीयों के शोषण का चित्रण है । कहानी के एक 'परसादी' में इतना कालिक परिवर्तन आ गया है कि शूद्र के घर से चाय पीने तक सोच पा रहा है जबकि डर इस बात का है कि उसे चाय पीते हुए अगर कोई देख ले तो बखेडा होगा-"उसे डर था कि कोई उसके आँगन में बैठे चाय पीता न देख ले ।"[1] इधर 'परसादी' केवल अपनों से ही नहीं, बल्कि दलित समाज से भी डरने लगता है, जो अपने रीति रिवाज़ कायम रखना चाहते हैं या अपनी अलग संस्कृति बनाये रखना चाहते हैं । कहानी में मगनलाल पर उसके पिता के कारज कराने का दबाव पडता है, जिसके गुज़रे तीन साल हुए हैं । उसकी माँ भी उसे उकसाती रहती है-"बेटे,गाँव में रहना है तो मोहल्ले के लोगों की माननी पडेगी और कारज करना पडेगा।"[2] मगनलाल की माँ की हामी देखकर 'मुहल्ले के लोगों के चेहरों पर कुटिल मुस्कान तैरती है' मानो वे भी कारज को शोषण केलिये बनाये गये झूठे नाटक समझते हो ।

दलित कहानियों को आर्थिक शोषण के कई आयाम विद्यमान है । अनेक कहानियों में दलित अपनी अज्ञता तथा भोलेपन की वजह आर्थिक शोषण से अनजान रहते हैं, तो कई कहानियाँ दारू-दावत की लालसा में सजातीय शोषण के चित्रण के लिये आमादा होती हैं । कारज, बस्ती के लोग जैसी कहानियाँ ऐसी संवेदना प्रदान करती हैं मानो दलित भी दिलो-जान से अपनी रीति रिवाज़ों को कायम रखना चाहते हैं जिनमें आर्थिक शोषण के कई आयाम जुडे हुए हैं ।

---

[1] कारज, सूरजपाल चौहान, दलित साहित्य 2006, पृ.307

[2] कारज, सूरजपाल चौहान, दलित साहित्य 2006, पृ.309

शारीरिक व मानसिक तौर पर शोषण तथा दलितों का संघर्ष

दूसरों पर अपना अधिकार जमाए रखने का आसान तरीका उनके मन में अपने प्रति सदा आतंक बनाये रखना है । बीच बीच अपनी गरिमा तथा उनकी नीचता का एहसास दिलाते रहना चाहिये । मौके-बेमौके पर उनकी हीनग्रंथी की भावना को उकसाते रहना चाहिये, चाहे वह शारीरिक क्लिष्टताओं के ज़रिये ही क्यों न हो । दलित कहानियों में इस तरह के शोषण के कई मिसाल मौजूद हैं।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'रिहाई' कहानी का लाला रामसुखलाल उपर्योक्त आतंक नीती का उन्नायक है । वह अपने आर्थिक लाभ केलिये मिट्ठन के पूरे परिवार को अपने गोदाम में गुलाम बनाके पाल रखा है कोई पाल्तू कुत्ते के माफिक । गोदाम को ताला लगाकर वह चला जाता था । उस गोदाम के इर्द-गिर्द ही मिट्ठन के परिवार की ज़िन्दगी थी । काम के बदले दाल-रोटी मानो मुफ़्त हो । लाला का आतंक उनके मन में इतना गहरा था कि गोदाम के बाहर जाने की चाहत रखकर भी वे पूछ नहीं पाते थे। काम करते करने वहीं कारागार उनके शंशानघाट बनती है । लेक़िन मिट्ठन का बेटा बदला लेता है । वह सारे गोदाम पर आग लग देता है और लाला के माथे पर पत्थर मार कर भाग निकलता है । उस छोटे का फेंका गया वह पत्थर केवल लाला के ही माथे पर नहीं पडता बल्कि पीढी दर पीढी में व्याप्त समूचे दरिन्दे शोषको के ताज पर लगी गहरी चोट है । वह पत्थर समूचे दलित समाज की असहमती तथा प्रतिरोध की सहज अभिव्यक्ति है । वह एक युगांतकारी परिवर्तन बनती है ।

अपने ज़मीन की जोताई बुनाई केलिये ज़मीन्दारों ने बन्धुआ मज़्दूरों की परंपरा बनाये रखी है । उस प्रथा के तहत किसान को अपने मालिक की ज़मीन पर वक्त-बे-वक्त काम करना पडता है । बदले में बहुत कम ही मज़ूरी, वह भी मक्का, रोटी, दाल बतौर । राम निहोर विमल की 'अब नहीं नाचब' कहानी में ज़मीन्दारों की लूट-मार के खिलाफ दलित उचित प्रतिक्रिया दर्ज करते हैं । घर आये समधि की खातिर मंगरू भगत अपने मालिक से थोडा गेहूँ उधार माँगता है ।

आते ही उसे बेगारी करना पडता है-"कन्हई पिछवाडे की नाली जाम हो गयी है । उसे ज़रा ठीक कर दे तो।"[1] पर बेगारी के बावजूद उसे खाली हाथ लौटना पडता है । पर मगन अपने शोषण को समझ सकता है-"अपनी हाड-तोड मेहनत से सारी चीज़ें हम लोग पैदा करते हैं, फसलों की रखवाली हम करते हैं, कटाई, दौरी-मिसिया, ओसाई अदि हम करते हैं , अनाज के ढेर हम करते हैं और उनके कुठिलों तक में हम पहूँचाते हैं । जब कुठिलों को अनाज से हम भर देते हैं, तो वे लोग स्वाँग बनाते हैं कि गेहूँ देवता शूद्र के घर नहीं जाएँगी । ......हम लोगों को क्या ? अपना हाथ जगन्नाथ । मेहनत के बल पर जी लेंगे ।गाँव में नहीं रहेंगे, जंगल पकड लेंगे । वे लोग अपनी सोचें ।....."[2] दलितों को अपनी भूमिका मालूम हैं । वे चेतना सम्पन्न हैं । दलित अब उल्टी गंगा बहा सकते हैं ।

कहानी के ज़मीन्दार और पण्डित जी ने निशाना मोर पर लगाया था लेकिन चोट लगी शेर को। लेकिन बी.एल.नायर की 'चतुरी चमार की चाट' कहानी में 'दलित' हालत का नकारात्मक चित्रण भी मौजूद है । चन्दन चौबे अपनी चाट के करोबार में मदद लेने के लिये गाँव से चतुरी चमर को शहर बुलाता है । ढलिया में चाट बेचने का काम चतुरी को सौंपा जाता है । लेकिन ढलिया में बिक्रेता का नाम चन्दन चौबे लिखा गया है,जबकि बिक्रेता चतुरी चमार है । कोई सवर्ण चकमा खाकर चाट खा गया तो उसका धर्म उजड सकता हैं । बखेडा हो जायेगा । चतुरी पाँच रुपया देकर बिक्रेता की जगह अपना नाम लिखा देता है-चतुरी चमार की चाट,बिक्रेता चतुरी चमार । वह बेचारा क्या जाने कि गंगा गया गंगा राम और जमना गया जम्ना दास ही शहर का रवैया है । वह बिक्री के लिये तिवारियन टोला

---

[1] अब नहीं नाचब, रामनिहोर विमल, दलित साहित्य 2002, पृ.250

[2] अब नहीं नाचब, रामनिहोर विमल, दलित साहित्य 2002, पृ.257

चला जाता है । लेकिन चतुरी की हीनता बोध एवं भोलेपन को उधर कौन कदर रखता है, वह भगा दिया जाता है ।

सवर्ण शोषण का भीषण दौर अक्सर नारी-बदन की माँसलता से होकर गुज़रती है । दलित औरतों को अक्सर इस सडन की बदबू को अपने बदन पर ढोना पडता है । कई जगहों में डोला प्रथाएँ कायम रखी गयी है, जिनके तहत नव ब्याही औरत को अपनी पहली रात ठाकुर के घर में गुज़ारनी पडती है । ज़मीन्दार का मानो दलित औरतें नाजायज पत्नियाँ हैं या वेश्यायें हैं जिनकी जब चाहे जहाँ चाहे बुलावा भेज सकते हैं । लेकिन दलित औरतें इस नृशंसता को उचित जवाब देने लगी है, जो दलित कहानियों में साफ विद्यमान है ।

कुसुम वियोगी की 'अंतिम बयान' कहानी में गाँव के मुखिया का लडका अतरो के साथ यौन संबन्ध रखना चाहता है । लेकिन अतरो उसके पुरुषत्व को ही काट फेंकती है । उसका चरित्र अनोखा है । वह दूसरी औरतों से वाकई अलग है । उसकी सखियाँ उसे सलाह देती हैं कि उसे ठाकुर के बेटे के सामने स्वयं 'खोलके रखना' चाहिये –"तू खोलकर रखना हराम्खोर के आगे।"[1]इस कथन में जितना घुटन तथा घृणा भरी हुई है, उतना मजबूरी और आदी मन का सूनापन भी । इज्जत पर वार उनके लिये कोई नई घटना कदापि नहीं । उन्हें एहसास है कि किसी न किसी दिन उस सदमे होकर गुज़रना ही पडेगा है । लेकिन अतरो वाकई अलग है । अपने बदन पर गैर का अधिकार वह नहीं मानती, कदापि नहीं । इसलिये वह कडी प्रतिक्रिया अदा करती है ।

मोहन दास नैमिशराय की 'अपना गाँव' में भी समान सन्दर्भ है, लेकिन अतरो की तरह आक्रामकता अपनाने में कबूतरी पराजित होती है । उसे पूरे गाँव में नंगा घूमना पडता है और इस सदमे के बाद गाँव में एक अजीब सी मायूसी छा जाती है, अपने सारे कोशिशों

---

[1] अंतिम बयान, कुसुम वियोगी, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ.136

को असफल पाकर वे अपने लिये अलग सामाज गढने की सोचते हैं। उनका विरोध समस्या से ज्यादा समाज से है। फिर भी चेतना सकारात्मक है।

दलितत्व की हीनग्रंथी की प्रखरता तब दिखती है जब दलित शोषण की शिकार को ही कोसने लगते हैं। कुसुम वियोगी की 'अंगारा' काहानी में गाँववाले जमना के बलात्कार की वजह स्वयं जमना को हे ठहराते हैं-"छिनाल कैसे कूदती-फिरती थी अपनी जवानी बताने को। पता नहीं किन-किन के साथ मूँह काला करके आयी है।"[1] वैसे भी दबे पर सब शेर है। जबकि मौका मिलते ही जमना सुमेर सिंह के 'पुरुषत्व के प्रतीक अंग' को काट फेंकती है, ताकि आइन्दा कोई औरत उसकी हवस का शिकार न हो जाए।

प्रेम कपाडिया की 'हरिजन' कहानी में देवदासी प्रथा का चित्रण किया गया है, जो यौन शोषण का परम्परागत न्यायिक प्रणाली है। ब्राह्मणों तथा मन्दिर के पूजारियों की मदनपीडा को शान्त करने का तरीका है यह। दरअसल देवदासियों का अपने शरीर पर कोई अधिकार नहीं। उनका शरीर ब्राह्मणों की अर्चना है। हर दिन अलग-अलग पुरुषों के साथ रात गुज़ारना पडता है, इस वजह अपने बच्चे का पिता कौन है ,यह भी बता नहीं पाती। कहानी में एक देवदासी अपने बेटे से कहती है-"यह हमारी बदनसीबी है कि तेरे बाप का पक्का पता नहीं ......जो औरतें रोज़ नये मरद के साथ सोती है ,उसके बच्चे के बाप का नाम कैसे पता चल सकता है ?"[2] उस औरत के कथन से मजबूरी की बू निकलती है। लेकिन उसका बेटा बडा पुलिस अफ्सर बनता है और उस कुप्रथा को समाप्त करता है। वह अपनी माँ को समाज प्रदत्त सारी गन्दगी के साथ अपनाता है। और सबके सामने कहने की हिम्मत

---

[1] अंगारा,कुसुम वियोगी, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता

[2] हरिजन, प्रेम कपाडिया, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ.91

दिखाता है कि वह देवदासी ही अपनी माँ है । प्रतिष्ठा की संकरी परिकल्पनाओं से परे रिश्तों की यह मान्यता दलित चेतना का अलग आयाम है ।

दलित कहानियाँ शारीरिक व मानसिक शोषण के खिलाफ आक्रोश करती है । अपने हीनता बोध को वे पहचानने लगे हैं और उसे चेतना से हराने केलिये वे सक्षम हो रहे हैं । अपने बदन पर गैर के अधिकार को वे नकारने लगे हैं, चाहे उसके लिये हथियार भी उठाना पडे ।

सामाजिक तौर पर दलितों पर ज़्यादती एवं उनका संघर्ष

जाति-प्रथा तथा छुआ-छूत सवर्णो द्वारा बनाई गयी वेदोत्तर कालीन संकल्पना है । उसके तहत एक मेहनती समाज की आकांक्षाओं को पूर्णतया जकड दिया गया है । उनकी बहुआयामी क्षमताओं पर लगाम लगा कर अज्ञता के अन्धकूप में उन्हें धकेल दिया गया है । इस गुलामी ने ही दलितों के दिलो-दिमागों को पिरोया है ।

समकालीन दौर उन गुलामों का पुनर्जागरण है । वे सजग एवं शिक्षित हैं, इसलिये संघर्षरत भी। परंतु उनके भोलेपन का लूट-खसौट अब भी जारी है । सूरजपाल चौहान की 'साजिश' कहानी में ट्रेंस्पोर्ट का धन्धा करने केलिये 'लोण' लेने आये नत्थू को बैंक मैनेजर पिगरी लोण पर फँसाता है, इसलिये की सुअरों को पालना उनके पुश्तैनी धन्धा है । दरअसल यह नत्थू की प्रगति पर बैंक मैनेजर की आकाँक्षा हर्गिज़ नहीं, बल्कि वह सोचता है कि अगर ये अछूत अपना खानदानी धन्धा बन्द करके कोई नया धन्धा शुरू करें तो हमारे घरों की गन्दगी कैसे साफ होगी ।[1] "वह क्लेर्क को चेतावनी देता है -"भविष्य में ध्यान रखना कि कोई भी अछूत वर्ग का अपना धन्धा शुरू करने केलिये कर्जा हेतु प्रर्थना पत्र भर देता है, उसे उसके पैतृक धन्धे में ही लगने हेतु प्रेरित करना है । उसे ऐसा विश्वास दिला की अपना

---

[1] साजिष, सूरजपाल चौहान, दलित कहानी संचय,पृ.68

पैतृक धन्धा छोडकर दूसरे धन्धे की कल्पना भी न करे।"[1]पूरे एक समाज को अपने पैरों तले कुचल देने की यह साजिश नत्थू की पत्नी शांता तथा दलित समाज के अन्य सदस्य मिलकर समाप्त करते हैं । वे चेतावनी देते हैं कि आइन्दा ऐसी हरकत न करे तो उसके लिये भला होगा ।

दयानन्द बटोही की 'सुरंग' कहानी में पी.एच.डी की उम्मीद में कथावाचक साक्षात्कार देता है। लेकिन हरिजन होने की वजह से उसकी भर्ती नहीं होती है । डॉ.विष्णु साफ बता देता है कि उनके रहते हुए हरिजन की भर्ती संभव नहीं हैं । "जब तक मैं हूँ, हरिजन को रिसेर्च करने नहीं दूँगा।"[2] डॉ.विष्णु की सवर्ण मानसिकता के खिलाफ कथावाचक जुलूस निकालता है और अपना हक हासिल कर देता है ।

विपिन बिहारी की 'बिवाइयाँ' कहानी के प्यारेलाल मोची का अन्दाज़ अलग है । वह अपने ही मेहनत से आयुर्वेद का नामी वैद्य बन जाता है । समाज की शोषण नीति के प्रति वह वाकिफ है-"एक दलित को छोटी से छोटी चीज़ हासिल करने केलिये एडी-चोटी का लगाना पडता है । दलित पढने जाओं तो वहाँ भेदभाव......दुर्व्यवहार। पढने से रोका जाता है उसे। यदि शिक्षक सवर्ण मिल जायें तो फिर फलाँ-फलाँ जात के बच्चे आते हैं । फलाँ-फलाँ जात अछूत होता है और फिर शिक्षकों द्वारा बच्चों को प्रताडित किया जाता है; आखिर क्यों ? क्या ये शिक्षक ही सबसे बडे जातिवाद, छुआ-छूत के पोषक होते हैं । क्या हम लोगों के मामले में उनका शिक्षण धर्म ज़रा भी आडे नहीं आता है । तब सच ही कटवाया होगा एकलव्य का अंगूठा।"[3] पर प्यारेलाल मोची कभी एकलव्य नहीं बन सकता। उसे अपनी काबिलियत पर भरोसा है-"हाथ पैर होते हुए भी हम लोग लंगडे-लूले बने हुए हैं । बडे

---

[1] वही.

[2] साजिष, सूरजपाल चौहान, दलित कहानी संचय,पृ.68

[3] बिवाइयाँ , विपिन बिहारी, वसुधा 58, पृ.254

जातियन दूसरा कुछ करने देगा तब ना। फिर जूता कौन सियेगा? उनकी शादियों में ढोल कौन बजाने जायेगा?"[1] लेकिन कहानी में एक दलित अपनी महनत के बलबूते पर वेदों की संजीवनी-आयुर्वेद पर अपना कब्जा कर लिया है। यह ज्ञान सवर्णों के खिलाफ हथियार बन जाता है। फलतः सवर्ण भी अपना तेवर बदल लेते हैं। प्यारेलाल को काबिल पाकर उनके यहाँ से दवाइयाँ खरीदने केलिये किसी सवर्ण की जातीय वरीयता बाधा नहीं डालती। सवर्ण की इस कपट नीति पर प्यारेलाल व्यंग्य कसता है -"एक खूबी और है बाबा आप लोगों की ढलुआ प्रकृति ....जब चाहा ,जिस आकार में चाहा ढल गया। ज़रूरत पडने पर न कोई दलित है अपने सामने, न कोई दूसरा, सिरफ आपका काम निपटना चाहिये। यदि में आज एम.पी., विधायक बन जाऊँ, तो कल मेरे साथ छुआ-छूत खतम आप लोगों केलिये। मेरी प्रशंसा में जुमले काटने शुरू। आप के मन में जो रहे, व्यावहारिक रूप में आप मेरे हो जायेंगे। इसलिये ब्राह्मण किसी भी कालखंड में प्रताडित नहीं हुआ और राजसत्ता का करीब हमेशा बना रहा।"[2] इस तरह एक दलित के ज़रिये सवर्ण समाज की कडी आलोचना प्रस्तुत हुई है। दलितों की असलियत पर व्यंग्य करते हुए भी सवर्णो के खिलाफ प्यारेलाल मोची का संघर्ष सभी मायनों में चेतना संपन्न है। चमार के बेटा चमार ही हो सकता है लेकिन अपने कर्म के ज़रिये प्यारेलाल मोची सच्चे अर्थ में ब्राह्मणत्व हासिल करता है।

अपने को बडा दिखाने केलिये किसी दूसरे को छोटा दिखाना ज़रूरी है। ज़मीन्दारों की सामाजिक नीति का यही अन्दाज़ है। अपनी वंशीय गरिमा की स्थिरता केलिये वे अक्सर दलितों को उनकी हीनता का एहसास दिलाते रहते हैं। इस उद्देश्य में नये नये सामाजिक कुरीतियों का गठन करते रहते हैं। ठाकुर परिवार की शादी में अक्सर दलितों को भी बुला

---

1 वही.

2 बिवाइयाँ , विपिन बिहारी, वसुधा 58, पृ.254

लिया जाता है । लेकिन भोजन के बाद दलितों को अपना पत्तल स्वयं उठाना पडता है । उसी तरह् बाबु लोगों को अपने शादी में दलित जब 'नेउता'(न्योता)देते हैं तो 'सूखा' पहूँचाना पडता है । परंतु वे कभी दलितों के यहाँ बैठकर खाना नहीं खाते । उसकी दी गये 'सूखा' अक्सर नौकरों को दे देते हैं । इस तरह् दलितों को न्योता देकर सबके सामने उसका अपमान करते हैं और अपने वर्चस्व का आनन्द ले लेते हैं ।

प्रह्लाद चन्द्र दास की 'लटकी हुई शर्त' कहानी में सवर्णों की इस सामाजिक नीति पर तीखा व्यंग्य कसा गया है । कहानी के गंगाराम धनिक होने के बाद सवर्णों के इस कुचाल को समाप्त कर देता है । रामकिशन बाबु की पोती की शादी में दलित समाज की उपस्थिति केलिये वह् एक शर्त लगा देता है -"शर्त यही है कि खाने के बाद हम अपना पत्तल नहीं उठायेंगे । नेउत कर ले जाते तो सचमुच सम्मन दीजिये।"[1] लेकिन ठाकुर प्रस्ताव ठुकरा देता है । इसलिये गंगाराम ठाकुर की पोती की शादी के दिन दलितों को अपने घर में सभी मान और आदर के साथ खाना देता है और सामाजिक वरीयता की पुरानी प्रथा को समाप्त कर देता है । वह् गाँव में दलितों के बच्चों केलिये स्कूल भी खोल देता है । गंगाराम के संघर्ष का यह् विकल्प काफी अर्थों में प्रगतिवादी है । धनिक बनने पर वह् अपनों को भूलता नहीं मानो सामान्य मानव की भूलने की आदत से वह् मुक्त हो । लेकिन 'माफी' कहानी का कप्तान रघुनाथ इस टाइप का है । बडे बनने पर उसको अपना अतीत नागवार लगता है । अतीत से बचने केलिये अपने पिता तक को पीछे छोड चुका है । जबकि गाँववाले उसकी भूल सुधारने का मौका दिलाते हैं । उसे अपनी गलती केलिये माफी माँगना पडता है।

'दलित ब्राह्मण' कहानी का विजय रंजन कुरील भी इस तरह् का इनसान है । सरकारी सेवा में उच्चाधिकारी के पद पर उसकी नियुक्ति इसलिये हुई थी कि वह् दलित है । लेकिन

---

[1] लटकी हुई शर्त, प्रह्लाद चन्द्र दास, दलित कहानी संचयन, पृ.83

बाद में उसी पहचान का वह तिरस्कार करने लगता है-"समाज ! क्या दिया है समाज ने मुझे? क्यों पर्वाह करूँ में समाज की?"[1] वह तो गंगा गया गंगाराम जम्ना गया जम्नादास है । कहानी में मगर उसकी मौकापरस्ती को उसका ही मित्र सुधारता है -"आज मैं या आप जिस पद पर हैं, हमें वहाँ पहूँचाने में समाज ने भी त्याग किया । उसका भी योगदान है इसमें अहम भूमिका निभाई है समाज ने इसमें । उसकी हितों की रक्षा के प्रति कटिबद्ध होना चाहिये।"[2]

सवर्ण समाज दलित नारी पर अपना पूरा हक जताने केलिये कटिबद्ध है । सवर्णं का दलील है कि दलित औरत को अपना तन-मन दोनों उनकी खातिर 'खोलके रखनी' चाहिये । नहीं तो धिक्कार माना जायेगा, जिसकी सज़ा होगी सामूहिक बलात्कार व बस्ती में नंगा घुमाव। सहज भय की वजह दलित सब कुछ सहता अया और सवर्णों की तानाशाही प्रथा बनती चली आयी । पर वर्तमान दौर दलितों की प्रतिक्रिया का है । वे संघर्ष करने लगे हैं।

धार्मिक क्षेत्र की ज़्यादती और दलितों का संघर्ष

आम समाज में धर्म की भूमिका चाहे जितना भी महत्तर हो, दलितों केलिये वह शोषण का अन्धकूप है, शोषण का एक ओर ज़रिया । धर्म के दुराचार व अनुष्ठान की आड में होते शोषण के खिलाफ भी दलित समाज संघर्षरत है ।

वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण का स्थान सबसे ऊँचा होता है । वह मानो ब्रह्म का प्रतिपुरुष है, ब्राह्मण की वाणी ब्रह्म की वाणी मानी जानी चाहिये । उसे टाला नहीं जाता बल्कि दिल से लगाया जाता है । लेकिन समाज द्वारा उनको दिये गये इस समादर का, सम्मान का अक्सर गलत इस्तमाल ही होता रहता है, खास तौर पर दलित जीवन सन्दर्भ में । बुद्धशरण हंस की

---

[1] दलित ब्राह्मण, सत्यप्रकाश, दलित कहानी संचयन, संरमणिका गुप्ता.पृ.158

[2] वही .पृ.158

'अस्मिता लहूलुहान' कहानी में इसका खुलासा किया गया है । चन्दन को पुत्रलाभ केलिये एक ब्राह्मण द्वारा दिये गये साधनों की फेहरिस्त इस प्रकार है -"दही-1 पाव, बसमती चूडा-1 पाव, पेडा-1 पाव, काजू, किसमिस, पिस्ता, बादाम-1 पाव, दूध-1 सेर,घी-5 सेर, राई-1 सेर, धान-5 सेर, उदड-5 सेर, चावल-5 सेर, केला-5 दर्जन, संतरा-5 किलो, बिदाना-5 किलो, सेब-5 किलो, नारियल-5 किलो, काला, उजला, हरा, पीला, बादामी रंग का कपडा-5 गज, उडहल, बलि, चमेली, गेन्दा, गुलाब के फूल, भडभूजे की चूलहे की राख, हवाई दूकान की चूल्हे की मिट्टी, घोडे का नाल, पुराने कुए की मिट्टी, देवी स्थान की मिट्टी, गोबर, ताँबा, चान्दी, सोने के पाँच-पाँच तोले के बालक की मूर्ती, गोबर के बालक की मूर्ति तो मैं स्वयं बनालूँगा । ताँबा, चान्दी, सोने की बालक की मूर्ती जगत सुनार से बनवा लेंगे । वह अच्छे बनाता है । उसके पास साँचा है । वह मिनटों में ढलाई कर देगा । यह धार्मिक अनुष्ठान है । धातु में मिलावट नहीं करेगा।"[1] माता सरस्वती इतना बडा पेटू तो नहीं होगा लेकिन यह ब्राह्मण बडा पेटूराम है । देवी स्थान की मिट्टी तथा हवाई दूकान के चूल्हे की मिट्टी से कौन देवता तुष्ट होती है, यह पण्डित ही जाने । कहानी में ब्राह्मणों की पोल की तिकडमों की पोल खोलने की कोशिश हुई है ।

पुलिस अफसर श्रीराम चतुर्वेदी अपनी ही बेटी का 'नथ' उतारना चहता है, जिसका जन्म एक वेश्या से हुआ था । उसके लिये पचास हज़ार रुपया देने को वह तैयार होता है । कहानी में एक वेश्या अपने भोगे हुए यथार्थ को इस तरह प्रस्तुत करती है -"मैं खुद ब्राह्मणी हूँ, बाप की हवस की शिकार। सोचकर अभी भी खिन लगता है । मेरा बाप मन्दिर का पुरोहित था। वह भक्तों में जो मालदार होता है, उसे फुसलाता बहकाता और रात केलिये

[1] अस्मिता लहु-लुहान, बुद्धशरण हंस, दलित साहित्य 2002, पृ.294

मुझे उनके हाथ बेच देता । मुझसे वह खुद कमाई करने लगा । एक दिन उसने मुझ पर ही कुदृष्टि डाल दी और अपनी हवज़ का शिकार बना लिया।"[1]

'अब नहीं नाचब' कहानी का पण्डित विद्यासागर चतुर्वेदी अपनी शोषण नीति का स्वयं खुलासा करता है-"बाबु साहब हमारे पूर्वजों ने वर्णव्यवस्था, छुआ-छूत और ऊँच-नीच की बातें खूब सोच-समझकर ही बनाये हैं। ....जिस गाँव में चमारों की इज्जत हो, उसमे फिर हम लोगों की इज्जत नहीं हो सकती । यही अधर्म है, यही व्यवस्था का विरोध है और यही अनीति है । ....हर हालत में इन्हें दबाना होगा और दबाये रखना ही होगा चाहे कुछ को जान से मारना ही क्यों न पडे ।"[2] लेकिन पण्डित की इस साजिश से दलित वाकिफ है- "हमें तो इस बात की खुशी है भाई कि झूठ और ठगी की एक नयी बात धर्म बनने से वंचित रह गयी । यदी चमार नहीं आडे होते तो गेहूँ चमारों को नहीं खाना है -धर्म का आदेश बन जाता । गेहूँ के बोलने की झूठी बात वेद-पुराणों की कथा बन जाती । इस कथा से पण्डित विद्यासागर चतुर्वेदी, धर्म के महान ज्ञात-ऋषि-मुनि बन, बाबु शेर सिंह ब्राह्मणों के तरनहार, भगवान विष्णु या किसी देवता के अवतार और कन्हई चमार एक नये प्रकार का राक्षस या असुर बन जाता । हम लोग इसी झूठी कथा को धर्म मानकर, हाथ जोड जोडकर श्रद्धा से सुनते । विद्यासागर चतुर्वेदी की आनेवाली पीढियाँ इसी झूठी कथा को सुना-सुनाकर, हम लोगों की आनेवाली पीढियों केलिये स्वर्ग का दर्वाज़ा खुलवातीं । उनका धन्धा-पानि फलता-फूलता ।"[3] अखिर दलित सचेत हैं ।

---

[1] अस्मिता लहु लुहान, बुद्धशरण हंस, दलित साहित्य 2002, पृ.299
[2] अब नहीं नाचब, रामनिहोर विमल, दलित साहित्य 2002, पृ.250
[3]अब नहीं नाचब, रामनिहोर विमल, दलित साहित्य 2002, पृ.250

शादी-ब्याह में वर-वधू के साथ पुरोहित की भी अहम भूमिका है । उसके बिना शादी कौन कराएगा । खानदानी पुरोहित की प्रणाली है तो मामला और भी बिगडेगा । 'ब्रह्मास्त्र' कहानी के पण्डित माधवप्रसाद भट्ट अपनी भूमिका अच्छी तरह जानता है । इसलिये नैथानियों के बारात में वह कँवल नामक दलित को आने नहीं देता, चाहे वह वर-अरविन्द का खास मेहमान ही क्यों न हो । वह घोषणा करता है दलित के साथ वह बारात में कदापि नहीं जायेगा-"आप को लगता है कि उसे ले जाना उचित और ज़रूरी है, तो ले जाइये,लेकिन इस स्थिति में मैं बारात में नहीं जाऊँगा ...मुझे क्षमा कीजिये.....मैं यही से लौट जाता हूँ....वह डोम पढा-लिखा है,उसी से शादी का संस्कार भी करा लेना"[1] पण्डितजी ने अब ब्रह्मास्त्र ही छोड दिया तो उसकी निशाना भी नहीं चूकना चाहिये । अरविन्द के परिवार मान जाते है और कँवल अपमानित होकर चला जाता है।

'हरिजन' कहानी में शोषण का दूसरा अमानवीय आयाम चित्रित है-देवदासी प्रथा । मन्दिर के पूजारियों व अन्य ब्राह्मणों की काम-पिपासा का शमन कराने केलिये देवदासी प्रथा रखी गयी है । अपने आजीवन दैहिक शोषण के बदले उन्हें मिलती है केवल दो वक्त की रोटी, वह भी प्रसाद के तौर पर । अपना कोई नैतिक आदर्श रखने केलिये वे असमर्थ है । प्रत्येक दिन अलग-अलग पुरुषों के साथ रात गुज़ारने में वे अभिशप्त हैं । अपने बच्चों के पिता का नाम बता पाने में भी वे असफल है । कहानी में एक देवदासी का बेटा बडा पुलिस अफ्सर बनता है और अपनी माँ के साथ अन्य देवदासियों को भी कारागार से मुक्ति दिलाता है तथा इस कुप्रथा को समाप्त करता है ।

दलितों की बुनियादी समस्या भूख की है । भर-पेट खाने का कोई भी मौका वे छूटने नहीं देते, चाहे उसमें अपनों का ही शोषण हो जायें तो भी । उसके लिये कोई धार्मिक

---

[1] ब्रह्मास्त्र,ओमप्रकाश वाल्मीकि,वसुधा 58,पृ.234

पृष्ठभूमि भी मौजूद है तो मामाला और बिगडेगा। 'बस्ती के लोग' कहानी में नन्दु के सामने यही समस्या है। वह पढा-लिखा है, कुप्रथाओं को नहीं मानता, धार्मिक अनुष्ठान के नाम पर अपने पिता की मौत मनाने के लिये वह तैयार नहीं। गाँववलों को बहरहाल दारू-दावत मिलनी ही चाहिये इसलिये नन्दु के पिता को कन्धा न देकर असहयोग आंदोलन मचा रखा है। लेकिन उसका भाई समझौता कर लेता है, जिसे आगे भी उन्हीं कर्मकाण्डियों के साथ ही रहना है। प्रथा को जायज़ साबित करने केलिये नन्दू का चाचा एक भूतनाटक भी रचा देता है, जिसमें नन्दू के पिता के भूत के बोलने का वहम दिखाया जाता है -"सिब्बू भक्त ने अपने पूरे शरीर को हिलाते और मूँह से बेसुरी आवाज़ें निकालते सिर ज़मीन पर दे पटका और निढाल होकर बेहोशी जैसे हालत में एक ओर को लुढक गया। लोगों ने उसके मूँह पर पानी की छीं टें मारे। कई लोग उनको पंखा झलने में लगे हुए थे। थोडी ही देर में वह सहज होकर पंडाल के एक कोने में बैठा-बैठा बीडी के कश खींच रहा था।"[1]

'कारज' कहानी में भी समान ढंग के शोषण को दर्शाया गया है। गाँव में अपने गिरने लायक पुराने मकान को पक्का बनाने के ख्वाहिश में आये मगनलाल को गाँववाले तीन साल पहले मरे उसके पिता की 'कारज' में फँसाते हैं, ताकि उनके मुक्ति के बहाने गाँववालों को भर-पेट खाने का मौका मिले। उसकी माँ भी समझाती है कि गाँव में रहना है तो रिवाज़ों को मानना पडेगा। आखिरकार मगनलाल सपरिवार शहर लौटता है।

धर्मांतरण दलित जीवन की ओर एक हकीकत है। समान हैसियत की उम्मीद में हिन्दू धर्म से अन्य धर्म जैसे बौद्ध, इस्लाम, ईसाई आदि को स्वीकारते हैं लेकिन उधर भी उनकी हैसियत में परिवर्तन नहीं होता। हिन्दू होकर भी मेहतर को संडास खोदना पडता है और विधर्मी बनकर भी। इस हकीकत की वेदना को संजीव ने अपनी 'जब नशा फडता है'

---

[1] बस्ति के लोग, सूरजपाल चौहान, वसुधा 58, पृ.244

कहानी में इस तरह अभिव्यक्त किया है-"ई समझो; हम लोग चार-चार बोतल दारू चढाके सेफ्टी टैंक में घुसते न वैसे ई आपका जात धर्म, भगवान भी नशा है-एतना एतना नशा नय पिलाओ तो हम आप लोग का नरक कैसे साफ करें? कभी कभी जब बीच में ही नशा फडता है तो मत पूछो कि कैसा लगता है । सब कुछ बदबू देने लगता है-एतना बदबू कि दिमाग का नशा तडक जाय।"[1]

निष्कर्ष

मनु महाराज के मिट्टी में मिले कितने अरसे गुज़र चुके हैं । मगर उनकी तूलिका से आज भी दलित मुक्त नहीं हुए हैं । मनु की नयी परंपराएँ दलितों के सामजिक एवं बौद्धिक विकास को गतिरोध खडा कर रहे हैं हालांकि वर्तमान दौर दलितों के संघर्षों का है । सदियो की गुलामी की साजिश की पोल खुल चुकी हैं । दलित अपनी पहचान स्वयं बनाने लगे हैं ।

दलितों की शिक्षित नयी पीढी समाज के प्रति अपने दायित्वों को अच्छी तरह निभा रहे हैं । जहाँ कहीं जो लोग अपने रास्ते से भटक चुके है उन्हें सही रास्ता दिखाने में भी दलित कहानीकार अपना किरदार निभा रहे है । उनकी लेखनी का अन्दाज़ ज्यादातर आँख के बदले आँख तथा नाक के बदले नाक के होकर भी समस्याओं का दायित्वपूर्ण आकलन मौजूद है । सदियों के दमन से उपजे विद्वेष तथा आक्रामकता भी दलित संघर्ष को बहुस्तरीयता प्रदान करती हैं । सभी कोशिशों के बावजूद अगर मूल समाज से तिरस्कार ही मिलता है तो अपना अलग गाँव या समाज पालने का विचार भी दृष्टिगोचर है ।

संक्षेप में दलितों का संघर्ष समाज में इनसान की हैसियत से जीने केलिये हैं, सवर्ण समाज के उद्पीडनों से उबरने केलिये है । जब वह भूख को अपनी मेहनत से जीतने की कोशिश करता है, तो उसके श्रम को भी कोई ना लूटे । दलित उसके लिये लडता है । दलितों का संघर्ष आखिर जीने केलिये है।

****

[1] जब नशा फडता है ,संजीव, वसुधा, पृ.265

चौथा अध्याय

अस्सियोत्तर कहानियों में नारी का संघर्ष

"औरत तो धरती है टोणी। धरती लाख चाहे कोई अवांछित बीज उसकी कोख में न अंगुरायें, मगर उसका वश चल पाता है क्या? क्या यह उसकी महानता नहीं कि ज़हर को भी अपना खून से सींचकर अमृत बनाकर हमें सौंप देती है। ऊँगली पकडकर आदमखोरों से बचाकर हमें आगे ले जाती है, मौत की घाटियों के पार और हम हैं कि अपनी तमाम नाकामियों का निशाना उसे ही बनाते हैं।"

-संजीव

नारी दुनिया की आधी आबादी है, जिसको पुरुषवर्चस्ववादी-पूँजीवादी समाज ने केवल दोयम दर्जे की हैसियत प्रदान की है । पुरुषमेधा समाज में पुरुष की अतिनायकवृत्ति ने सिर उठाने की उसकी लगातार कोशिशों को रौन्दा है । अपनी अस्मिता की लडाई में निरत यह आधी आबादी अवाम की कोटी में आनी ही चाहिये ।

नारी व अवाम

स्त्री चाहे किसी भी वर्ग की हो या जाति की, 'स्त्री' के रूप में उसका शोषण होता है । शोषण का प्रभाव प्रत्येक स्त्री पर पड़ता भी है । चाहे अमीर घराने की हो या ऊँची जाति की वह पुरुष के शोषण की शिकार बनती है । उसके श्रम का इस्तेमाल होता रहता है । घरेलू कामकाज बच्चों की पैदाइश व परवरिश और पति के अलावा घर के बूढे-बच्चे सबकी सेवा आदि को श्रम ही नहीं माना जाता। इसके अलावा घर के भीतर और बाहर अलग-अलग तरह के यौन शोषण की शिकार भी बनती है ।

पूँजीवादी समाज में मज़दूरिन खेतीबारी करते स्त्री या असंघटित क्षेत्र में काम करती स्त्री या घरेलू काम करती घरवाली सब दोहरे शोषण की शिकार है –एक स्त्री के रूप में और श्रमिक के रूप में।

भारतीय समाज की संरचना में जातीयता की अहम भूमिका है । इसलिए वर्ग व्यवस्था के तहत सबसे निचले स्तर की शूद्र या दलित स्त्री जातीय नृशंसता की भी शिकार बनती है ।

जैसे पहले ही सूचित किया गया है । अवाम का आधार आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक व मानसिक पिछडापन है । इसलिये अवाम के तहत निम्नवर्ग एवं निम्न मध्यवर्ग की औरतें ही आती हैं । अतः निम्नवर्ग की कामगार औरतें, ग्रामीण गृहिणियाँ, निम्नस्तरीय नौकरीपेशे नारी, मज़दूरिन, मछुआरिन, कूडा-कचरा बीननेवाली औरतें, फुट्पैथ पर सामान बेचनेवाली औरतें तथा वेश्याएँ भी अवाम के तहत आती हैं । मध्यवर्गीय एवं उच्चवर्गीय औरतें इस अध्ययन के बाहर है ।

इन निम्नवर्गीय महिलाओं का जीवन सन्दर्भ दूसरों से भिन्न है । उनका एक दिन इस तरह शुरू होती है – "सबेरे उठकर घर में झाडू देना, लीप-पोती करना, चूल्हा जलाना, दूर-दराज झरनों, जल-स्रोतों, नदियों व कुओं में जाकर पानी लाना, खाना बनाना,(इसबीच पुरुष दातून करने के अलावा कोई काम नहीं करता ।), अपने मरद, बच्चों तथा बूढों को खाना खिलाने के बाद खाना खाना, बरतन मांजना, परिवार में स्त्रियों का यही नियमित कार्यक्रम होता है । अगर गाय- गोरू घर में हो तो उनकी देखभाल करते का काम भी औरतों को ही करना होता है। उसके बाद वह बाहर काम के लिये चली जाती है, कभी मरद के साथ, कभी अकेली । फिर शाम को आकर खाना बनाना पडता है । मरद के सोने के बाद सोने चले जाना तथा मरद के उठने के पहले उठ जाना भी औरतों की दिनचर्या में शामिल है ।"[1] हाल ही में जने बच्ची की भी वह ज्यादा ध्यान नहीं रख पाती । माँ छोटी बच्ची को झोंपडी में अकेली सुलाकर या दूसरे बच्चों के हवाले कर दिन-भर मेहनत मज़दूरी के लिये निकल जाती है या उसे अपने साथ काम पर ले जाती है और काम के समय ऐसी ही धूल मिट्टी में खेलने-कूदने छोड देती है । धूप, धूल, शीत, वर्षा, आदि से उसे बचाने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया जाता; न समय पर नहलाने, धुलाने, खिलाने, पिलाने का श्रम होता । जैसा-तैसा बचा-खुचा और रूखा-सूखा खाकर, धूल,मिट्टी में कम से कम कपडों या चीथडों में लिपटी खेलती हुई तथा उपेक्षा की घूँट पीती हुई ये लडकियाँ अपनी आप बढती रहती हैं । लडकों को जितना ध्यान दिया जाता उतना इनके लिये नसीब नहीं होता । जैसे आशारानी व्होरा लिखती है – "लडकों का फिर भी कुछ ध्यान रखा जाता है, पर यह तो लडकियाँ ठहरी, माताएँ कहती हैं – लडकियाँ असुर विषबेलें अपने आप बढती हैं, उनकी क्या चिंता ।"[2] तिरस्कार तो मानो उनकी नियती ही है ।

आठ-दस उम्र की आयू में लडकियों का विवाह किया जाता है । माँ-बाप के लिये लडकी की चिंता हटती है और ससुराल के लिये एक बेमौल नौकरानी मिलती है । " इस

[1] रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्श:कदम और कुदाल के बहाने, पृ.32
[2] आशारानी व्होरा, औरत कल,आज और कल, पृ. 95

आयू की बालिका विवाह् का मतलब गहने-कपडे, गाजे-बाजे के अतिरिक्त क्या समझे । बस अबोध बालिकाएँ उसी में खुश होती है ।"[1] इस तरह् अनजाने ही घर बाहर की अनेकों ज़िम्मेदारियाँ उनके मासूम सिर पर पडती हैं ।

ससुराल लडकियों केलिये मानो दूसरा जहन्नुम है । ससुराल में ये बालिका वधुएँ थोडे दिन के लाड-प्यार के बाद घरवालों के तानों, पति और सास द्वारा निर्मम पिटाई और कई तरह के शोषण की शिकार होकर सिसकियों में शेष सारी आयू काटने को विवश हो जाती हैं । छोटी उम्र में ही माँ बनकर खिलने से पहले मुरझाने लगती हैं । बिना दवा-दारू के उनकी बीमारी और बिगडती है । परिणाम है अकाल मृत्यू, जो अक्सर अनपढ दाइयों के अकुशल हाथों की शिकार बनकर घटती है । कहीं कहीं वधुमूल्य की प्रथा भी प्रचलित है, जो इन औरतों केलिये एक और अभिशाप है – "वधू-मूल्य देकर बहू के रूप में ससुरालवालों को खरीदी हुई स्त्री मिल जाती है ।" [2] लडकी जब ससुराल जाती है तो वह अर्धांगिनी नहीं बल्कि 'कमाऊ हाथ' बनकर जाती है । लेकिन विडंबना यह है कि लडकी की कमाई की क्षमता उसके अपने विकास या उद्धार केलिये नहीं होती बल्कि परिवार के प्रति स्त्रियों के कर्तव्य में शामिल की जाती है ।

बेरोज़गारी, भूखमरी, तथा ज़मीन की नीलामी की वजह् किसान अपना गाँव छोडकर शहर की तरफ चले जाते हैं । उनके पीछे परिवार गाँव में ही रह जाता है, और उसकी ज़िम्मेदारी नारी पर पडती है । एक तरफ पति-विरह का दर्द और दूसरी तरफ ससुरालवालों का दबाव, दोनों अभागिन नारी को सहना पडता है । उनके पति नगर के मायाजाल में फँसकर कई बुरी आदतों एवं लालचों के शिकार बन अपनी कमाई का अधिकांश हिस्सा फूँक देते हैं । कभी- कभार गाँव में छोड आये अपने परिवार को पूर्णतया भूल भी जाते हैं । फिर कभी अकाल में वापस आते हैं तो अनेकों बीमारियों के साथ । अतः

---

[1] वही, पृ.95

[2] आशारानी व्होरा, औरत कल,आज और कल, पृ. 95 , पृ.45

पत्नी पर एक ओर ज़िम्मेदारी । कभी औरत पती से बीमार ग्रसित हो कर अकाल में काल-कवलित भी होती है ।

घर की आर्थिक कमज़ोरियों पर काबू पाने केलिये कभी भूख मिटाने ये औरतें मज़दूरी करने निकलती हैं । इनके काम की फेहरिश्त रमणिका गुप्ता ने इस प्रकार दी है -

1. मिट्टी, पत्थर व माल जो पुरुष काटते हैं, उसे नारी-मज़दूर टोकरी से ठोकर एक स्थान पर रखती हैं ।
2. ट्रको में माल लॉड करती हैं ।
3. ट्रकों में मिट्टी ढोती हैं ।
4. पत्थर तोडती हैं ।
5. जंगलों में लकडी काटकर या सिर पर बोझ लादकर बाज़ार में बेचती हैं ।
6. महुआ चुनती हैं
7. तेन्दु-पत्ते तोडती, सरियाती और बंडल बनाकर ठेकेदारों को माल सप्लाई करती हैं ।
8. साल-बीज चुनती हैं ।
9. बीडी बनाती हैं ।
10. खेती में काटनी, निकोनी, रोपनी का काम करती हैं । आदिवासी क्षेत्र में हल चलाना छोडकर सभी काम औरत ही करती हैं । मिसोरम में औरत हल भी चलाती है।
11. घर बनाने के काम में छप्पर छाने का काम केवल पुरुष ही कर सकता है । बाकी सभी का जैसे दीवार जोडना, गारा बनाना, सामान जुटाना, फूस या खपरा लाना और चढाना आदि काम औरतें करती हैं ।
12. महुआ से दारू चुआना, डोंडिया बनाना आदि सभी कार्यों में औरत की ही भूमिका मुख्य है । मरद केवल टोने या शीशे में दारू भरकर बाज़ारों में जाकर उसे बेचता भर आता है । वैसे यह अधिकांश जगहों में औरत ही करती है ।

13. सब्जी बेचने का काम अधिकांश औरतें ही करती हैं।

14. ईण्ट-भट्टे में भी औरतें अधिकांश काम करती हैं।[1]

खदानों में औरतें जोडों या दलों में काम करती है। उनमें युवतियों को पुरुष की रखैल बननी पडती है या प्रबन्धन के मुंशी को खुश करना पडता है अथवा दंगल के सरदार के चिरौरी करना पडता है। नहीं तो दंगल अधिकारी के पास कमाई का कुछ अंश छोडना पडता है।[2] अक्सर मज़दूरिनों को आराम करने या जैविक ज़रूरतों की पूर्ती केलिये सुविधा नहीं दी जाती। बच्चों को दूध पिलाने की अनुमति मुंशी की रहम पर निर्भर रहती है। " कोयला खदानों में प्रायः एक-रुपये सप्ताह मुंशी को घूस देनी पडती है, ताकि बीच में दूध पिलाने जाने की अनुमति मिल सके या आने में देरी होने पर हाज़िरी न कटे।" [3]जी तोड महनत के बावजूद पुरुषों की तुलना में नारी को तिरस्कार ही मिलता है।

श्रमिक वर्ग की ये महिलाएँ, घर और बाहर, श्रम की चक्की में पिसती जाती हैं। उस पर भी उसकी कमाई का दस्वाँ अंश भी खर्च नहीं कर सकती, इसलिये कि पुरुष अपनी कमाई पूरा का पूरा प्रायः अपने पर ही फूंक देते हैं। घर-खर्च के लिये उनके योगदान अक्सर नहीं के बराबर हैं। घर एवं बच्चों का भार प्रायः स्त्रियाँ ही ढोती हैं। " औद्योगिक क्षेत्र में औरत की कमाई प्रायः उसके पति बेटे या पिता उठा लेते हैं और औरतों के हिस्से की कमाई शराब की भट्टी या जुए में ही चली जाती है।"[4]

वैसे भी सबसे गरीब तबके की महिलाओं को हमेशा ही बहुत कम मज़दूरी दी जाती है और उनसे कठिन काम कराई जाती है। महिला जीविकोपार्जन के लिये ज़मीन्दारों के घर और खेत से गोबर बीनना, उन्हें सुखाना और जलावन के लिये उपले तैयार करना जैसी काम भी करती है। उपलों के लिये दस रुपये मिलते हैं। जलावन के लिये लकडियाँ लाने और उसे शहर ले जाकर बेचने में दिन-भर में दस से बीस रुपयों की कमाई होती है। घर केलिये पत्ते बीनना

---

[1] रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्श:कदम और कुदाल के बहाने, पृ.124

[2] वही. पृ 125

[3] वही

[4] वहीं, पृ.152

फेर उसे सुखाकर बेचने पर तीन -चार दिनों में करीब बीस से तीस रुपये की आमदनी होती ै। सम्पन्न लोगों की घराने में रोटी और मुट्ठी भर चावल के लिये निम्नतम स्तर के काम करनी ाडती हैं। निर्माण क्षेत्र का कार्य थोडा बेहतर हैं, उधर पन्द्रह से बीस रुपये की आमदनी होती ै।[1]

खाद्य एवं कुपोषण की समस्या इन निम्नवर्गीय स्त्रियों केलिये अहम मुद्दा है। एक ारफ अनाज कम होने पर स्त्रियों को ही खाना कम मिलता है, जिसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य ार पडता है। कभी कभार आर्थिक तंगी में न्यूनतम वेतन की अपनी माँग को भी वे भूलने ाजबूर हो जाती हैं। और दो चार रोटियों की कीमत पर बेगारी करनी पडती है। ये औरतें ाक्सर खून की कमी की शिकार होती रहती हैं। उनकी रोज़ाना की खुराक ज्वार की भाखरी ाथा मिर्च की चट्नी ही होती है।[2]

कृषक परिवार की औरतों को गृहिणी होने के नाते परिवार के पालन पोषण का काम, ;सके साथ खेतों में भी दिन भर श्रम करना पडता है। वे सुबह मूँह अन्धेरे दूर कुए या नदी ो पानी भरकर लाने, घर में चक्की पीसने, चौका-चूल्हा व बच्चे संभालने के बाद, आठ् बचते ़ी पति के साथ खेतों में काम करने केलिये पहुँच जाती हैं। दोपहर की मेहनत से थक कर ुरुष तो कुछ देर सुस्ता लेते हैं, स्त्रियाँ तब भी बच्चे को संभालने भोजन कराने आदि काम करती होती हैं। शाम को काम समाप्त कर पुरुष तो चौपाल में बैठकर मनोरंजन करते हैं या ार में भी एक तरफ बैठ हुक्का गुडगुडाते हुए पडोसियों से गपशप करते रहते हैं, स्त्रियों को फेर रात के भोजन केलिये खटना पडता है, साथ ही बच्चों की साज संभाल केलिये भी। इस ारह "सुबह से रात तक बिना विश्राम निरंतर काम के साथ कुपोषण और अधिक ांतानोत्पत्ति के कारण वे असमय ही बूढी होने लगती है"[3]

वृन्दा कारात, जीना है तो लडना है, पृ.44
वही, पृ.27
आशारानी व्होरा, पृ. 47

ज़िन्दगी की तनी डोर पर चलकर किसी न किसी तरह अपने पेट काटने केलिये फुट्पैथ पर सामान बेचनेवाली औरतों की ज़िन्दगी पुलिस एवं नगरपालिका की दखलअन्दाज़ी से दूभर हो जाती है। कभी-कभार अचानक शुरू होते जुलूस भी इनके पेट पर मारकर गुज़रता है । इनकी अस्थिर ज़िन्दगी में शादी जैसी सामाजिक परिकल्पनाओं की उतनी बडी मान्यता नहीं दिखाई पडती । एक पत्नी को छोड दूसरी से लगने की पुरुषवृत्ति को ये 'छुट्टा छोडा' बताकर आसमा लेती हैं –" शादी के बाद यहाँ जीवन साथी पसन्द अया तो ठीक है, वरना कपडे बदलने की तरह छोड लिया जाता है ।"[1]

कूडा-कचरा बीननेवाली औरतों को सारे दिन कैसी-कैसी गन्दगियों का सामना करना पडता है। तम्बाकू एवं चर्मरोग़ मानो इनके सहचर ही हैं । एक, मन की जुगुप्सा समाप्त करती है तो दूसरा जीवन लीला ही समाप्त करती है । इन सबसे बढकर सभ्य समाज भी इन औरतों को घृणा से देखता है । साफ सुथरे गलियों में कचरा बीनकर घूमते हुए इन्हें वहाँ के निवासी चोर मानकर दुत्कारते रहते हैं, भद्दी गालियों से आभूषित करते हैं ।

गँवारू जीवन में अब भी कुप्रथाएँ काफी प्रचलित हैं जैसे 'डायन प्रथा' । जिस औरत को बच्चा नहीं जनता, जो कई बार शादी करके विधवा हो चुकी है, जिस औरत के साथ किसी प्रकार का कोई असामान्य अतीत जुडा हुआ है, गाँव में कोई हादसा हो जाने पर उसकी सारी ज़िम्मेदारी किसी ऐसी स्त्री या 'डायन' पर मढ दी जाती है । फिर उसे आर्थिक और शारीरिक दोनों तरह की दण्डनाएँ दी जाती हैं । कभी-कभी नौबत यहाँ तक अती है कि उनको इतना पीटा जाता है कि उसकी मृत्यु तक संभव होती है । अक्सर इस तरह की घटनाओं के साथ कोई ना कोई ज़मीन के स्वामित्व की साजिश दिखाई पडती है । 2000 सितंबर के पहले बिहार में ऐसी पाँच वारदातें दर्ज की गयी थीं । आन्ध्र प्रदेश में पिछले वर्षों में 167 हत्याएँ दर्ज की गयी हैं और असम में वर्ष 2000 ऐसे पचास से ज्यादा घटनाएँ हुई थीं ।"[2]

[1] नीलम कुलश्रेष्ठ, जीवन की तनी डोर :ये स्त्रियाम,पृ. 31
[2] वृंदा कारात, जीना है तो लडना है, पृ. 170

निम्नवर्गीय नारी का जीवन इस तरह संघर्षों का संघात है । दर असल कष्ट सहते सहते उनके मन-शरीर इतने कडे या अभ्यस्त हो गये हैं कि अपने सारे भोलापन के बावजूद लडाई-भिडाई, मार-पीट, गाली-गलौज गरीबी-गन्दगी, अभाव जैसे इनके जीवन के अंग बन गये हैं । वे जितनी सहजता से स्थितियों का मुकाबला कर लेती हैं, सहन शक्ति से बाहर होने पर उतनी ही सहजता से उससे निकल भी जाती हैं । यों ही पति द्वारा किसी मामूली बात पर पिटाई सहज है । सास और बडे लडके तक इन्हें पीटने का अधिकार रखते हैं । ये मानती हैं की पत्नी को मारना मरदानगी का मापदण्ड है । पूछ बैठती हैं कि – मरद लुगाई को मारकर बस में न रखे तो मरद काहे का ! कई पत्नियाँ इसकी इतनी आदी हो चुकी हैं कि यदि उसका पति कुछ दिन तक उसे दो हाथ नहीं लगाए तो समझती है, अब वह उससे विमुख हो गया है, उससे प्यार नहीं करता ।"[1] लेकिन मार जब हद से गुज़र जाती है, पति को छोडकर दूसरे को अपनाना व बदली स्थिति को स्वीकारना इनके लिये जानो अदना सा विषय ही है ।

अस्सी-पूर्व की कहानियों में नारी संघर्ष

संघर्षरत अवाम की परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द की 'ठाकुर का कुआँ' की गंगी का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है । अपने बीमार पति के सूखे हलक को तराने की खातिर पानी उलीचने के लिये रात के अन्धेरे की आड लेकर वह औरत एक अलिखित कुप्रथा तोडने निकलती है । अतः ठाकुर के कुए से पानी भरने निकलती है । वह दलित है, छुआछूत से परेशान भी । मगर वह हालातों को खूब समझ सकती है । वह सोचती है- " हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों उच्च हैं ? इसलिये की ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं । यहाँ तो जितने हैं एक से एक छोटे हैं । चोरी ये करें , झूठे मुकदमे ये करें ......किस किस बात में हैं हमसे ऊँचे?"[2] गंगी का विद्रोही मन जाति व ऊँचनीच को केवल एक तागे से जोड देती हैं । उस तागे को छोडकर

[1] आशारानी व्होरा, औरत कल, आज और कल, पृ96
[2] ठाकुर का कुआँ, प्रेमचन्द, मानसरोवर-1

गंगी की नज़रों में सभी समान हैं। लेकिन कहानी के अंत में वह हारते हुए चित्रित है। वह पानी लाने में असमर्थ होती है। फिर भी उसके विद्रोह और समझदारी दाद देने योग्य है।

'मृतक भोज' की 'कावेरी' भी सचेत है। मृतक भोज के नाम पर परिवार की पूरी सम्पत्ति हडपने के बाद जिस्म की क्षुधा मिटाने की चाहत में घूरती गिद्धी नज़रों के खिलाफ वह आवाज़ उठाती है – "बिरादरी तब हम लोगों की बात नहीं पूछी जब हम रोटियों को मोहताज थे। मेरी माँ मर गयीं कोई झांकने तक न आया। मेरा भाई बीमार हुआ किसी ने खबर तक न ली। ऐसी बिरादरी की मुझे पर्वाह नहीं "[1] बिरादरी की शोषण नीति से वह वाकिफ है, मगर कहानी में वह मजबूरन आत्महत्या कर लेती है।

प्रेमचन्द की अनेकों कहानियों में औरतें पुरुषों के समान अधिकार पालती हैं। 'पूस की रात' की 'मुन्नी' अपने पति को समझाती है – "तुम छोड दो अबकी से खेती। मज़दूरी से सूखे से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है, मज़दूरी करके लाओ, वह उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस"[2] मुन्नी केलिये अपना पति देव नहीं, सहचर है।

जैनेन्द्र की 'जाह्नवी' का चरित्र थोडा भिन्न है। हलाँकि वह पुरुष वर्चस्विता को खूब मानती है। वह किसी से प्यार करती हैं और शादी किसी गैर से करने जा रहीं है। इसलिये वह मंगेतर को खत लिख देती है कि वह 'प्रिय मिलन, की आस' में है। फिर भी यह विवाह अगर घटित होता है तो मात-पिता की इच्छा को शिरोधार्य करके वह भरसक अपना कर्तव्य निभायेगी। लेकिन उसकी ओर से मुक्ति पाकर वह सचमुच कृतज्ञ होगी। उसके चरित्र को मान्यता देकर वृन्दावन अपनी आस छोडता है और आजीवन कुँवारा रहने का निर्णय ले लेता है। जाह्नवी में नारी चरित्र चाहे पुरुष परायण हो, पर उसका व्यक्तित्व अभिव्यंजित है।

[1] मृतक भोज, प्रेमचन्द
[2] पूस की रात, प्रेमचन्द,

अज्ञेय की 'हीलीबोन की बतखें' अकेली नारी-मन की अंतस्थलों को परखती है। हीलीबोन पहाडी इलाके में अकेली रहती है। वह बतखें पलती है और उनके अण्डों की आमदनी से जीवन यापन करती है। मगर वह सियार से डरती है, जो अक्सर उसके बतखों को मारता है। सियार को काबू करने केलिये वह एक सिपाही की मदद लेती है। सिपाही के बन्दूक से घायल हुए सियार का पीछा कर वह उसकी बिल में पहूँचती है और उधर उसके अनाथ पिल्लों को देखकर अपने अरक्षित बचपन की यादों में पिघलने लगती है। उसे अपने भीषण अकेलापन याद आती है और स्वयं दोषी मानने लगती है। किसी भावावेग में वह अपनी बतखों को दरांती से काट डालती है। जीवन याथार्थो से लड-भिडकर कडे हुए नारी मन की ममता के पिघलाव का यह एक भीषण दस्तावेज़ है।

'गैंग्रीन' कहानी की मालती का संघर्ष भी अपने बदले हुए हालातों से हैं। रात ग्यारह बजने से पहले सारे गृहस्थी को संभालने की कोशिश में घर आये मेहमान को भी वह टालती है। मेहमान की मौजूदगी उसके लिये गैर हाज़िरी है। वह किसी न किसी तरह उससे निपटारा करना चाहती है। उस बीच उसका बच्चा गिर जाता है। जबकि उस औरत को वह एक मामूली घटना महसूस होती है – "इसके चोटें लगती ही रहती है"[1] गृहस्थी चलाने की भाग-दौड में उसकी ममता का सोता कब का सूख चुका है। आखिर कथावाचक को संकेत देना पडता है – " माँ, युवती माँ यह तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है, जो तुम एक मात्र बच्चे की गिरने पर ऐसी बात कह सकती हो.....और यह अभी जब तुम्हारा सारा जीवन तुम्हारे आगे है "[2] जीवन की बहती नदी को देखने का मौका रात को ग्यारह बजने से पहले घर का सारा काम समेटने के बाद ही उसे मिलती है। तब तो पलकें भारी होने लगती है। उस औरत का जीवन 'गैंग्रीन' की तरह घटती-घटती लुप्त होती जाती है।

यशपाल की 'कर्मफल' कहानी के केंद्र में जो औरत है, उसे मात्र जीव कहा गया है। वह कतई नाम केलिये हकदार है, न पहचान केलिये। पूँजीवादी समाज केलिये वह मात्र

---

[1] गैंग्रीन, अज्ञेय

[2] गैंग्रीन, अज्ञेय

जीव है । वह बेघर है और भारी वर्षा में भीगकर वह सेठजी के घर के चौडे दालान पर 'खींची सी' चली आती है । भूख के कारण उसके गोदी का बच्चा मर जाता है । मगर वह रो नहीं सकती । क्योंकि सेठानी की बीमार बच्ची की नीन्द में खलल पड सकती है । वह मूँह में साडी घुसेडकर रोती हुई भीगती चली जाती है । उससे रोने का अधिकार भी छीन लिया जाता है ।

'दुख का अधिकार' कहानी की बूढी दादी की हकीकत भी इस हद से गुज़रती है । उस औरत का बेटा, घर का कमाऊ हाथ, चल बसा है । घर में बच्चे भूख से रो रहे हैं, बहु बेहोश है । आखिर वह बूढी माँ बेटे की मौत के ठीक अगली सुबह तर्बूज़े की टोकरी लिये बाज़ार में उसे बेचने चली आती है । समाज उस पर थूकता है । उसे डाय़न घोषित करता है । लेकिन वह औरत हार नहीं मानती उसकी हार का मतलब है घर की भूख की जीत । वह हार नहीं मान सकती । उसकी लडाई आखिर भूख से है, जिसके सामने समाज का दुत्कार नगण्य है ।

'आदमी का बच्चा' कहानी की अया भी भूख से काफी परिचित है । उसका बच्चा भूख की वजह मरा है । मगर 'बेबी' के सवाल कि ' क्या भूख से हम भी मर जाएँगे' , उसका वह यों जवाब देती है कि "भूख से मरते हैं कमीने लोगों के बच्चे" और अपने लल्लू की यादों में रो पडती है । बडों की दुनिया में छोटे की आखिर क्या हैसियत हो सकती है । उनका दुख-दर्द उनका अपना होता है । वह औरत भला उसे खूब समझती है ।

फणीश्वरनाथ रेणु की तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुल्फाम' की हीराबाई अपने पेशे का मारा है। पेशेवर होने के नाते वह हीरामन के प्यार को नज़रन्दाज़ करती है । उसकी ज़िन्दगी 'मथुरा-मोहन' कंपनी की खिंचाव के अनुसार इधर-उधर डंवाडोल है । उस बीच घर-बारात की वह भला क्या हैसियत दे सकती है । उससे ज्यादा आशिकों की बुरी नज़र एवं 'पतुरिये' की पुकार से मिलता अपमान । हलांकि वह संघर्षरत है । अपने पेशे की वजह से दिल के मचलन पर वह काबू रखती है ।

कमलेश्वर की 'देवा की माँ' कहानी में पुरुष वर्चस्विता को नकारती आत्मनिर्भर औरत का चित्रण हुआ है। देवा की माँ अपने पति से अलग बेटे के साथ रह रहीं है। बेटा 'देवा' के और स्वयं पेट भरने के लिये वह दरियाँ बुनती है। उसका बेटा थोडा बहुत पढ चुका है और बेकारी में फिरकापरस्ती कर रहा है। वह वाकई माँ पर बोझ है। सरकार के खिलाफ जुलूस के दौरान वह पकडा जाता है और उसकी साल भर की सज़ा होती है। बेटे की रिहाई केलिये माँ पति से मदद माँगती है। लेकिन वह बेरहम उसकी तरफ से मुँह मोडता है। उस दिन से देवा की माँ अपनी मांग सूना छोडती है। कहानी में यह ध्यातव्य है कि पती की निरामयता के बावजूद वह उसको दोषी नहीं ठहराती – "आदमी में वैसे भी खोट नहीं होता, उससे कुरास्ता तो औरत ही डालती है। मैं तो घर रहती थी, ये ड्यूटियों पर दौडते रहते थे, महीना बाद आना होता था। वहीं 'वह' मिल गयी और उसने बहका लिया। औरत चाहे तो अच्छे भले आदमी को उलझाने कितनी देर लगती है।"[1] अंतर्विरोध यह है कि आत्मपरायण होकर भी देवा की माँ पति परायण है। पती की बीमारी की खबर सुनकर वह दोबारा माँग भरना शुरू करती है।

'माँस का दरिया' कहानी में पहाड सी ज़िन्दगी के सामने सुध-बुध होकर खडी 'जुगनू' को हम देख सकते हैं। एक तरफ उधारी के नाम पर उसके बदन की गरमी को ही लूटते बेशरम आशिक गण तो दूसरी तरफ बढती उमर, थकता बदन, गिरती मांग और गिराती बीमारी। ऊपर से जांघिये पर पका हुआ फ़ोडा भी जो काम को दर्दनाक कर देता है। मगर वह वेश्या है जीना है तो आशिक पटाना ही है , दर्द को पीना है। कल की क्या जाने आज केलिये लडना है। वह फोडे को भूलती है और ग्राहक पटाती है। उसकी होड पहाड सी ज़िन्दगी के खिलाफ है।

अमरकांत की 'दोपहर का भोजन' कहानी बिखराव के कगार पर खडे अपने परिवर को समेटती औरत की आत्मदान का चित्रांकन है। वह औरत अपनी दामन में झूठ छिपाती है

---

[1] देवा की माँ, कमलेश्वर

और उसे अपने परिवारिकों की थाली में यथारुचि परोसती है । परिवार के सारे सदस्य बुरे वक्त के मारे हैं । अपनी भूमिकाओं के सम्मुख वे बेसहारे हैं । इसलिये एक तरह की हीनग्रंथी की भावना से ग्रसित हैं और अन्य सदस्यों से मुँह छिपाते हैं । पिताजी के अलावा घर में बडा भाई भी काम करता है, लेकिन घर का भार ढोने में दोनों असमर्थ हैं । मंझले लडके को पढाई में ध्यान नहीं है, लफंगागिरि करता है । उसे परिवार पर भरोसा नहीं है । लेकिन सिद्धेश्वरि सिद्धहस्त है । वह अपने परिवार को संभालने की कोशिश में निरत है, चाहे वह झूठ की आड लेकर ही क्यों न हो। छोटे लडके प्रमोद के बारे में वह 'बढकू' को झूठ कहती है- " आज तो सचमुच नहीं रोया । वह बडा ही होशियार हो गया है । कहता था बडका भय्या के पास जाऊँगा "[1] जबकि प्रमोद रो-थककर सोया हुआ था । मंझले लडके से वह कहती है –" बडका तुम्हारा बडी तारिफ कर रहा था । कह रहा था मोहन बडी दिमागी होगा' उसकी तबियत चौबीसों घण्टे पढने में ही लगी रहती है" [2] मगर वह लडका तो यों ही घूम-फिरकर आया था । माँ उसे उकसाना चाहती है ताकि वह भी हालातों से सजग बने । पती से वह कहती है – "बडा होशियार है (बडका), उस ज़माने का कोई महात्मा है, मोहन तो उसकी बडी इज्जत करता है । आज कहता था कि भय्या की शहर में बडी इज्जत होती है, पढने-लिखनेवालों में बडा आदर होता है और बडका तो छोटे भाइयों पर जान देता है । दुनिया में वह सबकुछ सह सकता है पर यह नहीं देख सकता है कि उसके प्रमोद को कुछ हो जाए ।"[3] नतीजतन पति भी खुश । इस तरह घर के सदस्यों के घावों पर मरहम पट्टी लगाते हुए स्वयं घटती इस औरत की किरदार अनोखी है । उसके सम्मुख परिवार ही पहाड है , मगर पहुंच के परे नहीं ।

रांगेय राघव की 'गदल' की गदल समूचे समाजिक संरचनाओं को ललकारती है । उसका पति मर गया है और वह किसी गैर की घर बसा रही है । उसका दावा ज़रा हटके है-" मेरा मरद तो मर गया । जीते जी मैं ने उसकी चाकरी की, उसके नाते उसके सब अपनों की

[1] दोपहर का भोजन, अमरकांत
[2] वही
[3] वही

चाकरी बजाई । पर अब मालिक ही न रहा, तो काहे को हडकंप उठाऊँ । यह लडके, यह बहुएँ ! मैं इनकी गुलामी नहीं करूँगी "[1] वह पतिपरायणता को मानती है लेकिन अपनी वैयक्तिकता से अवगत भी । उसके लिये बेटों से ही क्या, पूरे समाज से वह लडती है ।

जाहिर है कि अस्सी-पूर्व की कहानियों में नारी का संघर्ष प्रमुखतः अपने जीवन यथार्थों से हैं जिनमें भूख की बडी भूमिका है । लिंगपरक विवेचन के तहत पतिपरायणता को ये औरतें ज्यादातर आदर्श मानती हैं । हालांकि गँवारूपन में पति को देव से ज्यादा सहचर की हैसियत ही प्रदान किया गया है । परिवार में बहुत विरले ही ये अपनी अस्मिता की लडाई लडती हैं जबकि अपने अंदर कहीं वैयक्तिकता ये कायम रख पाती है, जिसे जीवन के भाग-दौड में बहुत हलके ही मान्यता मिली है ।

अस्सियोत्तर कहानियों में नारी का संघर्ष

अस्सियोत्तर कहानियों में नारी का संघर्ष ज़ारी है । निम्न लिखित शीर्षकों के तहत इसका अध्ययन समीचीन है ।

परंपरा एवं रूढियों के खिलाफ नारी का संघर्ष

परंपरा अतीत का वर्तमान है । इसकी जितनी खूबियाँ हैं उतनी खामियाँ भी । अस्सियोत्तर परिवेश में नारी परंपरा की खामियों से सचेत है और संघर्षरत भी ।

राकेश वत्स की 'सावित्री' कहानी में सावित्री जीवन की कठिनतम यथार्थों से गुज़र रही है । वह ग्रामीण है । उसके शादी शहर के एक महतराने में हुई थी । ससुरालवालों को यह खबर शादी के बाद ही लगी थी कि सावित्री की माँ डायन थी और उसे ज़िन्दा जलाया गया था । सावित्री की बेटी को ससुरालवाले डायन नानी का पुनर्जन्म मानते हैं । किसे न किसी तरह बच्ची से बला छुटाने की खातिर उस नन्हीं जान का पैर रौन्द दिया जाता है । आखिर थकी- हारी सवित्री ससुराल छोडती है, अपने बचपन के किसी मीता के साथ शादी करती है और ससुराल में अपने तीन सालों की मेहनत के बदले तीन हज़ार रुपये नकद का

---

[1]गदल, रांगेय राघव,

प्रस्ताव रखती है, जिससे उसकी बेटी के पैरों का इलाज संभव हो ।ससुराल में शोषण के खिलाफ किस अन्दाज़ में पेश आना चाहिये , वह खूब जानती है ।

गांव की एक रिवाज़ के मुताबिक मात्र लडकियों को जनने वाली औरत 'कुलच्छनी' मानी जाती है । लडका परंपरा को ज़ारी रखता है और लडकी सीधे सर के ऊपर टंकी तलवार है । इस वजह घर-घर में बेटियाँ केवल भरसन की हकदार है । भोजन में भी लडका-लडकी का अंतर मौजूद है । शिवमूर्ती की 'भरत-नाट्यम' कहानी की 'पत्नी' की हकीकत इन हालातों से गुज़रती है । एक तरफ उसके निकम्मा मरदराम जो पढा लिखा है और अपने आदर्शों के पुलिन्दे लपेटे बेकार घूम रहा है । उसको नौकरी कई मिली लेकिन उसका आदर्श उसे कहीं टिकने नहीं देता । सच्चाई चाहे जो भी हो पत्नी के सम्मुख वह निकम्मा है । दूसरी तरफ तीन-तीन लडकियों को जने कोख की स्वामी होने के नाते घर में मिलती तिरस्कार । इन हालातों से निबटने का सरल उपाय एक बेटे का जन्म है । इसलिये वह पति को उकसाती रहती है । मगर मरदराम कहाँ माने । आखिर वह अपने जेठ को कमरे में बुला लाती है, जो दो-दो संड-मुसंडोंवाला महराज है । इसके बारे में अपने पति को सफाया देने में भी उसे गलती नहीं महसूस होती है – " उनकी कोई गलती नहीं है । उनका हाथ पकडकर मडहे से लिवा लायी थी बेटा पाने केलिये।"[1]उस औरत को बेटियाँ वाकई बेकार ही लगती है – ' कोई लडका तो होना चाहिये, बेटियों से क्या होगा ?"[2] इधर मौजूदा पुरुषकामी परंपरा के सामने औरत औरत का ही दुशमन साबित होती है और एक पत्नी अपनी सामाजिक गठबन्धन का अतिलंघन करती है ।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'ग्रहण' कहानी में समान प्रसंग अंकित है । यहाँ समस्या 'बाँझपन' की है । कमी-कमज़ोरी चाहे पुरुष की हो या स्त्री की, बाँझपन का कलंक आखिर स्त्री पर ही लगता है । कहानी में बिरमपाल चौधरी की बहू की कोई शारीरिक कमज़ोरी

---

[1] भरत-नाट्यम, शिवमूर्ति
[2] वही

नहीं है । फिर भी बाँझपन का इल्ज़ाम उसपर ही लगी हुई है । अपमान का घूंट पी-पीकर आखिरकार एक दलित युवक से वह बेटे को जनम देती है । उसकी मजबूरी के सम्मुख जातिपरक हीनता बोध का कोई मायना नहीं रखता ।

भारत के कई गाँवों में अब भी बालविवाह की कुप्रथा प्रचलित है । 'पिल्ले' जैसे उम्र में बच्चों की शादी रचा देते हैं । इसकी वजह यह ठहराते हैं कि माँ-बाप पतोह की मूँह देखे बिना मरना नहीं चाहते। मौत किसी भी समय आ सकती है । उसे टाला नहीं जाता । इसलिये पतोह के मूँह देखने केलिये शादी को थोडा आगे खींचना ही उचित है; इतना आगे कि वर-वधू को भी न मालूम हो जाये कि शादी हो रही है । बाद में तोडना और नया जोडना भी आसान, जैसे माल-मवेशियों की बिक्री । लेकिन गलती का मोल भला बाल वर-वधुओं को ही चुकाना पडता है । अक्सर ये शादियाँ बाद में तोडी जाती हैं और नये सिरे से जोडी जाती है । बचपन से बन्धाये गये सपने होते हैं बेकार । लडकों की तुलना में लडकियाँ ज्यादा झेलती हैं । बालविवाह से ही वह अपने ही घर में पराये की अमानत मानी जाती है । माँ-बाप पराये जैसा व्यवहार करने लगते हैं । फिर सयानी बनने से पहले ही उसकी गौना कराती है और तब से ससुराल में उसकी गुलामी का दौर शुरू । दरअसल यह शादी नहीं सौदा है, बैल-बकरी का सौदा । संजीव की 'अंतराल, कहानी इसका दृष्टांत है । कहानी में माधवी और मनोज के बापू बीच बाल-विवाह हुआ है । नियमित रूप से वह माधवी का पति है ,फरक सिर्फ इतना है कि माधवी की गौना नहीं कराई है और वह माइके में सड रही है । फिलहाल 'मनोज के बापू' को किसी दूसरे घर से रिश्ता जोडने में उसके माँ-बाप को ज्यादा फ़ायदा सूझता है । इसलिये माधवी को 'तिरिया चरित्तर' ठहराकर मनोज के बापू की शादी एक विधवा से कराई जाती है, ताकि उसके भाई के साथ 'मनोज के बापू' की विधवा मौसी की शादी हो जाए । दोनों के सपनों पर पानी फेरी जाती है । इस पर कहानी में एक औरत यों व्यंग्य कसती है – " तुम्हारे घर तो बैल बेचे जाते हैं , मिली जोडी फोडकर भी

बेच देंगे अपने लाभ के लिये, लेकिन आदमी बैल नहीं होता ।"[1] आदमी और बैल के बीच फरक करना उन गँवारों को क्या आता है, मगर माधवी जानती है । अपने बेटे केलिये उसकी बेटी का हाथ माँगते हुए मनोज के बापू को वह बीच में ही रोकती है-"फिर वही भूल ? अरे अगर समय पर होगी तो होगी । आदमी को गाय-बैल समझने का चलन से तो छुटकारा पाइये.......और फिर इस बात की क्या गैरेंटी है कि तुम्हारा बेटा तुम्हारे जैसा नहीं होगा ? माधवी इधर परंपरा की बनी-बनाई लीक को बीच में काटती है ।

शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर' की विमली की भी यही हालत है । उसकी भी बाल-विवाह हुई थी किसी के साथ, जो अब शहर में मज़दूरी कर रहा है । इसके अलवा उसका कोई अता-पता नदारद । सुना है कि नौकरी चाकरी ठीक नहीं है और अपने पेट भर का ही कमा पाता है । इसलिये माँ-बाप रिश्ता तोडना चाहते हैं । लेकिन हकीकत यह थी कि उसके पिता किसी से मिली दस रुपये के हुक्के तंबाकू पर फँस गया था । यह विमली नहीं मानती –" आज सोच सकती है अगर उसमें कोई खराबी हो। कम पैसे ही कोई खराब हो जाता है । बियाह तूने लडके से किया था कि पैसे से ? मेहनत करेगा आदमी तो एक रोटी कहीं भी मिलेगी । आदमी को अपनी मेहनत पर रीझना चाहिये कि दूसरे की पैसे पर ? ....दस रुपये के हुक्के तंबाकू पर तूने अपनी बिटिया को राँड समझ लिया रे ? जिसकी औरत उसे पता भी नहीं और तू उसे दूसरे को सौंप देगी ? गाय बकरी समझ लिया है ?"[2] वह दूसरी शादी केलिये राज़ी नहीं होती है ।

खेती का बँटवारा एक अहम मुद्दा है जिससे दूसरा महाभारत युद्ध शुरू होती है । पहाडी इलाकों में ज़मीन के बँटवारा रोकने के लिये एक प्रथा प्रचलित है, जिसके अनुसार घर में केवल बडा भाई ही शादी कर सकता है और उसकी बीवी सभी भाइयों के लिये औरत बन जाती है । सबका उस पर सामान अधिकार । संजीव की 'हिमरेखा' कहानी के कपिल का धर्म संकट भाभी को इस तरह बीवी बनाने की है । सह सिर्फ सात साल का था जब भाभी उसके घर

[1] अंतराल, संजीव
[2] तिरिया चरित्तर, शिवमूर्ति

आयी थी। तबसे उसका खाना, पीना, नहाना सोना सब कुछ भाभी के कहने पर। उसके लिये वह माँ थी और भाभी के लिये वह पुत्र समान। भाभी कपिल को रो-रोकर समझाती है-"मुझ पर दया करने की ज़रूरत नहीं। हम तो बर्फ हैं बर्फ, ठण्डे ठिठुरे हुए, जमकर पत्थर बन चुके हैं। जहाँ पडे हैं सालों-साल पडे रहेंगे। लेकिन तुम.....पानी हो, बहता पानी। हम तुम्हारी राह नहीं रोकेंगे। महाशुदेव क्षिमा करें, मैं तुम्हें आज़ाद करती हूँ।[1]"उस औरत का हृदय ठिठुरकर पत्थर बन चुकी है, हालांकि कोशिश जारी है।

नमिता सिन्ह की 'बंतो' कहानी का प्रसंग भी काफी मिलता-जुलता है। बन्दो का जीवन ऐसा है मानो भैंस-बकरी की हो। बलबीरा नामक अधेड उम्र की आदमी के साथ ज़बरदस्ती उसकी शादी रचा दी जाती है। उस इनसान की तो बंतो की माँ के साथ भी अनैतिक संबन्ध है। अकाल से अपनी बेटी को बचाने केलिये माँ दिल कडा कर देती है और बेटी अपने गले में पहनाई गई फंदे के खिंचाव के अनुकूल गाय-बछडा सा खींची चली जाती है।मगर वह शादी दो दिन की चान्दिनी और फिर अन्धेरी रात साबित होती है। उसका पति मर जाता है। बंतो सोचती है कि अच्छा हुआ सिर से बला छुटा मगर समस्या दूसरा करवट ले लेती है। जैसे बंतो घर में समस्या बन गयी है, सास उसका एक आसान समाधान ढूँढ निकालती है-दूसरे बेटे द्वारा, जो शादीशुदा है और संतुष्ट है, बंतो को भी रखा जाना। सास देवरजी को बंतो के कमरे में धकेल देती है। लेकिन बंतो हर्गिज़ नहीं मानती वह देवरजी को समझाता है –" जा बीरन जा तेरी लुगाई तेरा इंतज़ार कर रही है। मूँह के ताक रिया है मेरे भैया। जा ...अपनी कुठडिया में जा उसके पास।"[2] वह गँवारिन भला एक और गृहस्थी को डूबने से बचाती है।

जाहिर है अस्सियोत्तर कहानियों में रूढियों एवं पारंपरिक कुप्रथाओं के खिलाफ नारी अपनी आवाज़ बुलन्द करती है। जहाँ कहीं व्यवस्था की शिकर होती है, अपने भीतर विरोध

[1] हिमरेखा संजीव
[2] बंतो नमिता सिन्ह, करफ्यु तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 118

को कायम रखती है। दकियानूसी विचारों के खिलाफ संघर्ष करने तथा उन्हें सुधारने के लिये ये स्त्रियाँ कटिबद्ध है। व्यवस्था के आदी पारंपरिक नारी मन की गलतियों पर अवश्य कुठाराघात करने में इन औरतों की ज़ुबान सक्षम है। इनके सही चित्रण करते हुए कहानीकारों ने ज़रूर अपनी प्रतिबद्धता को ही खुलेआम प्रकट किया है।

पुरुष वर्चस्विता के खिलाफ नारी का संघर्ष्व

आम औरतों की ज़िन्दगी मानो दुधारी तलवार की चोट है, एक तरफ ज़िन्दगी की मार तो दूसरी तरफ पहचान की वार। पतिदेव का तो मार का अधिकार परंपरा सिद्ध है। औरतें अक्सर सोचा करती थी कि 'मरद अगर लुगाई को मारकर वश में न करें तो मरद काहे का'। शिवमूर्ति की 'सिरी उपमा जोग' कहानी में एक पतिपरायण औरत का चित्रण है। वह औरत अपने होशियार पति को पढाकर ऐ. ए. एस. कराती है। वह स्वयं पति की खेती संभालती है, और अपने साथिनों की मूँह से ताने भी सुनती रहती है जैसे-" खुद ठोयेगी गोबर और भतार को बनायेगी कप्तान "[1] पती तो बन जाता है कलक्टर लेकिन वह औरत कहीं की नहीं रह जाती है। पति के कलेक्टर बन जाने से मामला और बिगडती है। अब पति-पत्नी के बीच सांस्कृतिक ,वर्गपरक आदि कई अंतर मौजूद होते हैं और वह भोलीभाली औरत स्वयं पति के लिये अयोग्य मानने लगती है। वह पति को सलाह-मशविराह करती है - " फिर आप शादी क्यों नहीं कर लेते वहीं किसी पढी-लिखी लडकी से, मैं तो शहर में रहने लायक नहीं रह गयी हूँ"[2] पति का उद्धार तो वह औरत कर पायी मगर स्वयं गिरती चली गयी। उसको सतह पर लाने की ज़रूरत पति ने भी नहीं समझा। नतीजतन अंतर बढता है और पतिदेव बेशक दूसरी शादी करता है और हमेशा केलिये शहर चला जाता है। उसे कोई मनुहार देना भी पति को जायज नहीं लगता –" वे इस बार कोई आस्वासन नहीं दे पाये थे। उसका रोना-धोना उसे काफी अन्य मनस्क कर रहा था। वे उकताये हुए से थे। अगले दिन

---

[1] सिरी उपमा जोग, शिवमूर्ति, केशर-कस्तूरी, पृ.64

[2] वही. पृ. 161

ही वे वापस जाने को तैयार हुए थे । घर से निकलने लगे तो वह आधे घण्टे तक पांव पकडकर रोती रही थी । फिर लडकी को पैरों पर झुकाया था । नन्हे लालू को पैरों पर लिटा दिया था, जैसे सबकुछ लूट गया हो, ऐसी लग रही थी वह दीन, हीन, मलिन"[1] वह पति के खिलाफ एक लफ्ज़ भी बोल नहीं पाती ।

संजीव की 'जसी-बहू' कहानी का जसी शादी के बाद बहू के जिम्मे में अपने परिवार का भार सुरक्षित कर शहर गया हुआ है । मगर लौटने का नाम नहीं लेता है । खेती-बाडी बहू अकेली संभालती है । केवल रात को ही नल में पानी खुलता है । उससे वह खेती सिंचाती है । लाखों कोशिशों के बावजूद वह गाँववालों की बुरी नज़र से बच नहीं पाती । गाँव का मुखिया उसे समझाता है कि 'खेती-गिरस्ती बिना किसी दरवाज़े की टाटी के नहीं निभती' । लेकिन वह कतई तैयार होती हैं । पति के रहते हुए गैर की औरत बनना उसे स्वीकार नहीं है –" दरवाज़े की टाटी!....एक पती के रहते हुए दूसरे को बैठ जाऊँ, छिः यह कुकर्म नहीं हो पायेगा उससे "[2] उसका भी जी ललचाता है किसी की 'गिरस्ती' संभालने का । 'खदेरन' को तो वह चाहती भी है, जो अक्सर उसकी मदद करता रहता है । लेकिन जसी की वजह से वह कलेजा पत्थर कर बैठी है । वैसे भी उसके जिस्म के आशिकों की कोई कमी नहीं है गाँव में । हालांकि बहानेबाज़ी करके वह बचती रहती है । आखिर एक दिन रात की आड लेकर आम की बागान से आम चुराते हुए सितई पण्डित उसे दबोच लेता है । वह उसे आम की तरह निचोडता है और अपना 'कोढ' बहू की कोख में फोडकर ही अपनी हवस शांत करता है । सालों के बाद जसी जब लौटता है तो खबर सुनकर अवाक रह जाता है और वह मण्डी का हारा आखिर बहू को ही मारता है । पति की मार मानो लुगाई की हार है, लेकिन बहू नहीं मानती है । वह चीखती-चिल्लाती है कि जसी को पहले अपने बीवी की इज्जत के लुटेरों से बदला लेना चाहिये –"मोका मार डार रे, मुदा पहिले चन्दरेज़ सिंह और सितई पण्डित से

---

[1] वहीं,
[2] जसी-बहू, संजीव, संजीव की कथा यात्रा,

हिसाब-किताब चुकाता करि आऊँ ।" [1] लेकिन प्रधान के सामने जसी-डरपोक का मूँह कहाँ खुलता है । उनके सारे आदेशों को आदर्श नौकर की मानिन्द 'जौन हुकुम मालिक' कह कर शिरोधारण कर लौटता है । इससे बहू को अपने पति के प्रति जो आदर था वह मिट्टी में मिलता है । वह अपने सिन्दूर पोंछ डालती है और चूडियाँ तोडकर गरजने लगती है –" जैन भतार की शेखी से सुहागिन बनी रहे, अ भतार मरि गा रे ।"[2]

शिवमूर्ती की 'भरतनाट्यम' कहानी की 'पत्नी' का संघर्ष वाकई एक बेटा पाने केलिये है ताकि अपने ही परिवार में बेटे को जन्म देनेवाली माँ का सम्मान हासिल करें । घर में उसका पति न उसकी सुनता है और न उसकी ज़रूरतों पर ध्यान देता है । पति की उपेक्षाभरी अन्दाज़ के खिलाफ उस औरत की प्रतिक्रिया काफी दिलचस्प है । वह औरत लडके की कामना में पहले अपने जेठ को ही अपने कमरे बुलाती है और शहर के किसी दरजी के साथ भाग चली जाती है ।

संजीव की 'अंतराल' कहानी में पतिदेव की बुतपरस्ती पर एक औरत की प्रतिक्रिया इस तरह है-" हूँ बहादुरी आयी मगर देर से ! एक पौधे को कितनी बार उघाडकर रोपेगा ? उसकी भी जडें होती है कि नहीं "[3]बरसों के बाद किसी मेले में अपने बाल-ब्याहे पति को पाकर माधवी इस तरह पूछ बैठती है । उसका बाल-ब्याहा तो घरवालों की खातिर पुतली नाच कर किसी गैर की गृहस्थी संभाल रहा था । माधवी को भी किसी बेमोल शादी में बन्धनी पडी थी । अब मनोज का बापु उसे दोबारा पाना चाहता है तो वह साफ मना करती है, मानो वह कोई रण्डी वगैरह नहीं जो पत्ते के अनुसार थिरकती है । माधवी समस्या को समझती है । पुरुष की कामचलाऊ नीति से भी वाकिफ है । साफ इनकार करती है-"सब कुछ छोडकर कैसे चल दूँ तुम्हारे साथ औरों ने क्या अपराध किया है कि उनको हमरी सज़ा मिले? यह सब किसका कसूर है मनोज के बापु, हम गरीब गँवार लोग हमारी ज़िन्दगी भी

[1] वही, पृ. 126
[2] वही, पृ. 126
[3] अंतराल, संजीव, स्ंजीव की कथा यत्रा:पहला पडाव, पृ.233

क्या है ।कच्ची उमिर में भी जोत दिये गये गोरू की तरह.....पचासों डर पाले एक दूसरे से लडते हुए.....ऊपर से बिरादरी का बरगत-टोह-ही-टोह ! चेतन के पहले ही उसके नागपाश में जा अटके अब दूसरी भूल यह कैसे करें कि कायरों की तरह सबको उसी हालत में छोडकर भाग चले । जो भूल हुई सो हुई, अब से भूल न हो ताकि बच्चे तो बचे रहे । वह पुरुष को भी दोषी नहीं मानती । उस औरत का त्यक्त जीवन आगामी पीढी को समर्पित है ।

पुरुष तो वाकई नारी को अपना अधीन करना चाहता है । नारी का सर उठाना वह नहीं सह सकता । मार-पीट से लेकर वाक-बाण तक का वह प्रयोग करता है । जसी-बहू कहानी में औरत की आत्मपरायणता को टोकते पुरुष समाज को हमने देखा । संजीव की 'माँ' कहानी की माँ भी इन्हीं हालातों से गुज़रती है । पति ने गैर के साथ रिश्ता जोडने की कोशिश की । इस वजह माँ ने उसे अपने से अलग किया है । पुश्तैनी खेती वह औरत अकेली संभालती है । हालांकि दादा-देवर, भांझे-भतीजे, बेटे-बेटियों के हिस्से की उपज वह बांट-बांटकर देती है । बिना कोई मेहनत, वे बन जाते हैं मालामाल मगर उस औरत की आत्मनिर्भरता उन्हें अखरती है । वे बीच बीच में उसे टोकते हैं । हलवाहे के साथ अनैतिक संबन्ध ठहराकर उसे भीड में अकेला कर देते हैं । अकेले लडती-घटती वह गैंग्रीन की मरीज़ हो जाती है और उसके दोनों हाथ-पैर काट दिये जाते हैं । लेकिन मौत भी उसे हरा नहीं पा रही है । श्मशान तो उसके लिये कोई मुकाम थी ही नहीं, बल्कि सिलसिलेदार फैली अपनी ज़िन्दगी ही थी-"श्मशान कुछ और नहीं होता यह ज़िन्दगी ही श्मशान है । जनते ही मौत की तरह हमें कातने लगती है, कगार गिरते रहते हैं, कभी अर्राकर कभी चुपचाप, आवाज़ तक नहीं होती मौत और श्मशान कोई एक मुकाम नहीं फैला हुआ सिलसिला है ।"[1] मौत से वह क्या हारी । पुरुष मेधा के छूटे आरोप ही उससे हारती है । 'जिसे जो कहना है, हमसे कहे, सामने पीठ पीछे नहीं "[2] मृत्यु की शय्या पर भी अफवाहों का मूँह बान्धती उस औरत का आत्मबल सराहनीय है । वह पति-बेटे और अन्य सभी पुरुषों को हतप्रभ करती है ।

[1] माँ, संजीव, संजीव की कथा यात्रा, पहला पडाव, पृ.149
[2] वही, पृ. 152

नमिता सिन्हृ की 'दर्द' कहानी में एक माँ-मज़दूरिन का चित्रण है जो पुरुष वर्चस्विता के खिलाफ आवाज़ उठाती है। समाज में पुरुष चाहे कुछ भी कर सकता है। वहीं काम अगर स्त्री करे तो अपराध माना जाता है। बेडियाँ हर कही नारी पर लगाम है। कहानी में रमिया की बेटी सुन्नरी की शादी कायदे के अनुसार बिरादरी में ही की जाती है। जबकि सुनरी का पति अपनी भाभी पर ही अटका हुआ है। उसको सुनरी की गैर हाज़िरी ही ज्यादा पसन्द है। तनाव में आकर सुन्नरी किसी गैर बिरादरी के साथ भाग चली जाती है। अब बिरादरी का कानून भंग हो गया है तो उसकी सज़ा रमिया को ही मिलती है। बिरादरी की यही नीति है जानो गधा खेत खाय और जुलाहा मार खाय। सवाल आखिर इज्जत पर लगती है तो बेटे को माँ माँ नहीं डायन है। लेकिन रमिया के मूँह वे बन्द नहीं कर पा रहे हैं- " तू भी (पति) आज बहुत इज्जतदार हो गया है। ऊँची जातवाला बन गया है ......तू मुझे कौनसा ब्याह कर लाया था। मेरे शराबी बाप तो बेचे जा रहा था मुझे। तू मुझे बचाकर लाया। मैं समझी थी कि देवता मिल गया मुझे। भगवान की तरह ज़िन्दगी दी मुझे। अरे तब कोई हमारी जान लेने आया ? तब किसी ने गोली पार की हमारे ? और ये औलादे मेरी जान ले लेंगी। साँप पाले मैं ने अपनी कोख में ...ज़हरीले साँप....।"[1] इसी बिरादरी के उसूलों की बात बताने वालों से वह पूछती है –" वाह वाह क्या न्याय है, धन्य हो। तुम चमार की लौंडिया भगा लाओ तो सब ठीक। बहुत बडा काम, तुम्हारी लौंडिया किसी के साथ चली जाए तो बहुत गलत, पाप, क्या न्याय है वह..."[2] पुरुष और नारी के बीच सामाजिक भेदभाव वह नहीं मानती।

उषा महाजन की 'सच तो यह है' कहानी की रूनू स्वावलंबन केलिये अपने पति से लडती है। अपनी मेहनत की कमाई से वह बच्चों को किसी अच्छे से अच्छे संस्था में पढाना चाहती है जबकि उसका पति कमाई को मौज-मस्ती में उडाना चाहता है। वह औरत

[1] दर्द, नमिता सिंह, कर्फ्यु तथा अन्य कहानियाँ, पृ.100
[2] दर्द, नमिता सिंह, कर्फ्यु तथा अन्य कहानियाँ, पृ.99

आखिर अपनी माल्किन की मदद से बैंक में खाता खोलती है, ताकि उसकी कमाई उसके अलवा कोई और न हाथ लगा पाये ।

शैलेन्द्र श्रीवास्तव की 'चाल' कहानी में एक औरत अपने मरद को छोडती है और गैर की गृहस्थी संभालती है । दर असल उसका पति पियक्कड था । वह हर रोज़ नशा में उस औरत को पीटता था । आखिर तंक आकर वह गैर के साथ भाग जाती है । लेकिन उस अभागिन की दूसरी गृहस्थी भी गलत निकली । दूसरा भी आखिर निकम्मा साबित हुआ तो वह अपनी खोली में लौटती है, इसलिये कि खोली आखिर उसके नाम पर है । उसी ने ही पति को उस खोली में ले आया था । पहला पति चाहे उसे स्वीकारे या ठुकरा दे, उसे अपनी खोली वापस चाहिये थी । सारे मरद यदि एक सामान निकम्मा है तो वह उनके लिये अपना खोली क्यों छोड दे – "यह खोली मेरी है । मैं ने ही इसे अपना मरद बनाकर इस खोली में रखा था । मुझे नहीं अपनाना चाहता तो न सही,पर खोली में रहने का अधिकार मुझसे नहीं छीन सकता "[1] उस औरत के सामने परिवार से ज्यादा ज़िन्दगी प्रामाणिक है । उसके सम्मुख सभी पुरुष समान है । मरद की भूमिका कोई भी आदमी कर सकता है । इसलिये मरद से ज्यादा उसे खोली की फिक्र है ।

पुरुष की भोगलिप्सा को ललकारती एक वेश्या का चित्रण संतोष श्रीवात्सव की 'यहाँ सपने बिकते हैं' कहानी में मौजूद है । दर-असल वह औरत दलालत से भरी जीवन को स्वेच्छा से चुनती है । वह देखना चहती है कि आखिर पुरुष में कितना दम होता है –" देखना चाहती हूँ कि पुरुष में आखिर कितना भूख है, कब थकेगा वह? कब तृप्त होगा वह । इस आदिम भूख को अगर एक अंश भी मिटा पायी तो अपनी साधना को पूर्ण मानूँगी । अरे हम तो नलियाँ है, जो पुरुष के मन के, दिमाग के, वासना के तमाम कचरे को नहा ले जाती है ताकि आप जैसे सुहागिनों का घर न उजडें "[2] ,उस औरत के फैसले के सामने समस्त पुरुष-महिमा मिट्टी में मिलती है । उसकी भाई ने ही सर्वप्रथम उसे विदेह किया था । फिर उसके

---

[1] चाल, शैलेन्द्र श्रीवास्तव,नवें दशक की कथायात्रा, सं. धर्मेन्द्र गुप्त,पृ. 173

[2] यहाँ सपने बिकते हैं, संतोष श्रीवात्सव, वसुधा-59 -60

पति ने अपनी उत्कर्षेच्छा के सामने उसकी बलि चढायी । पति ने उसे किसी फिल्म निर्माता को परोस दिया था । आखिर वह स्वयं वेश्यावृत्ति अपना लेती है ।

नमिता सिंह की 'गणित' कहानी के रामलाल पत्नी को किसी खरीदी हुई चीज़ मानता है। वह अपने दूकान में बेमोल काम कराने के उद्देश्य में एक औरत को ब्याह ले आता है । औरत के आने में उसे मुनाफा ही दिखाई पडता है –" लुगाई का आना कोई घाटे का सौदा नहीं होगा । आनेवाली पूरी काम संभालेगी । खाना पकाने से लेकर बरतन की सफाई तक । न तनख्वाह की चिक-चिक न काम की झिक-झिक । सिर्फ खाना और कपडा तक मामला रहेगा । औरत से जो बाकि आराम होते हैं सो अलग । उसकी वजह ग्राहक भी बढेंगे "[1] रामालाल के लिये स्त्री मशीन से ज्यादा कुछ नहीं है जो खाना कपडे के तेल डालने पर सारा काम संभालती है । अच्छा खासा मुनाफे का गणित । मगर लुगाई के आने पर उसका सारा गणित गलत सिद्ध होता है । वह औरत जितना काम करना जानती है, उतना हक जताना भी जानती है । एक दिन एक बडी गिलास में चाय पीते हुए रामलाल उसे टोकता है । उसे पीटने केलिये वह डण्डा ले आता है, जिससे वह सभी को पीटा करता था । मगर इस बार वह शेरनी से ही भिडा था । 'लुगाई' उसका डण्डा छीन लेती है और उसे आग में झोंककर साफ कह देती है-"ज़बान संभाल रे ! हराम का कुछ भी नहीं, दिन-भर हाड तोडती हूँ "[2] ईण्ट का जवाब पत्थर से देना कोई उस औरत से सीखे ।

ऋता शुक्ला की कहानी 'छुट्कारा' का बसंतू मिसिर जब चाहे जहाँ चाहे नारी का उपभोग करने में माहिर है । लेकिन जब कमली पर झपट्टा मारा तो हाथ आखिर जल ही जाता है । कमली तो निकली भला 'सिंह की मेहरारू' । वह थाने में मुकदमा दर्ज करती है और समझौता माफिक सीधा शादी का प्रस्ताव रखती है –" क्यों मिसिरजी, बिना माई बाप की अभागिन लडकी के साथ ज़बरदस्ती करने कौन आया था ? तुम्हीं न हम नान्ह जातवालों की भी अपनी इज्जत है मालिक ।.......सच्चे बडपन के पूत हो तो इतनी हिम्मत रखो कि

[1] गणित, नमिता सिंह, कर्फ्यु तथा अन्य कहानियाँ
[2] वहीपृ.46

अपनी बिरादरी के सामने हमारा हाथ पकडकर अपने घर में बिढा लो "[1]आखिर बसंतू मिसिर को कमली को स्वीकारना ही पडता है । हालांकि उस शादी को भी वह फायदे में बदलना चाहता है । दलित औरत के साथ हुई शादी को दलितोद्धार का सफल कदम घोषित कर वह एम.एल.ए बनता है तो खुद का उपभोग सहे बिना कमली उसका घर छोडती है, और अपना अलग रास्ता चुनती है ।

स्वयं प्रकाश की 'बलि' कहानी में पती की मार खा-खा कर एक औरत आखिर आत्महत्या का रास्ता अपना लेती है । उसका पति तो था ही नीरा गँवार, उसकी राय में लुगाई को मारना पुरुषत्व को जताने का आसान तरीका है । और वह लडकी, वह सपना देखना पसन्द करती थी । उसके सुन्हरे सपनों में कहीं पति मार-पीट के अधिकारी या राक्षस नहीं था, वह पति को सहचर मानती थी । मगर उसकी हकीकत की दुनिया ठीक उलटा । पति उसे हर-रोज़ वजह-बेवजह पीटा करता था ।वह जिस गाँवांचल को जानता था उधर पत्नी को मारना सहज था और पत्नी से उसकी उम्मीद थी कि वह पहली ही मार में दहाडे मारकर रोये या पलटकर वार करे, जैसे गाँव के अन्य स्त्रियाँ करती रहती हैं । मगर लडकी चुपचाप सहती रही । उसकी चुप्पी को पति समझ भी नहीं सकता था । आखिरकार एक साल की पीडा सहन के बाद एक रस्सी की फंदे पर अपनी निराशात्मक जीवनलीला समाप्त करती है ।

जाहिर है कि अस्सियोत्तर कहानियों में आम औरत पुरुष वर्चस्विता के खिलाफ संघर्षरत है । कहीं वह पलटकर वार करती है तो कहीं स्वावलंबन की राह पकडती है । कभी वह घर छोडती है तो कभी चीख-चिल्लाकर असहमति अदा करती है । कभी अशाहीन आत्महत्या कर लेती है । हालांकि कुछ कहानियाँ ऐसी भी है जिनमें औरत पति की मार को प्यार की निशानी समझ कर मिटने नहीं देती हैं । संजीव की 'संतुलन' कहानी की अभिनेत्री 'जोहरा बाई' अपने पति की मार की निशानी को मुहब्बत की निशानी समझती है –

[1] छुट्कारा, ऋता शुक्ला, ग्राम्य जीवन की कहानियाँ, सं.गिरिराज शरण, पृ. 35

“मिटाऊँगी क्यों (मार की निशानी को) वई मार तो हमारी मोहब्बत की निशानी है । साहब जहाँ जहाँ उसने मारा है , उन जगहों को साथ दिनों में मैं ने सत्तर बार चूमा है ”[1] दर असल अभिनय एवं हकीकत के बीच फरक करना उसका पति नहीं जानता था । अपनी औरत को गैर के साथ देखना चाहे वह अभिनय ही क्यों न हो, उसके लिये असह्य था । इसलिये उसने जोहरा बाई को मारा था और पिछले पैंतीस सालों उसकी यादों में अकेले जी रहा था । और जोहरा बाई केलिये उसकी मार की निशानी प्यार का सबूत है । इस अजब प्रेम कहानी के सामने पुरुषवर्चस्विता सन्देहास्पद है। कहानीकार लिखता है-“ वे दाग मुहब्बत के थे ,या गुलामी के, यह रहस्य उसी तरह गढा था, जैसे ज़िन्दगी और अभिनय का संतुलन ।”[2]

अब्दुल बिस्मिल्लाह की ‘दण्ड’कहानी की लखिया की मानसिकता भी समान है । उसका पति उस पर शक करता है, इसलिये की वह बडी रूपवती है । दो बार उसकी इज्जत पर वार हो चुकी है । इसलिये पति घबाराया हुआ है । उसका मन हीनता से ग्रसित है और अक्सर छोटी-छोटी गलतियों पर पत्नी को मारता रहता है । लेकिन वह जितना मारता है उससे ज्यादा पत्नी को चाहता भी है । लखिया भी नन्दू से उतना ही प्यार करती है –“ मुझपर तुम नाहक शक करते हो । कहो तो कहीं नहीं जाऊँगी अब से । तुम जो कहो करने को तैयार हूँ .....मुझसे नफरत है तो मार डालो मुझे ”[3] ।‘सिरी उपमा जोग’ की तरह लखिया को भी पति परमेस्वर समान है । पुरुषवर्चस्विता को इस दर से देखती कहानियाँ भी अस्सियोत्तर माहौल में मौजूद है ।

परिवार में नारी का संघर्ष

विवेच्य काल सीमा के तहत रिश्तों के भीतर जकडते नारी जीवन के कई दस्तावेज़ मौजूद है । सर टिकाने केलिये एक छत की तलाश प्रत्येक निम्नवर्गीय जीवन की हकीकत है ।

---

[1] संतुलन, संजीव, संजीव की कथा यात्रा : दूसरा पडाव, पृ.187

[2] वही.,पृ.187

[3] दण्ड, अब्दुल बिस्मिल्लाह, नारी उदपीटन की कहानियाँ, सण. गिरिराज शरण, पृ.16

उस मकान को खडा करते हुए अपने घर को ही डुबोते अवाम की संख्या बहुत है। राम दरश मिश्र की 'मुक्ति' कहानी में इस तरह जीना-भूले एक पिता एवं उनके तीनों बेटियों का चित्रण हुआ है। वह पिता अपने मकान को खडा करने की खातिर रातों दिन बिना विश्राम 'टाइप राइटर' चलाता रहता है। उसकी दोनों बडी लडकियाँ चर्खा कातती रहती हैं। पिता उनकी शादी करना नहीं चाहते हैं। चर्खा चलाते चलाते एक तरफ दोनों लडकियाँ टि. बी. का शिकार होकर मिटती जा रही है तो दूसरी तरफ मकान धीरे-धीरे बनता जा रहा है। लेकिन उस परिवार की छोटी लडकी अलग से सोचती है। वह पढना चाहती है मगर पिता पैसे नहीं देते हैं। भर पेट खाने की उसके मन में बडी आस है, मगर किश्तों में मिलती रोटियों में एक-आध ज्यादा मिलने का सवाल ही नहीं होता। वह छोटी लडकी अपने पिता और बहिनों की तरह मशीन का पुर्जा बनना नहीं चाहती। वह किसी लडके को पटाकर उसके साथ भाग जाती है। छोटी लडकी को छोड उस परिवार के अन्य सदस्यों की लडाई आखिर मकान केलिये हैं, मगर छोटी लडकी 'चन्दा' अपने घर के लिये लडती है।

स्वयं प्रकाश की 'बलि' कहानी की 'लडकी' भी घर के लिये संघर्षरत है। बचपन से ही वह नौकरानी के रूप में एक उच्च मध्यवर्गीय परिवार के साथ रह रही है। उसकी सारी कमाई पिता हडपता था। शादी की उम्र में पिता उसे गाँव ले आता है। मालिक के घर से उसे मिले सभी उपहारों को बेचकर वह मौज मस्ती करता है और एक निरा गँवार के साथ उसकी शादी रचा देता है। 'लडकी' के पास मात्र उसके अधूरे सपने रह जाते हैं जो उस उच्च मध्यवर्गीय परिवार से विरासत बतौर उपलब्ध थे। उसके सपने में अपना एक घर था, खुशियों का आंगन था –"लडकी सपना देखती है।....हरी घाटी में लाल कंवल की छतवाली एक झोंपडी है। छत पर कद्दू की बेल चढी हुई है और उनमें पीले-पीले फूल खिले हुए हैं। आंगन में एक खटिया पर पडा रामेश्वर (उसका प्रेमी) ट्राँसिस्टर सुन रहा है और वह घर के भीतर आजवायन के पत्ते के भजिये छान रहीं है।.....साइकिल पर बैठकर ऑफीस जा रही है और स्कूल की यूणिफोर्म पहने एक छोटी गोल-मटोल बच्ची अपनी नन्हीं हथेली नचाते हुए

दरवाज़े पर खडी टा-टा दे रही है"[1] मगर उसके सपने का और हकीकत का कोई संबन्ध नहीं रहा । हकीकत ऐसा था मानो सपने का ठीक विलोम । वजह-बेवजह मारता पति और मौके बेमौके लूटते पिता । आखिर वह आत्महत्या पर आश्रय पाती है ।

स्वयं प्रकाश की 'तीसरी चिट्ठी' कहानी में एक औरत-रजनी शर्मा, अपना मंगेतर स्वयं ढूँढती है। घर की कमाऊ औरत होने के नाते उसकी माँ-बाप उसकी शादी नहीं करना चाहते हैं। पिता का कारोबार डूब चुका है , वह शराबी हो चला है, बडी लडकियों की शादी हो चुकी है और उसका करज सर के ऊपर है । अब वह रजनी की कमाई पर पेट पालता है । इसलिये उसकी शादी नहीं करना चाहता है । शादी में राज़ी हुए लडकों को बिना देखे ही 'रिजेक्ट' कर देता है । आखिर रजनी शर्मा अपनी तरफ से विज्ञापनों को जवाब देने लगती है । कहानी में औरत का स्वावलंबन भी एक हादसा बन जाता है ।

राजी सेठ की 'योगदीक्षा' कहानी में भी समान सन्दर्भ मौजूद है । कहानी का 'वह' पहले ही से बीमार है । आस्तमा की मजबूरी को भूलकर सुबह-सुबह भूखे पेट तीन-तीन घरों में योगा की 'ट्यूशन' लेने जाती है । हर दिन प्रायः दस ग्यारह बजते ही उसकी भूखी आंतडियों को भोजन नसीब होता है । बडे-बडे घरानों के दानवी भोजन को वह चोरी से, ललचायी नज़रों से अक्सर देखा करती है, जहाँ वह ट्यूशन लेने जाती है –" सुबह की पाँच-छह घण्डे । जैसे तेज़ हवा में भूखा-प्याज़ा पंझी इधर से उधर, उधर से इधर डोलता फिरे । अक्सर उसकी इच्छा होती है वह बिस्तर से ही न उठे । पहले एक घंटे की साधना अपने लिये, फिर लिज़ा, साधना दीदी, सेठानी के बीच फिरकी-सी घूमना, भूखे, प्यासे, थके । हर दिन भूख से लडना पडता था, उस एक दिन केलिये, जो तीस दिनों के बाद आता था । इतने रुपयों में जब उसकी झोली भर जाती तो वह सब भूल जाती-लिज़ा के दानवी ब्रेक्फास्ट के

[1] बलि, स्वयं प्रकाश, हंस,आगस्त 2006, पृ.36

सम्मुख लार पी-पीकर और अधिक कुलबुलाती आँतें, सेठानी का आतंक भरा शोषण और साधना दीदी के आतंक भरा प्रश्न....पूरे साढे तीन सौ रुपये "[1]

जबकि घर में वह कमाऊ औरत है, उसे अपनी नहीं दूसरों की चिंता में गलनी चाहिये। घर की बडी लडकी होने के बावजूद उसकी शादी टाल दी जाती है। दुख-दर्द सभी मात्र उसके हिस्से में और सुख-सन्तोष में जानो सबके लिये हिस्सा बराबर। उसकी सारी कमाई वह चाहे जितनी भी निम्नतर हो, घर की चूल्हे में जल जाती थी। माँ उससे अगली फर्माइश प्रस्तुत कर रही है –"सुन अब दीपी-मुन्नी केलिये दो-दो चार-चार चीज़ें बनाने की फिकर....आगले अगहन में दोनों के हाथ पीले हो जाये, तो गोपाल की तो कोई बात नहीं "[2] चाहे वह माँ की मजबूरी जानती हो, अगली सुबह सर्वप्रथम अपनी पेट की चिंता करती है। लिज़ा बाल्टलीवाले के घर से योगा के सारे उसूलों को भूलकर, वह खाना खाती है, जबकि योगा के एक घंटे बाद ही खाना पेट में आना चाहिये था।

संजीव की 'माँ' कहानी में एक कर्मपरायण औरत का चित्रण हुआ है। उसका सारा परिवार बंटा हुआ है। लेकिन पुश्तैनी खेती वह औरत अकेली ही संभालती। पति उससे अलग रहता है, बेटे सभी ब्याहकर अलग से रहने लगे हैं। फिर भी फसल काटने पर अपना अपना हिस्सा बांटने के लिये ज़रूर आ टपकते हैं। माँ सबको अपना अपना हिस्सा सौंपती है और स्वयं भूखे पेट सोती है। उस औरत की मदद के लिये एक 'समीर' बचा था, जो उनका हलवाहा था। बेशरम औलादें और अन्य रिश्तेदार उस औरत को और हलवाहे को जोडकर किस्सा बोने लगे हैं ताकि अपनी अहं को थोडा चैन आ जाए। लेकिन वह औरत अफ्वाहों को अनदेखा करती है और ज़िन्दगी को अपनी उसूलों से जीती है। रिश्तेदारों की नृशंसता के खिलाफ एक लफ्स तक नहीं रटती है और न उन्हें अपनी ज़िन्दगी में हिस्सा देने को राज़ी

[1] योगदीक्षा, राजी सेठ, नौकरी पेशा नारी: कहानी के आइने में' सं. गिरिराज शरण, पृ. 124
[2] वही, पृ. 125

होती है। वह श्मशान को स्वयं चुनती है, जो उसके लिये कोई मुकाम नहीं बल्कि फैली हुई ज़िन्दगी है।

शिवमूर्ति की 'केशर-कस्तूरी' कहानी का केशर पूरे परिवार का भार अपने सिर पर ढोती है। उसका पति बीमार है जो ईण्ट के भट्टे में मुंशीगिरी करता है और हफ्ते में या दो हफ्ते में एक बार ही घर आ पाता है। खेती-तथा वृद्धजनों की देखभाल केशर अकेले ही करती है। दिन की मेहनत के बाद रात को वह सिलाई का काम भी करती है ताकि कुछ अतिरिक्त आमदनी मिल जाये। काम की व्यस्तता में उसकी नवजात बच्ची निमोणिया से मरती है। जेठ और जेठानी केशर की व्यवहार से असंतृप्त हैं। वे उसके खिलाफ अफवाहें फैलाते हैं और उसका पति भी उसे मारने लगता है। मगर केशर है कि सबकुछ सहती रहती है। उसके दुहाल देखकर उसका'पापा' उसे घर ले आना चाहता है। पर केशर नहीं मानती – 'मेरी सोच में अपनी देह न गलाइयेगा। जितने दिन आपकी बारी फुलवारी में खेलना-खाना बढा था, खेले-खाये। माँ-बाप जनम के साथी है पापा; करम-रेखा तो सभी की न्यारी है। जब जनक जैसे बाप, जो राजा भी थे और ब्रह्म-ज्ञानी भी, जिनकी इतनी औकात थी कि सौ बेटी-दामादों को घर-जमाई रखकर उमर भर खिला सकते थे-तीन लोक के मालिक से बेटी ब्याहकर भी। उमर भर उसे सुखी देखने को तरस गये तो हम गरीब लोगों की क्या औकात ?"[1] अपने जीवन,चाहे वह जितनी भी विडंबानाओं के अधीन हो, डटकर उसका सामना करने के लिये वह औरत तैयार है। उसका संघर्ष पूरे परिवार केलिये है।

बापू भला न भैया, सबसे बडा रुपैया। रुपया जब बीच में अटकता है, तो रिश्ते बिखरने लगते हैं। मिथिलेश्वर की 'जी का जंजाल' कहानी की माँ दुविधा ग्रसित है। उसके पास बैंक में थोडे पैसे बचे हुए हैं, जो उसके बुढापे को सुरक्षा के लिये की गयी प्रिय पति की सफल कार्यवाही थी। लेकिन वह धन उसके लिये अभिशाप समान सिद्ध होता है। उसके चारों बेटों ने मिलकर उसे चार किश्तों की अलग-अलग फिक्सड डेपोसिटों मे बाँट रखे हैं

[1] केशर-कस्तूरी, शिवमूर्ति, केशर-कस्तूरी, पृ. 162

ताकि पैसे और बढें और सुरक्षित रहें । उसे और कोई क्या, माँ भी नहीं हाथ लगा सके । कहने केलिये वह उस परिवर की माँ है , मगर उसका स्थान नौकरानी से भी बदत्तर है । जिस तरह बच्चों ने पैसे को बांटा हैं ठीक उसी तरह माँ की ज़िम्मेदारी भी बांट चुकी है । यह पारी निर्धारित कर ली गयी है कि माँ प्रत्येक बेटे के घर तीन-तीन महीने रहेगी । लेकिन माँ को प्रत्येक घर में सूखा ही नसीब होता है । माँ के प्रति बेटों का एकमात्र आकर्षण पैसा ही है और माँ भी उससे अच्छी तरह वाकिफ है । इसलिये वह फैसला लेती है कि जीते जी पैसों पर से अपना कब्जा नहीं छोडेगी अलबत्ता –" रुपये हैं तब तो उनकी यहीं स्थिति हैं,. नहीं रहेंगे तो लडके और बहुएँ बाह पकडकर अपने दर्वाज़े से निकाल देंगे । पैसे उस केलिये डूबते को तिनके का सहारा बन जाती है। वह उसके लिये ज़िन्दगी और फालतूपन के बीच की नाज़ुक कडी है, वह पैसे पर अपना अधिकार नही छोड सकती ।

'जी का जंजाल' में पैसे वाकई माँ की ज़िन्दगी को सँवार सकता है, लेकिन एक वक्त की सूखी रोटी की खातिर झूठी कहानी के साथ बहती बूढी दादी की कहानी उदय प्रकश की 'छप्पन तोले का करधन' में विद्यमान है । दादी के पास न पैसे का सहारा है, न रिश्तेदारों की सहानुभूति । उसके सामने ज़िन्दगी मौत से ज़्यादा घृणास्पद है । मगर मौत भी भला उसके पास आने से डरती है, मानो उसकी जर्जर-कंकाल से बहती बू दम घोटती हो । दादी छप्पन तोले के करधन की बनी-बनाई दंत कथा को गले से लगाती है । न उसे वह गलत ठहराती है और न सहीं । घर की आर्थिक तंगी से उबरने का एकमात्र उपाय वह करधनी ही है । इसलिये बेटे-बहुएँ उसे ताना जितनी दे सकती है, देते हैं । कभी लगातर दस पन्द्रह दिनों तक उसको खाना नहीं देते हैं तो कभी उसके भोजन में मिट्टी मिलाकर परोसा जाता है । सभी चाहते हैं कि वह औरत किसी न किसी तरह मर जाए और ज़मीन खोद-खोदकर भी करधनी वसूला जाय । लेकिन दादी है कि कुछ बोलती भी नहीं, न हूँ न हाँ । वह जानती है कि वह करधन की दंतकथा उस घर को ज़िन्दा रखने के लिये कितनी ज़रूरी है –"रामे तेरे पिता फिरंगी को मारकर फरार हुए थे, तब मेरे पास दस तोला सोना था । मैं ने अपने तीनों

छोनों को किस-किस तरह से पाला पोसा, तुम दोनों भाइयों को पढाया । चार तोला बचा था जिसे मैं ने बराबर-बराबर बांटा और तिस पर भी तुम सबने मिलकर मेरे साथ जो किया है बेटा, उसे भगवान ही नहीं, सारा गाँव देख रहा होगा । अभी तो बेटा बहू दाल-भात तो ड्योढी पर रख जाती है, करधन मैं ने दे दिया तो फिर कौन सी आस रह जायेगी । करधन हो कि न हो, वह मेरे लिये और तुम सबकी आस केलिये ज़रूरी है बेटा । वह मोम की तरह गल-गलकर घर की आस को ज़िन्दा रखती है । उस औरत को गला- गला कर मारने के बाद ही घर वालों को हकीकत का एहसास होता है कि छप्पन तोले का करधन वाकई अफवाह ही था ।

रिश्तों के बीच बदलती आत्मीयता एवं बढती उपयोगिता की शिकार बनती नारी के जीवन के कई आयाम इस तरह अस्सियोत्तर कहानियों में अंकित हैं । हालातों को ज्यादातर वे समझने की कोशिश करती हैं, जहाँ ज़रूरत हैं समझौता भी करती हैं । और जब कभी घर को काबू के बाहर पाती है, अपना रास्ता स्वयं चुनती है । जीने केलिये उनका संघर्ष हर कहीं जारी है ।

यौन शोषण के खिलाफ नारी का संघर्ष

यौन शोषण एक अहम मुद्दा है । नारी शरीर की प्राकृतिक दुर्बलता, माँसलता एवं गोलाइयाँ उसे पुरुष की हवस की शिकार बना देती है । कभी-कभार मौजूदा सामाजिक व्यवस्था एवं मूल्य की परिकल्पना भी औरत के खिलाफ गवाही देती है । मुख्तार माई, फूलन देवी जैसों पर हुए सामूहिक बलात्कार समूचे मानव सभ्यता की पोल खोलती है । इस तरह की लाखों घटनाएँ अब भी परदे के भीतर कहीं गुम है । बनिस्बत नारी के जीवन वाकई असुरक्षित साबित होती है । इस मोड पर अपनी हिफाज़त नारी स्वयं करने लगी हैं । अस्सियोत्तर कहानियाँ इसके कई मिसाल प्रस्तुत करती हैं ।

संजीव की 'जसी-बहू' कहानी में लुच्चे-लफंगों की बुरी नज़रों से अपने आप को बचाने में एक पति-परित्यक्ता अपनी सारी होशियारी जुटाती है । गाँव के गिद्धों की पैनी नज़रों से

बचने केलिये जसी-बहू दो चीज़ों को छिपाने की भरपूर चेष्टा करती रहती है – एक अपना यौवन और दूसरा परदेसी बालम के आने की खबर। उसका पति शहर में पैसा कमाने गया है और अब लौटने का नाम भी नहीं लेता है। खेती बहु संभालती है मगर बिना मरद के भय्या-बाबा कह कर गाँववालों से काम कराना मुश्किल है। गाँव के ठाकुर-ठकार ही नहीं अदने आदमी के चेहरे की उथलती गन्दगी को मजबूर होकर झेलती रहती है। एक बार सितई पण्डित उसके कमरे तक घुस आया। तब वह चीखती-चिल्लाकर चूँ मचाती गाँववालों को इकट्ठा कर किसी न किसी तरह बच गयी। लेकिन आम के मौसम में चोरी छिपे बागान से आम चुराते हुए वह पकडी जाती है और सितई पण्डित उसे अपनी आदिम क्षुधा का शिकार बना देता है। वह शहर जानेवाले मज़दूरों को चिरौरी-विनती कर जसी के पास खबर भेजती है। लेकिन वह नहीं लौटता। आखिर बहू के पेट में सितई पण्डित का 'कोढ' फोडते ही जसी लौटता है। खबर जानकर वह उलटे बहु को मारता है और अपने लिये दूसरी औरत ले आता है। बहू पूरे समाज के कीचट को ढोये बच्ची की ऊँगली पकडकर जसी का घर छोडती है। समाज ने भला उसे हराया हो, वह हार नहीं मानती।

शिवमूर्ति की तिरिया चरित्तर कहानी की विमली का चरित्र भी जसी-बहू से मिलती है। विमली गाँव की ऐसी पहली औरत थी जिसने ईण्ट के भट्टे में मज़दूरी करने का ठोस कदम उठाया था। वह नवीं उम्र से लेकर अपनी कमाई से माँ-बाप को संभाल रही थी। वह बाल-ब्याही है और उसका पति पैसा कमाने शहर गया हुआ है और उसका कोई अता-पत नहीं है। ससुरजी उसकी गौना कर ससुराल ले आता है। वह विधुर है और घर में अकेला भी। ससुरवाँ का चरित्र ऐसा है जानो लंबा टीका मधुरी बानी, दगे बाज़ की यही निशानी। घर आते ही ससुर की तेवर बदलती है अतः वह बहू को बीवी बनाना चाहता है। पर विमली तो शेरनी है ही, उसके सामने वह जर्जर बुढा कहाँ कामयाब होता है। आखिर मन्दिर के प्रसाद में अफीम मिलाकर वह विमली को पिलाता है और उसकी बेहोशी में उसकी इज्जत लूट लेता है। विमली को जब होश आती है वह ससुर को जलाने की सोचती है। मगर वह जलील

कहाँ मौजूद था, वह मन्दिर में जाकर छिप गया था । इसलिये विमली अपने पती को ढूँढने निकल पडती है । इस दौरान गाँव में अफवाह ऐसी फैलती है जानो विमली अपने यार के साथ भाग गयी है । अफवाह के पीछे भी उस सडे-संडास ससुर का ही हाथ था । पंचायत जुडती है और एकतरफा फैसला ली जाती है कि आरोप सच है और विमली दोषी है । और ऐसी गलतियों की सज़ा है- दगनी जिसे दागने का अधिकार दरिन्दे ससुरवाँ को ही दिया जाता है । पंचायत के इस अन्धे कानून को विमली हल्ला बोलती है –" मुझे पंचों का फैसला मंज़ूर नहीं । पंच अन्धा है, पंच बहरा है, पंच में भगवान का सत नहीं है । मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ । देखूँ कौन माई का लाल दगनी दागता है "[1] । हालांकि घायल शेरनी की आखिर दगनी होती ही है । एक दगेबाज़ का पाखण्ड वाकई जीत जाता है । उसकी तो लाठी भी न टूटी साँप भी मारा गया । और विमली की तो, समाज की हवसनीति और अन्धा कानून उसे हराती है मगर आशा है कि वह मन से न हारी है ।

"इस घर का तो रिवाज़ ही है । औरत सिर्फ इस्तेमाल की चीज़ है । इस घर में रिश्तों की मर्यादा का कोई मतलब नहीं है बहू । ज़िन्दगी सुख चैन से काटनी है तो समझौता कर लो "[2] ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'जिनावर' कहानी में एक सास अपनी बहू को इस तरह समझाती है। समझाने की वजह है-उसके पति की असीम यौनाकांक्षा, जिसके सम्मुख न बेटी है न बहू । लेकिन बहू उसे हर्गिज़ नहीं मानती । वह उस घर में निबाहना नहीं चाहती । वैसे भी यौन शोषण के कई मुकाम उसके बदन के नज़दीक से गुज़र चुके हैं, पर वह कतई किसी को छूने तक का मोहलत दिया था । बचपन में उसके मामा को उसकी जिस्म की नशा चढी थी । मामा के खिलाफ उसकी माँ भी चूँ न कर सकती थी इसलिये कि उनका जीवन मामा की दया पर निर्भर था । मगर वह नही मान सकती थी । जब कभी मामा को वह अपने नज़दीक पाती, चिल्ला-चिल्लाकर मामा को जलील कर देती थी । माँ एवं सास की समझदार चुप्पी से ज्यदा बहू की इनकार भरी चीख असरदार साबित होती है ।

[1] तिरिया चरित्तर, शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, पृ. 143
[2] जिनावर, ओम प्रकाश वाल्मीकि, सलाम, पृ. 99

ऋता शुक्ला की 'छुटकारा' कहानी की कमली भी चुप्पी के खिलाफ खडी होती है। वसंतू मिसिर का हाथ जब उसकी इज्जत पर पडता है, वह बेहिचक थाने में बयान लिखाती है। हार मानने पर मिसिर के सामने वह सीधा शादी का प्रस्ताव तानती है। " क्यों मिसिर जी बिना माई –बापू की लडकी के साथ ज़बर्दस्ती करने कौन आया था, तुम्हीं ना ? अब तो सारे गाँवों में बदनामी फैली है कि कमली को मिसिर ने ......सच्चे बडमन के पूत हो तो हिम्मत रखो कि अपनी बिरादरी के सामने हमारा हाथ पकडकर अपने घर में बैठालो।"[1] आखिर जातिगत हीनता के परे बसंतू मिसिर को हार मानना पडता है। कमली के सामाजिक न्याय का संघर्ष सार्थक होता है।

कुछ कहानियाँ ऐसी भी है, जिनमें ज़ख्मी नारी अस्मिता का आक्रामक रवैया भी दर्शाया गया है। चित्रा मुदगल की 'गिल्टी रोज़ेज़' कहानी की दुखना अपने सौतेले संतान के पेट में वाकई छुरा भोंक देती है। न भोंकती तो उस जल्लाद से अपनी लाज-लज्जा नहीं बचा सकती थी। उसने तो रिश्तों की सरहद को ही पार कर दिया था। मन्मथलीला में उसके सम्मुख क्या महतारी क्या बहना। एक बार बेटे की दानवीयता को नादान बच्चे का भूल समझकर वह माफ करती है। जब कोई भूल दोहराता है तो, उसे भूल नहीं कहा जाता, अनदेखा भी नहीं किया जाता। आखिर वह छुरा भोंकने में मजबूर होती है। वह बाहर के जहन्नुम की तुलना में सलाखों की पीछे की सुरक्षा अपना लेती है। इसलिए 'जेहल' नहीं छोडना चाहती है – "जेहल नहीं छोडना चाहते हम....असली जेहल छोड आये हैं।"[2]

कुसुम वियोगी की अंतिम बयान कहानी की 'अतरो' खेत में मुखिया के इकलौते संतान राजेन्द्र के 'पुरुषत्व' को ही काट लेती है।राजेन्द्र उसकी इज्जत पर हाट लगाना चाह रहा था। राजेन्द्र की कीचड से गुज़रने से ज्यादा सलाखों की सुरक्षा अतरो को महत्तर लगती है। पुलिस सामने सधैर्य वह राजेन्द्र का कटा हुआ पुरुषत्व फेंकती है। कुसुम मेघवाल की

[1] छुट्कारा, ऋता शुक्ला, ग्राम्य जीवन की कहानियाँ, सं. गिरिराज शरण, पृ. 35
[2] गिल्टी रोज़ेज़, चित्रा मुदगल, आदि-अनादि, पृ. 258

'अंगारा' कहानी की जमना भी वही रास्ता अपना लेती है । वह भी अपने बलात्कारी के 'पुरुषत्व के प्रतीक अंग'को ही काट गिराती है ।

मनोष राय की 'शिलान्यास' कहानी में एक परित्यक्ता, माँ अपने बेटे से उसके पिता की कत्ल का वादा लेती है, जो विश्वासघाती है । उस आदिवासी औरत का पति एक जाने माने न्यायाधीश है । लेकिन उसके साथ हुई शादी जिस्म की हवस बुझाने के लिये रचा गया एक नाटक मात्र था ।पहली रात में ही पत्नी का पाँव भारी करके वब गायब हो गया था । बरसों वह औरत इस उम्मीद में पति का पथ निहारती रही कि आज नहीं तो कल वह लौट आयेगा ही । मगर उसकी प्रतीक्षा बेमोल सिद्ध हुई थी । लंबे अठारह सालों के इंतज़ार के बाद कहीं से पता लगाकर अपने बेटे के साथ पति से मिलने गयी तो उसे देखते ही वह न्याय की देवता उसे राण्ट ठहराता है और पुलिस से पिटवाकर हवालात में कर देता है । जेल में मरने से पहले वह औरत जी-जान से अपने पति की मौत चाहने लगती है और बेटे से वादा लेकर मरती है कि वह पिता के खून का तिलक लगाएगा।

पेशेवर यौनवृत्ति में लगी औरतों की कहानियाँ भी अनेक है । जीवन के किसी नाज़ुक मोड पर पुरुष की मौकापरस्ती एवं विश्वासघात के सामने स्वयं झीजने का निर्णय लेती औरतों की कहानियाँ निराली है । गोविंद मिश्र की 'खुद के खिलाफ' की विमला एक सच्चाई अंकित करती है- "अगर औरत उस आदमी के साथ सो सकती है, जिसे वह चाहती नहीं, सिर्फ इसलिए कि वह उसका पति कहलाता है....तो वह किसी के भी साथ सो सकती है ......"[1] वह किसी से प्यार करती थी मगर शादी किसी गैर से करनी पडी । जब पति की नौकरी छुटी तो कर्ज बढ गया और कर्ज उतारने के लिये पति के किसी मित्र के साथ बिस्तर बांटना पडा । धीरे धीरे यह रोज़ का चाकर बन गया और बेशरम पति ने उसे पेशेवर बना दिया । वह अपनी बीवी के जिस्म की कमाई पर खाता-पीता है । वह औरत बिलकुल जानती है कि पुरुषवादी समाज में उसके पास हर रोज़ जो मूँह मारने आते है, वे मेहबूबा भी रख

---

[1] खुद के खिलाफ, गोविन्द मिश्र, दस प्रतिनिधी कहानियाँ, पृ. 38

सकते हैं और पत्नी भी पाल सकते हैं । उन सबके पास मन है और वहीं एक चीज़ है जिसे विमला ने कहीं खो दिया है । वह ग्राहको के सामने एक मुर्दा बदन परोसकर खुद के खिलाफ लड रही है ।

संतोष श्रीवास्तव की 'यहाँ सपने बिकते हैं' कहानी में एक विद्रोही नारी, पुरुष की मदनाकांक्षा, महत्वाकांक्षा को ललकारते हुए स्वयं वेश्यावृत्ति अपनाती है । बचपन में उसकी भाई ने ही सर्वप्रथम उसको विदेह किया था । जवानी में उसका पति, जिसके साथ दरअसल प्रेम विवाह हुआ था, अपनी 'एक्टर' बनने की उत्कर्षेच्छा की खातिर उसके जिस्म को एक सिनेमा निर्माता को परोसता है । पति वाकई रिश्ता नहीं छोडता मानो कोई सहज बात घटित हो । पति अथच उससे प्यार जताता है । लेकिन वह औरत प्यार एवं समझौते का फरक समझ सकती है । इसलिये बच्चा जनने से पहले वह पति की दुनिया से अलग होती है-"रोहित क्या तुम पसन्द करोगे कि हमारे बच्चों पर लोग ऊँगलियाँ उठायें कि उसकी माँ चरित्रहीन है ....उनके पिता मात्र एक दलाल....जो अपनी महत्वाकांक्षा की खातिर पत्नी का सौदा करते हैं ।"[1] उसके प्रश्न के सामने पति निरुत्तर खडा है । वह पेशा और पति की तुलना में वेश्यावृत्ति को ही चुनती है, इसलिये कि आखिर बेइज्जती की ज़िन्दगी ही जीनी है तो क्यों न खुलकर एक विद्रोह बनकर जिये-"जब जलालत से भरी ज़िन्दगी ही जीनी है तो क्यों न खुलकर स्वतंत्र बनकर जिऊँ....चुनौती बनकर जिऊँ ।पुरुष की बर्बरता के खिलाफ एक आन्दोलन बनकर जिऊँ....देखना चाहती हूँ कि पुरुष में आखिर कितना भूख है ? कब थकेगा वह, कब तृप्त होगा ? इस आदिम भूख को अगर एक अंश भी मिटा पायी तो अपनी साधना को पूर्ण मानूँगी ।"[2] वेश्यावृत्ति उसके लिये साधना है, पुरुष की कामपिपासा के सम्मुख एक निराली साधना ।

'पैसे की दुनिया में बडी अहमियत है, सब उसी को पूछते हैं ....तो कमा लिये जाये जब तक आते हैं' । खुद के खिलाफ कहानी की विमला की यही राय है, जो वाकई सच

---

[1] यहाँ सपने बिकते हैं, संतोष श्रीवास्तव, वसुधा 59-60, पृ. 402

[2] वही, पृ. 404

साबित होती है। जहाँ पैसे का इतना मान दिया जाता है कि यह नहीं देखा जाता है कि पैसे का श्रोत आखिर क्या है। यह नहीं देखा जाता है कि पैसा किसी असामजिक या अनैतिक प्रक्रिया से उपजा हुआ तो नहीं, कोई कालाधन वगैरह तो नहीं। ऐसे माहौल में कोई माँ बेचकर या बिटिया को बाँटकर या किसी का गला काटकर भी अगर पैसे कमाये तो उसे कहाँ तक दोषी मान सकता है। मगर इस वास्तविकता को कोई कैसे स्वीकार सकता है। चित्रा मुदगल की 'गिल्टी रोज़ेज़' कहानी में एक पिता इस तरह पैसे का मंत्र सदा जपनेवाला है। पैसे के लालच में वह अपनी नन्हीं लडकियों को 'कॉलगेल' बना देता है। उनके मासूम बदन की गर्मी में मुर्गी पकाता है, दारू पीता है, मौज-मस्ती करता है। पति की नृशंसता से अपनी नन्हीं लडकियों को बचाने के लिये माँ को बस एक ही उपाय सूझती है जो वाकई जुनून है कि बच्चियों को ज़िन्दा जला देना और स्वयं उस आग में जलना – "आज उस दुस्साहसी ने बडी बेटी की देह की कमाई खाई है। मूँह में खून लग गया .....छोटी बेटियाँ बच जायेंगी क्या ? एक उपाय है नरक से हमेशा केलिए मुक्ति पाने का। दो दिन पहले ही वह राशन कार्ड पर मिट्टी का तेल छुटाकर लाई है। पीपा भरा रखा है। शतरजी पर पडी सो रही लडकियों पर इसे उंडेले माचिस की तीली दिखा दें ? और पीपे के शेष तेल को अपने ऊपर उण्डेलकर खतम करे कहानी।"[1] वह ऐसा ही करती है, लेकिन ज़रा चूक हुई कि वह शेष रह गयी, दर्द में गल- गल कर लंबी मौत मरने केलिये।

गिल्टी रोज़ेज़ की गुना बाई की तुलना में 'जब तक बिमलाएँ' की बिमला थोडा भिन्न है। उसका 'मरदराम, बडा नालायक है, जो रिक्षा चलाता है। वह जो कुछ कमाता है, उसे दारू में उडाये यों ही हाथ लटकाये घर लौटता है। ऊपर से बडा अभिमानी भी। एक दिन पाखाने गयी बिमला की नन्ही छोरी का बलात्कर होता है। पूरी बस्ति पुलिस थाने में रिपॉर्ट लिखाने के खिलाफ है, मगर वह थाने में रिपॉर्ट लिखाती है और अस्पताल में अपनी बेटी का इलाज कराती है। इस पर उसका नालायक पति बिगडता है। उसका कहना है कि

[1] गिल्टी रोज़ेज़, चित्रा मुदगल, आदि-अनादि-3, 261

ऐसी मामूली बातों में बिमला का थाने चली जाना उसे बिरादरी में मूँह दिखाने लायक नही छोडा है । इतना बावला मचाने की ज़रूरत ही नहीं थी । बलात्कर तो जनानियों के लिये कोई बडी बात तो नहीं ठहरी । उस नालायक का हृदय इस कदर अचेत है कि उसे अपनी बेटी केवल जनानी दिखती है। उसकी इज्जत लूट ली गयी है । वह उल्लू का पट्ठा इज्जत की क्या जानता है । लेकिन बिमला जानती है । वह उस बलात्कारी को कानून के सामने सज़ा दिलाकर समूचे नारी समाज का मान रखती है । उसका पति चाहे कोर्ट- कचहरी से डरे, बिमला अकेली काफी है, इज्जत की लडाई लडने केलिये ।

शिवमूर्ति की ‘कसाई बाडा’कहानी की शनीचरी देवी अपनी बेटी को लौटाने की खातिर गान्धीमार्ग को अपना लेती है । गाँव में हुए सामूहिक विवाह के दौरान उसकी बेटी की भी शादी हुई थी। लेकिन वह सामूहिक-आदर्श-विवाह लडकियों को व्यभिचार के धन्धे में लगाने के लिये गाँव के प्रधान द्वारा रचा गया झूढा नाटक था । शनीचरी देवी के सामने जब पोल खुलती है, वह प्रधान के घर के सामने आमरण अनशन ले बैठती है । पूरा का पूरा गाँव तमाशा देखता रहता है, मगर शनीचरी देवी का संघर्ष सत्य के मार्ग पर है । लेकिन के अंत में उसकी निर्मम हत्या होती है । पर शिवमूर्ति की ही कहानी ‘अकाल दण्ड’ अलग संवेदना प्रदान करती है । कहानी की सूरज कली अपने बदन पर हाथ लगाये ‘सेकरेटरी बाबू’ के दांत तोड देती है ।

यों अस्सियोत्तर कहानियों में चित्रित नारी की दशा जो यौन शोषण के खिलाफ संघर्षरत है, काफी दर्दनाक है । अपनी लाखों कोशिशों के ज़रिये इस नृशंसता से उबरने केलिये वे संघर्षरत है । हालांकि पुरुषमेधा समाज की नज़रिये में अब भी बदलाव आना बाकी है । कदाचित संजीव ने इस उद्देश्य से अपनी ‘वापसी’ कहानी में यों लिखा है-“ औरत तो धरती है टोणी । धरती लाख चाहे कि कोई अवांछित बीज अपनी कोख से अंगुराये, मगर उसका वश चल पाता क्या ? क्या वह उसकी महानता नहीं कि ज़हर को भी अपने खून से सींचकर अमृत बनाकर हमें सौंप देती है । ऊँगली पकडकर आदमखोरों से बचाकर हमें आगे

ले जाती है, मौत की घाटियों के पार, और हम है कि अपनी तमाम नाकामियों का शिकार उलटे उसी को बनाते हैं।"[1] संजीव का यह विलोकन सौ फीसदी सच है। पुरुष की बर्बरता के सामने नारी अपनी ममत्व को कायम रखने केलिये संघर्षरत है। इस होड में कहीं वह समझौता करने में मजबूर होती है। कभी व्यवस्था से हार मानती है। कभी पूरे पुरुषवर्चस्विता को ललकरती अपनी रची राह में आगे चली जाती है तो कभी असहमती के किसी भीषण मोड पर पुरुषत्व को ही काट गिराती है या कभी अपने ही नवेलियों को जलाकर सलाखों के पीछे स्त्रीत्व को सुरक्षित करती है। यों यौन शोषण के खिलाफ नारी का संघर्ष जारी है।

भ्रष्टाचार के खिलाफ नारी का संघर्ष

"हम को तो यही लगे कि ठीक यही ठहरा कि छोरी की इस बाबत याददाश्त ही कमज़ोर पड जाये। भूल जाये जो हुआ। आप ही बोले तमगा पहनूँगी बहादुरी की तो तमगा छोरी को याद दिलाता नहीं रहेगा कि माँ ने तमगा काहे पहना था।"[1] चित्रामुद्गल की 'जब तक बिमलाएँ' कहानी की बिमाला बहादुरी की तमगे को इस तरह ठुकरा देती है। उसकी नन्ही छोरी का बलात्कार हुआ था, मगर वह चुप नहीं बैठती, वह थाने में रिपर्ट लोखाती है और ज़ुल्मी को सज़ा दिलाती है। उनकी प्रवृत्ति अनोखी है, वाकई तमगा पहनाने योग्य ही। कथावाचक उस औरत की बहादुरी का सम्मान भरी सभा में करना चाहती है, ताकि समूचे उद्पीडित औरतों के लिये वह प्रेरणा बने। चाहे उद्देश्य जितना भी नेक हो, मामला राजनैतिक है, जिसे बिमला ठोकर मारती है। उसकी राय में उसने न कोई बहादुरी का काम किया है और न कोई कार्गिल की लडाई लडी जिससे तमगा पहनाया जाय। उसने वही किया जो माँ-बाप का फर्ज़ होता है। उसको न तमगे की चाहत न प्रशंसा की उम्मीद। उसका संघर्ष अपनी बेटी को सामाजिक न्याय दिलाने केलिये है जो एकदम मुनासिब है।

[1] जब तक बिमलाएँ हैं, चित्रा मुदगल, आदि-अनादि-3, पृ. 266

भ्रष्टाचार आज इतना वाजिब बन गया है कि उसके बरक्स खडा होना बमुश्किल है, कभी कभार जान लेवा भी। लोग, जहाँ मिले , जितना, मिले , जलालत का कमाया खाने लगे हैं ! मिट्टी बेच के खाये या छप्पर फाडके खाय, भाड में जाए समाज की मान-मर्यादा। कोई लाज शरम नहीं होती। बाप को बेचे, बहन को बेचे, माँ का मंगल्य सूत्र उतारके बेचे, अगर संभव है तो खुद की बीवी को भी बेचे, मगर तिजोरी में लक्ष्मी को आना ही होगा। हराम का पैसा ही आजकल हजमता है। फिलहाल कुछ औरतें ऐसी भी है जो इन सब के खिलाफ लडती है।

ऋता शुक्ला की 'छुट्कारा' कहानी की कमली दलित है। कमली के साथ ज़ोर-ज़बर्दस्ती की सज़ा बतौर बसंतू मिसिर को उसके साथ शादी करना पडा है। आखिर गले में फँसी तो बसंतू उसे फायदे में बदलने की सोचता है। दलित कन्या के साथ हुई शादी को वह दलितोद्धार केलिये लिया गया ठोस कदम साबित करता है और दलितों को पटाकर 'वोट' कमाता है इस तरह चुनाव में जीतकर एम.एल.ए. बन जाता है। उसके घर में जब दल का किसी वरिष्ट नेता का आना होता है, जो काफी सनातनी है, तो मिसिरजी कमली को घर से निकाल देता है ताकि नेता की आंखों मे वह न गिरे। लेकिन वाकई कुछ उलटा ही होता है। वह नेता उसकी शादी को दलितोद्धार के लिये किये गये योगदान मानता है। उस महत्वपूर्ण कार्य के कदरदान कर उसे मंत्री बनाना चाहता है। अब एकाएक सिक्का पलटा है तो मौका हाथ से न निकल जाय, इसलिये बसंतू मिसिर कमली को बुलाने अता है। लोकिन कमली इस तरह ताश के पत्ते बन जाने से साफ इनकार करती है – "हमें तुम्हारे खेल का मोहरा बनने से इनकार है, मिसिर जी। अब तुम्हारी कोई भी चाल हमें बहका नहीं सकती।.....हमारे नाम का व्यापार कर तुम ऊपर उठो। हम तुम्हें इसकी इजाज़त नहीं देंगे, बसंतू मिसिर कतई नहीं "[1] वह आत्मसम्मानित है। वह हवेली छोडती है

[1] छुट्कारा, ऋता शुक्ला, ग्राम्य जीवन की कहानियाँ, सं. गिरिराज शरण,

सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया' कहानी में एक जाने माने नेता की पोल इसी तरह खुलती है, जो किसी दलित कन्या के साथ शादी करके उसके उद्धार कराना चाहता है । इस तरह समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढाना चाहता है । शर्त सिर्फ इतनी है कि लडकी कमसे कम मेट्रिक पास हो । गाँव में सिलिया पर दबाव बढता है कि वही इलाके की अकेली लडकी है जो मेट्रिक पास है । परंतु सिलिया अपना उद्धार स्वयं करना चाहती है, जिसके लिये वह काबिल है ही । उसे गैर की मदद की ज़रूरत नहीं – "हमारा अपना भी कुछ अहंभाव है । उन्हें हमारी ज़रूरत है, हमें उनकी ज़रूरत नहीं । हम उनके भरोसे क्यों रहें । पढाई करूँगी, पढती रहूँगी.....शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बनाऊँगी । किसी के सामने झुकूँगी नहीं, नही अपमान सहूँगी ।"[1] सिलिया की माँ भी बडे लोगों की चोंचली नीति समझती है – " ये सब बडे लोग चोंचले हैं । आज सबको दिखाने केलिये हमारी बेटी के साथ शादी कर लेंगे और कल छोड दिया तो हम गरीब लोग उनकी क्या कर लेंगे ....हमारी बेटी उनके परिवार और समाज में वैसा मान-सम्मान नहीं पा सकेगी , नहीं फिर हमारी घर की ही रह जायेगी- न इधर की न उधर की। हम नहीं देवे अपनी बेटी को हमीं उनको बहुत खूब पढाएँगे, लिखाएँगे । उसकी किस्मत में होगा तो इससे ज्यादा मान-सम्मान वह खुद प लेगी ।"[2] ये औरतें हालातों को हूबहू समझती हैं । ये अपना उद्धार स्वयं करने के पक्ष में हैं ।

आखिर कोई करता भ्रष्टाचार है तो फिर कौन बिरादरी , कैसा रिश्तेदार, कोई है तो बस लूट के हिस्सेदार । नमिता सिंह की 'दर्द' कहानी में बिरादरी की सूदखोरी एवं खोटी राजनीति की पोल खोलती रमिया का चित्र है, जो एक मामूली जमादारिन है । एक दिन बिरादरी के नेता महाशय एकएक घोषणा कर देते हैं कि अगली सुबह से किसी की बहू-बेटियाँ दूसरों के घरों में काम करने नहीं जायेंगी । नेताओं की राय में दूसरों के घर में काम करने जाना स्वयं उनके जूते बनकर रहने के बराबर है। लेकिन रमिया कदापि नहीं मानती । उसे पंचायत की फुक्कडनीति अच्छी तरह मालूम है –"आग लगे इन पंचायतवालों पर ।

[1] सिलिया, सुशीला टाकभौरे, दलित कहानी संचयन, सं. रमणिका गुप्ता । पृ. 65
[2] सिलिया, सुशीला टाकभौरे, दलित कहानी संचयन, सं. रमणिका गुप्ता । पृ. 65

सोचते हैं कि अगर काम करके पैसे जुटाएगी तो फिर उनसे करज लेने कौन आयेगा । एक बार उन लोगों ने ऐलान कर दिया था कि अब कोई बाहरवालों से करज नहीं लेगा । अपनी जात बिरादरीवाले ही एक दूसरे की मदद करेंगे ....ज़रूरत पडने पर करज देंगे । शहर के व्यापारी सैकडे पर डेढ-सौ लेते , तो बिरादरी वालों ने सैकडे पर अस्सी रुपया ब्याज लेना शुरू किया"[1] वह बिरादरी के नाम पर चालू लूट-नीति को खूब समझती है । वह उसे कतई मान सकती है । रमिया बेटी सुन्नरी को काम पर ले जाती है और करज उसी से लेती है जहाँ उसे कम सूद पर मिलता है, वह चाहे सरदार जी हो या घीवाला, उसे फरक नहीं पडता ।

संजीव की 'धनुष-टंकार' कहानी में मैनेजमेंट तथा विभिन्न मज़दूर यूनियनों द्वारा होते शोषण का चित्र खींचा गया है । कहानी में संघर्ष का वातावरण अंकित है । उस बडे फैक्टेरी में 'पिग-अयर्ण' की अदला-बदली के लिये चुंबकों का इस्तमाल होने लगा है और हज़ारों बन्धुआ मज़दूर जो तब-तक उस काम में लगे हुए थे, बेकार होने जा रहे हैं । यूनियन के सेकरेटरी निर्मल बाबू के नेतृत्व में जुलूस निकला हुआ है । हालांकि मैनेजमेंट निर्मल बाबू को उग्रपन्थी घोषित करता है और अपने चेले को सेक्रेटरी बनाकर जुलूस पर हावी होता है । नौ मज़दूर निकाले जाते हैं उसमें एक सुरसती है, जो आमरण अनशन कर लेती है । मगर मैनेजमेंट का चेला सेक्रेटरी समझौता कर लेता है और संघर्ष को विजय साबित करने के लिये सुरसती का 'अनशन तोडना' एक बडा समारोह बनाता है और माननीय मंत्रीजी को आमंत्रित करता है । आखिर सुरसती के सामने सारी साजिश खुलती है कि समझौता एक बडा धोखा है और सारे मज़दूरों को ठगा जा रहा है –" तो क्या यह सारा ताम-झाम इसलिये कि इन मज़दूरों की दूकानें चलानेवाली यूणियनों का कारोबार चलता रहे, बिना किसी स्थाई हल के जीत की जै-जैकार होती रहे । सबसे ज्यादा श्रम देनेवाले ठेकेदार मज़दूर सबसे कम वेतन एवं असुरक्षित नौकरी बनाये रखने केलिये । पीछे-पीछे लगे रहें ।उनको नोचते रहे ठेकेदार नोचते रहे साहब । इनकी कमाई पर नोचते रहे, स्थायी मास्टर रोल श्रमिक, ऐश

---

[1] दर्द, नमिता सिंह, कर्फ्यु तथा अन्य कहनियाँ, पृ.92

करते रहे नेता, अफ्सर, ठेकेदार । एक भी आदमी नाम भी नही लेता निर्मल बाबू की जिसने सामूहिक ठेकेदारी को स्थायी बनायी जाने की लडाई शुरू की थी।उसे जेल में इसलिये डाल रखा गया है कि इनकी लूट-खसोट और यूनियान का नाटक चलता रहे ।"[1] सुरसती बिना मंत्रीजी एवं यूनियन के नेताओं का इंतज़ार किये, निर्धारित समय के पहले ही अपना अनशन तोडती है ।

सूरजपाल चौहान की 'साजिश' कहानी की शांता एक सवर्ण बैंक मैनेजर के दलित विरोधी मानसिकता के खिलाफ लडती है । उस आदमी ने शांता के पति को पिगरी लॉण पर फँसाया था, जबकि उसे ट्रांस्पोर्ट का धन्धा करने के लिये ही लोण चाहिये था । दर असल यह बैंक मैनेजर की साजिश थी कि दलितों को उसके पुश्तैनी कारोबार में ही बान्धकर रखा जाय, ताकि वे हमेशा सवर्णों के संडास साफ करते रहे । पति उसे समझ नहीं पाया था मगर शांता समझदार है । वह दलितों को इकट्ठाकर इस साजिश के खिलाफ आवाज़ बुलन्द करती है-" बस कीजिये मैनेजर साहब ! अपनी भलाई की बात हम खुद सोच लेंगे । अपना नफा-नुक्सान हम खुद समझ लेंगे । आप अपने बेटे को पिगरी का लोण देकर प्रशिक्षित करें तो अच्छा रहेगा"[2]

शिवमूर्ति की 'अकाल दण्ड' में पूरा एक गाँव अकाल की जकड में है । सरकार की योजनाएँ काफी नहीं है, मगर गैर सरकारी संस्थाओं की सहायता से गाँव में अन्न-जल बाँटने की व्यवस्था चालू है। इसका कार्यभार गाँव का 'सेकरेटरी बाबू' ही संभालता है । पर उसकी एक ज़हरीली आदत है - कामलिप्सा । जहाँ कहीं खूबसूरत लडकियों पर उसकी नज़र पडता है , वह उसे अपनी समिती में शामिल कराता है । मौका मिलते ही उसकी गरमी चाटता है । उसके आतंक की वजह 'सूरजकली', जो वाकई सूरज कलि है, राहत लेने केलिये भी नहीं जाती थी । आखिरकर 'सेकरेटरी बाबू' के आतंक को समाप्त करने का वह निर्णय ले लेती है और रात के अन्धेरे में अपने आप को उसके हवाले करने का झूठा वादा देकर वह सेकरेटरी

---

[1] धनुष-टंकार, संजीव, विद्रोह की कहानियाँ, पृ.125

[2] साजिश, सूरजपाल चौहान, दलित कहानी संचयन, सं.रमणिका गुप्ता, पृ.110

बाबू से मिलती है और उसके 'नाज़ुक अंग' को काटकर उसकी आतंक लीला समाप्त करती है।

न्याय की देवता को अन्धा माना गया है। मगर जब जब वह देवता इनसान का रूप धारण करती है, वह अक्सर काना ही साबित होती है। फैसला वाकई मौका देखकर या चेहरा देखकर लिया जाता है। मनोषराय की 'शिलान्यास' कहानी के अनुसार यह गलती सज़ा ए मौत की है। और यह फैसला एक पतिपर्यक्त, घृणित,अपमानित अदना औरत ही ले लेती है, जो वाजिब है। अठारह साल पहले जंगल के सैर दौरान उस न्यायाधीश ने उस औरत को देखा था, और उसके बदन-पुष्प की मधु उलीचना चाहा था। इसके लिये एक शादी का नाटक रचाकर दुष्यंत की तरह फरार हुआ था, औरत के दामन में एक पिनपिनहा बच्चा छोडकर। अठारह साल बाद कहीं से खबर लगाकर उस कानी देवता से मिलने गयी तो उस औरत की भीषण मार पीट होती है और रण्डीगिरी के इल्ज़ाम लगाकर सलाखों के पीछे अन्धकर में डाल देते हैं, वह कानी देवता। सावित्री के तिलक की जगह रण्डीपन का कलंक! वह पतिपरायण औरत आखिर अपने बेटे से वादा लेकर मरती है कि वह अपने माथे पर पिता के खून का तिलक लगायेगा। विश्वास को घृणा में बदलने केलिये आखिर कितनी देर लगती है।

मृदुला गर्ग की 'अगली सुबह' कहानी में सांप्रदायिकता के खिलाफ लडती एक अदना औरत का चित्र है। अचानक फूट पडी सिख विरोधी दंगे की वजह बालक सबरजीत सिंह उस हिन्दू परिवार में फँसता है। वह बालक उस औरत के बेटे अशोक का मित्र था और अक्सर उस घर में आता रहता था। लेकिन उसे क्या पता था देखते ही देखते यों ही सिख विरोधी दंगा फूट पडेगा, देखते ही देखते वह अपने ही इलाके में पागल कुत्ता बन जायेगा। वह औरत उस बालक के बाल काट लेती है और अपने बेटे अशोक की पोशाक पहनाकर उसे छोटे लडके के साथ मुहल्ले के बाहर कर देती है। सबरजीत को मारने के लिये आये गुण्डे-मवेषियों से वह चिल्ला-चिल्लाकर बताती है कि भगवन की औलादों को शरम करना सीखना चाहिये-" शरम करो राक्षसो, शरम करो.....यही धर्म है तुम्हारा! इसी बूते पर हिन्दू कहते हो अपने आप को ? उसकी जगह तुम्हारा बेटा हो तो ? तुम्हारे मनकू को ज़िंदा जलाये कोई, तुमारे हरीश को पटक-पटककर मारे। रहम खाओ, मेरे भाइयों रहम खाओ। तुम भी

बेटी-बेटे वाले हो। तुम्हारा भी बूढी माँ है। आओ मेरे साथ, बचाओ सामनेवाले सरदारजी को।[1]"

यह स्पष्ट जाहिर है कि अस्सियोत्तर कहनियों में चित्रित औरतें भ्रष्टाचार के खिलाफ वाकई संघर्षरत है।

भूख से संघर्षरत औरतें

भूख इनसानियत का निकष होता है। भूख से लडते-झगडते कितने ही इनसान स्वयं हैवान साबित हुए हैं। भूख से संत्रस्त नारी जीवन के कई आयाम अस्सियोत्तर कहानियों में मौजूद है।

"अभी तो बेटा बहू दाल-भात तो ड्योढी पर रख जाती है। करधन मैं ने दिया तो फिर कौनसी आस रह जायेगी "[2] उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का करधन ' कहानी की बूढी दादी एक जून की खाने को मोहताज है। भूख के सम्मुख वह छप्पन तोले की करधनी की आड ले रही है। अन्य परिवारिकों का अभिमत है कि दादी के पास छप्पन तोले की एक करधनी है, जिसे वह कहीं छिपा रखी है। घर की बदहाली से उबरने का एकमात्र आसरा वह करधनी ही है। अतः करधनी का मिलना घर की सख्त ज़रूरत है। मगर दादी के लिये वह आश्रय भी है और अभिशाप भी। करधनी को हडपने केलिये बेटे-बहुएँ दादी को भूखों पेट मार रहे हैं। उसे अन्धेरे कमरे में बन्द कर दिया गया है। उसकी थाली में मिट्टी मिलाई जा रही है। भूख से लड-सडकर दादी आखिर मौत का वरण कर ही लेती है मगर करधनी की असलियत के बारे में न हूँ बोलती है और न हाँ। दादी जानती थी कि करधनी हो या न हो उसके लिये एवं परिवार के लिये वह सबसे ज़रूरी चीज़ है।

इस कहानी में बच्चे माँ को भूखों मार देते हैं। लेकिन चित्रा मुदगल की 'भूख' कहानी में, आप्रत्याशित भी, ठीक उलटा होती है। कहानी में अपनी बदहाली में एक माँ अपने

---

[1] अगली सुबह, मृदुला गर्ग, संगति-विसंगति

[2] छप्पन तोले का करधन, उदय प्रकाश, तिरिछ तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 58

नवजात बच्चे को भिखारिन के साथ भेज देती है ताकि एक उसका तो पेट पल जाये। लेकिन वह क्या जानती थी कि रोता हुआ बच्चा ही ज्यादा कमाके देता है।

लक्ष्मा की ठेकेदार मज़दूरी छुट चुकी है। घर में कुल तीन-तीन बच्चे, एक गोदी की उम्र का आखिर भूख से उबरने का एक ही उपाय अपने छोटू को भिखारिन के साथ भेजन ही था। भिखारिण उसे दो रुपया प्रतिदिन किरया या कमाई देती थी। उससे बडे बच्चों की भी भूख मिट सकती थी। भिखारिन की झोली में दिखी बिस्कुट तथा दूध की बोतल उसे चकमा दे गई थी। वह बोतल वैसा ही दिखती थी जैसा वह छोटू के लिये खरीदना चाहती थी। इसलिये वह राज़ी हुई थी। जबकि दूध से भरा हुआ बोतल और बिस्कुट मात्र दिखावा रह गयी थी। वह औरत बच्चे की रोना चालू रखने के लिये बच्चे को कभी खाना नहीं देती थी, इसलिये कि रोता बच्चा ज्यादा कमाके देता था। बेचारी लक्ष्मा यह कभी सोच भी नहीं पायी थी। वैसे भी गरीब के सम्मुख प्रत्येक मौका आशावादी है, हालांकि समाज की छलावा अक्सर उसे निराश ही कर जाती है। आखिर बच्चा भूखों मरता है। लक्ष्मा महसूस करती थी कि " सुबह कटी तो दोपहर भारी हो जाती, दोपहर कटी तो रात ! ज़िन्दा भी मुरदा समान!....क्यों न तीनों समेत सडक के उस पार समन्दर में पाँव दे दूँ ?"[1] ज़िंदगी और मौत के बीच लक्ष्मा ने चुना ज़िन्दगी को था, मगर उसको मिली मौत !

भूख के सामने भीख कभी बे इज्जती नहीं होता। अमर गोस्वामी की' बाबुलाल का परिवार' भी यही सबक दिलाती है। कहानी की 'धनपतिया' बूढे ससुर के भीख माँगने जाना नहीं रोक पाती। उसका पति था तो साला पियक्कड , बेशरम व नालायक। रिक्षा चलाकर वह जो कुछ कमाता था, दारू में उडाकर सूने हाथ घर लौटता था। कुछ लाता नहीं उलटे लात भी मारता है था।धनपतिया भी घर-बाठ बुहारकर ज्यादा कुछ कमा नहीं पा रही थी। घर का बुड्ढा आखिर भूख से हारकर भीख माँगने निकलता है। धनपतिया जानकर भी रोक नहीं लगा पाती थी। भला हालात ही ऐसी बरामद थी –" अपने ससुर की भीख माँगने जाने की खबर

---

[1] भूख, चित्रा मुदगल, आदि-अनादि-2, पृ. 102

पाकर धनपतिया का कलेजा धककर उठा । खुद पर ग्लानी भी हुई । बूढे ने अब तक के मिले सारे पैसे को धनपतिया के हाथों में दिये । धनपतिया को लगा कि वह पैसों को बुड्ढे के मूँह पर फेंक दें । उसकी ऊँगलियाँ जलने लगी थी । मगर घर की हालत ऐसी थी कि ज्यादा देर तक किसी के लिये भी ग्लानी और लज्जा बनाये रखने का वक्त नहीं था । धनपतिया चुपचाप जाकर कुछ सामान खरीद लायी । उसने खाना बनाकर सबको खिलाया मगर एक कौर नहीं खा सकी ।

"हे भय्या माई हूँ न इसकी । जानवर भी अपना बच्चा भूखा नहीं देख पाता । देख लो इसका पेट । कितना धंसा है भूख से ? तुम्हारी अम्मा भी होती तो सह नहीं पती ।"[1] नीरजा माधव की 'चुप चन्दारा रोना नहीं' कहानी की चंदारा 'मेक अप' लगाने वाले से विनती कर रही है । ठाकुर की हवेली में शादी है । शादी में आये हुए लोगों का मन बहलाव के लिये इनसान को ज़िन्दा बुत बनाकर खडा किया जाता है । पूरे के पूरे दिन जाडे की ठण्ड मे नंगे बदन खडा रहना पडता है । चन्दारा का लडका 'फुग्गी' शिवाजी का बुत बनने केलिये तैयार हो रहा था । सुबह से वह कुछ खाया नहीं था इसलिये माँ उसकी मूँह में ठाकुर की रसोई से चिरौरी- छिपाये लायी पूडी का कौर धंसाने की कोशिश कर रही है । मगर पूडी की दो टुकडे से भला पेट भरता है क्या । आखिर बच्चे का भूखा पेट जवाब देता है । बच्चा बेहोश होकर गिर पडता है । खबर सुनकर चन्दारा मूँह में साडी घुसेडकर रुलाई रोकती हुई भाग आती है, इसलिये कि शादी के दिन उसका रोना अपशकुन माना जायेगा ।

इनसान से भूख आखिर क्या क्या कसर कराता है । अस्सियोत्तर कहानियों में भूख की कसौटी पर कसते नारी जीवन अपने परिवार के प्रति सामाजिक मर्यदाओं को भी बेमोल सिद्ध कर देती है । बच्चों की रुलाई रोकने वह पेट की नियति चलाती है । वह भूख के खिलाफ संघर्षरत है- थककर, थमकर, चुप होकर और गम खाकर भी ।

---

[1] चुप चन्दारा रोना नहीं, नीरजा माधव, हंस, आगस्त 2006

निष्कर्ष

नारी समूचे मानव कुल की आधी आबादी है । हालांकि अवाम के विशेष सन्दर्भ में केवल निम्नवर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय औरतें ही आती है जो आर्थिक तौर पर काफी असुरक्षित है । उनके जीवन यथार्थ उच्चवर्गीय तथा मध्यवर्गीय औरतों से वाकई भिन्न है । उच्च वर्गीय तथा मध्यवर्गीय औरतों केलिये प्रमुख समस्या नारी होने की है लेकिन अवाम के सम्मुख समस्या आखिर जीने की है । भारत के सन्दर्भ विशेष में औरत वर्गपरक, जातिपरक, लिंगपरक आदि तीनों प्रकार के शोषण की शिकार होती हैं। लेकिन अक्सर ये शोषण को नहीं पहचान पातीं । शोषित होना ऐसा है जानो इनके जीवन की हकीकत ही है । इसलिये ये बडी सहजता से उसे अपना पाती हैं । मौके पर वार करती है, बेमौके पर छुप्पी साधती है । उच्चवर्गीय एवं मध्यवर्गीय औरतों के लिये संघर्ष अपने होने का एहसास है, अतः संघर्ष ही जीवन हैं मगर मेहनतकश अवाम के लिये जीवन एक फैला हुआ संघर्ष है ।

अस्सीपूर्व की कहानियाँ जैसी प्रेमचन्द की 'कफन', 'ठाकुर का कुआँ', यशपाल की 'दुख का अधिकार', अमरकांत की 'दोपहर का भोजन', जैनेन्द्र की 'जाह्नवी', रांगेय राघव की 'गदल', कमलेश्वर की 'देवा की माँ', आदि में पतिपरायणता औरतों केलिये आभूषण जैसी है । पति, चाहे वह कितना भी निकम्मा निकले, उसके लिये रोटी परोसना ये अपना फर्ज़ मानती हैं। स्वयं पति के अधीन रहना उनके लिये मानो कोई बडा आदर्श है, मगर जीवन के संघर्षों को दोनों मिलकर ही बाँटते हैं ।

अस्सियोत्तर परिवेश में शिवमूर्ती की 'सिरी उपमा जोग', संजेव की 'संतुलन', अब्दुल बिस्मिल्लह की 'दण्ड' जैसी बहुत सीमित कहानियाँ ही पतिपरयणता को आदर्श मानती औरतों पर लिखी गयी हैं । ज्यादातर कहानियाँ पुरुषवर्चस्विता के खिलाफ बडी सहजता से आवाज़ बुलन्द करती हैं । पति की उपेक्षाभरी नज़रों के सामने उसके भाई को कमरे में बुला लाती औरत की कथा शिवमूर्ति की 'भरतनात्यम' कहानी बताती है । संजीव की जसी-बहू कहानी में 'बहू' पति का घर छोडती है जहाँ पत्नी की कोई भूमिका नहीं रहती । नमिता

सिंह की 'गणित' कहानी की पत्नी, पति के हाथों से डण्डा छीनकर आग में झोंक सकती है, जिससे पति सभी को मार दिया करता था । राजी सेठ की 'योगदीक्षा' की औरत माँ-बाप की शोषण नीति से हारकर अपने भी पेट की परवाह करने लगती है । राकेश वत्स की 'सवित्री' पति के घर में अपने श्रम के बदले तीन हज़ार रुपये नकद माँगती है । मुक्ति कहानी की छोटी लडकी पिता के घर में मशीन के पुर्जा बनने के पहले किसी के साथ भाग जाती है । फिर भी परिवार के प्रति गहन आस्था जितना पूर्व पीढी की कहानियों में सक्रिय है, उतना अस्सियोत्तर कहानियों में भी है ।

अस्सियोत्तर कहानियों में यौन शोषण के खिलाफ लडती औरतों की अनेक कहानियाँ मौजूद है। 'जसी-बहू' की बहू यौन शोण के खिलाफ पती से शिकायत करती है । 'जिनावर' कहानी की बहू चीखती-चिल्लाती बलात्कारी को जलील कर देती है । 'छुटकारा' की कमली थाने में बयान लिखाकर बलात्कारी को शादी के लिये हामी कराती है । अंगारा तथा अंतिम बयान जैसी कहानियों की औरतें अपने-अपने बलात्कारियों के पुरुषत्व को ही काट फेंकती हैं । कुछ कहानियाँ ऐसी भी है जिनमें यौन शोषण को ललकारती नारियाँ वेश्यावृत्ति को भी चुनती है ताकि स्वयं एक आन्दोलन बनकर जी सके । संतोष श्रीवास्तव की यहाँ सपने बिकते हैं, गोविन्द मिश्र की खुद के खिलाफ आदि उदाहरण है ।

छुट्कारा, सिलिया, साजिश, दर्द, अम्मा जैसी कहानियाँ जातिपरक शोषण के खिलाफ औरत के संघर्षो को दर्शाती है । संजीव की 'धनुष-टंकार' कहानी में वर्ग परक शोषण के खिलाफ औरत आवाज़ बुलन्द करती है ।

भूख की समस्या अदना औरत के लिये अब भी मुसीबत है । उसमें पूर्वापर का अंतर नहीं। भूख में रोते बच्चों की खातिर बेटे की मौत की अगली ही सुबह बाज़ार में तर्बूज़े बेचने आयी बूढी दादीजी जो यशपाल की 'दुख का अधिकार' कहानी में चित्रित है, उसमें और अतिथियों के मनोरंजन हेतु ठाकुर के आंगन में बुत बन खडे अपने बेटे के मूँह में रोटी की कौर घुसेडती 'चुप चन्दारा रोना नहीं 'की चन्दारा में कोई संवेदनात्मक अन्तर नहीं दिखती ।

विघटन के कगार पर खडे परिवार को झूठ के सहारे संभालती अमरकांत की सिद्धेस्वरी में तथा 'छप्पन तोले का करधन की झूठी कहानी का पोल खोले बिना परिवार वालों की हौसला बढाती बूढी दादी तथा छोटे लडके को भिखमंगे के साथ भेजकर घर में रोटी परोसती 'भूख' कहानी की लक्ष्मा में कोई नींवाधार अंतर नहीं दिखाई पडता । हालांकि अपने सारे गहने बेचकर पढाने के बावजूद घर में फालतू बनती भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' की माँ एवं जीते जी अपनी संपत्ती को बेटों के नाम कराने से डरती 'जी का जंजाल' की बूढी माँ में चेतनापरक अंतर है । भीष्म साहनी की माँ में सामाजिक एवं पारिवारिक गठबन्धन पर गहन आस्था, दायित्व बोध तथा मूल्य बोध है तो दूसरी कहानी में असुरक्षा बोध एवं अविश्वास मुखरित है । यह जो बुनियादी फरक है जो पूर्वापर संबन्धों के बीच सीमारेखा खींचती है । अस्सियोत्तर परिवेश में नारी की वैयक्तिक इकाई काफी सजग है फिर भी परिवार एवं बच्चों के सम्मुख अपनी ममता को समेटना उसकी बस की बात नहीं ।

गोया अवाम की परिप्रेक्ष्य में नारी के सम्मुख पहचान से ज्यादा जीवन ही मुख्य है । अपने हिस्से की उस ज़िन्दगी में परिवार एवं बच्चों का जितना स्थान है, उतना पति का नहीं है। पुरुष के साथ भी वह ज़िन्दगी की लडाई लड सकती है, उसके बाद भी । जीवन उसके लिये विराट संघर्ष है, जिसे वह अपनी मेहनत से बडी सहजता से जीत लेती है । उनका संघर्ष आखिर जीने के लिये है ।

****

पाँचवाँ अध्याय

संघर्ष के कुछ और आयाम

" भूख जब ज़ोर से लगती है तो ऐसा लगता है जैसे बिल्लियाँ लड रही हों । फिर पेट में हलका सा दर्द शुरू होता है जो शुरू-शुरू में मीठा लगता है । फिर दर्द तेज़ हो जाता है । उस समय यदि आप तीन-चार गिलास पानी पी लें तो पेट कुछ समय केलिये शांत हो जायेगा और आप दो-एक घण्टा कोई भी काम कर सकते हैं ।"

-असगर वजाहत

संघर्ष के कुछ और आयाम

अवाम के विशेष सन्दर्भ से जुडी कुछ और आयाम हैं, जैसे विस्थापितों का संघर्ष, वृद्धजन संघर्ष, शिक्षित युवा पीढी का संघर्ष, बाल जन संघर्ष आदि ।

अस्सियोत्तर कहानियों में विस्थापितों का संघर्ष

विस्थापन कोई नई समस्या नहीं, लेकिन अस्सियोत्तर परिवेश में यह एक अहम मुद्दे बनकर उभरती है। अपने पले बढे माहौल से कोसों दूर अपने से एकदम अनजान लोगों के बीच पेट की लडाई लडते मेहनतकश अवाम की उपस्थिति अस्सियोत्तर कहानियों की गरिमा बढाती है । मत्स्येन्द्र शुक्ल की 'चाल' कहानी में कूडा-कचरा बीनकर रोज़ी-रोटी कमानेवाले लोगों पर प्रकाश डाला गया है। उनका कोई स्थाई ठिकाना नहीं रह गया है । इधर से निकाल दिया तो उधर बसेरा डालते हैं । उधर भी कोई बसने नहीं देता तो कहीं और । कहानीकार की राय में-"शहर में उनका अपना कोई नहीं हैं । सभी अपरिचित । ये लडके जब शुरू में यहाँ आये थे तो जगमग साहू की हवेली में काम करने जाया करते थे । मेहनत के मुकाबले में पैसा बहुत कम था, फिर भी ये खुश थे । इन लडकों की ज़िन्दगी अभावों में कैद हैं। पर ये कभी उदास नहीं दिखते । हमेशा उछलते-कूदते और हँसमुख नज़र आते हैं ।"[1] इस बार इन लोगों ने मुहल्ला करीम नगर के पार्क में डेरा डाला है । लेकिन समस्या यह है कि पार्क के चारों तरफ संभ्रान्त परिवारों के बसेरा हैं, जिन्हें इनका नज़र आना भी नागवार गुज़रता है । आखिरकार पुलिस को घूस दिलाकर उन लोगों का डेरा उठा दिया जाता है । जीवन की इन त्रासदियों को ये लोग बडी सहजता से अपना लेते हैं –" भय्या इन अमीरों से कौन भिडे? टक्कर मारके निकल गये तो ज़िन्दगी माटी हो जायेगी । रोयें

---

[1] कूडा,मत्स्येन्द्र शुक्ल, नवें दशक की कथायात्रा, धर्मेन्द्र गुप्त,पृ.85

घरवाले । कौन परवाह् करता है उनके रोने की ?"[1] लेकिन इसका मतलब ऐसा नहीं कि ये लोग चेतना हीन हैं । वे भी अपनियत से वाकिफ हैं । गाली सुनना उनको भी नागवार हैं –" गालि न देना । मैं भी इनसान हूँ और तुमसे अपनी इज्जत कम नहीं समझता हूँ । ....हम भी तो इसी मुल्क के बासिन्दे हैं । सबको जीने-खाने का बराबर हक हैं । सडक और पार्क पर सरकार का अधिकार है । मतलब कि जनता की चीज़ है।"[2] लेकिन कुनबे का मालिक जानता है कि वरीय समाज केलिये पैसा ही सब कुछ है । वही अहम जताता है कि कौन कितनी प्रतिष्ठा का हकदार है भला- बाप बडा न भय्या, सबसे बडा रुपया, गरीब लडाई नहीं लड सकता-"दो रुपया कम मिले या ज्यादा, जीवन में इस बात की कतई महत्व नहीं है । महल नहीं खडा करना । ले-देकर पेट भर जाय यही बहुत है ।" [3] वे कहीं और खिसक जाते हैं, जहाँ काम मिलने की ज्यादा सम्भावना है । ज़िन्दगी की मुसीबतों को झेलना, उनसे होकर गुज़रना तथा अपमान का घूँट पीना मानो इनके लिये आदत बन गयी है । इसलिये बडी सहजता से ये उन्हें अपनाते हैं और 'पिसना या बच जाना संयोग पर' झोडते हैं ।

"भाग जाओ इस शहर से । जितनी जलदी हो सके, भाग जाओ । मैं भी तुम्हारी तरह कॉलेज से निकलकर सीधा इस शहर में आ गया था, राजधानी जीतने । लेकिन देख रहे हो कुछ नहीं है इस शहर में, कुछ नहीं । मेरी बात छोड् दो । मैं कहाँ चला जाऊँ ! गाण्ड के रास्ते यह शहर मेरे अंतर घुस चुका है।"[4] असगर वजाहत की 'केक' कहानी का 'डेविड साहब' अपने युवा मित्र को इस तरह समझाता है । वह युवक नौकरी की तलाश में गाँव से

---

[1] कूडा, मत्स्येन्द्र शुक्ल, नवें दशक की कथायात्रा, सं.धरमेन्द्र गुप्त, पृ.6

[2] कूडा, मत्स्येन्द्र शुक्ल, नवें दशक की कथायात्रा, सं.धरमेन्द्र गुप्त, पृ.6

[3] वही

[4] केक, असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ, पृ.22

शहर आया हुआ है और कहीं दो ढाई सौ रुपयों केलिये जासूसी नोवेल लिखा करता है । लेकिन वह भी मजबूर है । वह जिस गाँव को पीछे छोड आया था उधर उसकी कोई पहचान ही नहीं बचा है - "मैं ने कॉलेज में इतना पढा ही क्यों ? इतना और उतना की बात नहीं है, मुझे कॉलेज में पढना ही नहीं चाहिये था और अब दो साल तक ढाई सौ रुपये की नौकरी करते हुए क्या किया जा सकता है ? क्यों मुस्कुराता और क्यों शांत रहता । दो साल तक दोपहर का खाना गोल करते रहने के पीछे क्या था । नीचे से भैंस के हगने की आवाज़ आती है । एक परिचित गन्ध फैल जाती है । उस अर्धपरिचित कसबे की गन्ध, जिसे मैं अपना घर समझता हूँ । जहाँ मुझे बहुत ही कम लोग जानते हैं । उस छोटे से स्टेशन पर यदी मैं उतरूँ तो गाडी चली जाने के बाद कई लोग मुझे घूरकर देखेंगे और इक्का-दुक्का, इक्केवाले भी मुझसे बात करते डरेंगे । उनका डर दूर करने केलिये मुझे अपना परिचय देना पडेगा । अर्थात अपने पिता का परिचय देना पडेगा । तब उनके चेहरे पर मुसकुराहट आयेगी और वे मुझे इक्के में बैठने केलिए कहेंगे । दस मिनट इक्का चलता रहेगा तो सारी बस्ती समाप्त हो जायेगी ।" [1] दर असल डेविड साहब और उसके युवा मित्र दोनों उस अनजान शहर में रह रहे हैं, जो कतई उनका अपना नहीं है । जिन लोगों की उधर पहचान बनती हैं, वे तो संभ्रान्त अदा के हैं । उनके लिये डेविड नामक प्रूफ रीडर और खटिया जासूसी नोवेल लिखनेवाले उसके मित्र की कोई मायने नहीं रखते । इस विस्थापन की मानसिकता से उबरने की खातिर दोनों का व्यवहार काफी दिलचस्प है । दोनों ग्रेटर कैलाश के बडे-बडे दूकानों में जाते हैं, जहाँ चमकदार जूते पहने हुये बडे-बडे लोग जाते हैं । उधर बडे फर्राटेदार अंग्रेज़ी बोलकर दूकान मालिकों को घबरा देते हैं –" डेविड साहब यहाँ कमाल की अंग्रेज़ी बोलते हैं –कन्धे उचकाकर और आँखें निकालकर । चीज़ों को इस प्रकार देखते हैं जैसे वे काफी घटिया हों । ....जलदी चलिये साला देखकर मुस्कुरा रहा है । कौन ? डेविड साहब पूछते हैं , मैं आँख

---

[1] केक, असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ,

से दूकान के अन्दर इशारा करता हूँ और वह अचानक दूकान के अन्दर घुस जाता है ......डेविड साहब दूकानदार से बहुत फरटिदार अंग्रेज़ी बोलता है और बेचारा घबरा रहा है। मैं खुश होता हूँ। ले साले कर दिया न डेविड साहब ने डंडा ! बडा मुसकुरा रहे थे। डेविड साहब अंग्रेज़ी में उससे ऐसा केक माँग रहे हैं जिसका नाम उसका बाप, दादा, परदादा ने भी कभी न सुना होगा।"[1] दोनों बलपूर्वक अपनी पहचान हथिया रहे हैं।

स्वयं प्रकाश की 'पार्टीशन' कहानी का सन्दर्भ ठीक उलटा है। बरसों से जिस मुल्क में जी रहा था, जिसे अपना मानता आ रहा था, एक सुबह खामखाह उसमें पराया होने की हकीकत वाकई दरदनाक हादसा है। कहानी का 'कुर्बान भाई' पर यह बात सही साबित होती है। कुर्बान भाई उस कसबे के शान्दार शख्स है। कसबे का दिल है आज़ाद चौक और ऐन आज़ाद चौके पर कुर्बान भाई की छोटी सी किराने की दूकान है। सबसे वाजिब दाम और सबसे ज्यादा सही तौल और शुद्ध चीज़ वहीं मिलती है। जिस चीज़ से उन्हें तसल्ली नहीं होगी, कभी नहीं बेचेंगे। कभी धोखे से दूकान में आ भी गयी तो चाहे पडी-पडी सड जायें, ग्राहक को साफ मना कर देंगे।

विभाजन के दौरान कुर्बान भाई ने भारत को ही अपना चुना था। लाखों मुसीबतों से गुज़रकर इसी मुल्क में अपनी एक पहचान बनायी थी। उस दौरान हिन्दुओं में निभने की कोशिश करता तो शक-शुबहे की बार्छियों से छेद दिये जाते और मुसलमानों में खपने की कोशिश करते तो लीगियों के धार्मिक उन्माद का जवाब देते-देते टूक-टूक हो जाते। उतरते गये थे मज़दूरी तक, हम्माली तक, छुट-पुट कारीगरी तक। नये -नये काम सीखे, साइकिल के पङ्चर जोडे, कनस्तरों की झालन लगाई, तले-चकत्तियाँ, लालटेन ठीक की .....चुनरी बान्धेज की रंगाई में काम किया,.......हाथी दांत की चूडियाँ काटी शहर दर शहर। इस

---

[1] केक, असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ,

दौरान कहीं से घिसट आकर उस बस्ति में वह अपना मकान खोला था और सबका मन- जीत बन गया था।

लेकिन एक दिन एकाएक पहचान का सिक्का पलटता है। देखते ही देखते वह 'कुर्बान भाई' से 'मियाँ' बन जाता है, अपने ही देश में पराया बन जाता है। एक दिन किसी मामूली बात पर वकील ऊखचन्द के हाली गोम्या उससे झगडता है। गोम्या उसे 'मियाँ' कहता है जिसे कुर्बान भाई को ऐसा लगता है मानो पीठ पीछे छुरी भोंक दी हो। झट से यों ही कुर्बान भाई से मियाँ बन जायेगा, उसने इस हकीकत की कभी उम्मीद नहीं थी -"मैं एक मिनट में कुर्बान भाय से मियाँ बन जाऊँगा, यह कभी सोचा क्यों नहीं ? अपनी मेहनत का खाते हैं, फिर भी ये लोग हमें अपनी छाती का बोझ ही समझते हैं। यह बात कभी नज़र क्यों नहीं आयी ? पाकिस्तान चले जाते .....तो लाख गुर्बत बर्दाश्त कर लेते....कम से कम ऐसी ओछी बातें तो सुननी नहीं पडती। हौफ है, धिक्कार है, लानत है ऐसी ज़िन्दगी पर.....।"[1] आखिरकार वह मुसलमानों के गठबन्धन में शामिल होता है।

स्वयं प्रकाश की 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा' कहानी में इन्दिरा गान्धी हत्या के बाद हुई सिख विरोधी दंगे के दौरान एक बूढे सिख सैलानी के साथ हुए अत्याचार का पर्दाफाश हुआ है। साढ सत्तर साल का वह आदमी रेल गाडी के उस डिब्बे का अकेला सरदार है। प्रत्येक स्टेशन पर डिब्बों की तलाशी ली जाती है। इसलिये ऊपरी बर्थ में बक्सों के बीच कम्बल ओढे वह बैठा था। सभी यात्रियाँ उन्हें हौसला दिलाते रहते हैं। जंगल में जब गाडी रोककर उसकी पूरी तलाशी ली जाती है और वह पकडा जाता है। गाडी में उसकी भीषण मार-पीट होती है। उनका सारा सामान जला दिये जाते हैं। कपडे तक फाड दिये जाते हैं । अचानक बाहर किसी और शिकार को पाकर सभी उसके पीछे भागते हैं और

[1] पार्टीशन, स्वयं प्रकाश, आधी सदी का सफरनामा, पृ.98

सरदारजी बच जाता है । यात्रियों में से कोई, जो तब तक चुप चाप देखता रहा था, उसे कपडा देता है तो कोई घावों पर मरहम लगाने का निर्देश देता है । लेकिन सरदार जी है कि वैसे का वैसा निर्भीक निशंकित –"लेकिन सरदार जी की आँखों में एक भी आँसू न थे ...न आँसू न बदहवासी न हताशा, मानो बस यही हुआ हो कि ऊँगली किसी भारी पत्थर के नीचे आ गयी हो ।"[1] उनका सारा धन लूट लिया गया था, हालांकि वे अपने साथियों से उधारी के तौर पर बस चाय का पैसा ही मांगते हैं । " अब पैसे पहूँच जाएँगे, पहूँच जाएँगे । बिलासपूर ही तो जाना है । सुबह तो आ ही जाएगा । आप तो मुझे बस चा-चू के पैसे दे दो बस । बिलासपूर में वापस कर दूँगा । फिर जो होगा देखेंगे ।"[2] न दुख, न द्वेष, न विद्रोह और न समझौता, जाना है, तो जायेंगे ही, जीना है, तो किसी भी हालत में जियेंगे बस ।

प्रत्येक देश के रीति-रिवाज़ अलग होते हैं, जो वहाँ के पर्यावरण के अनुकूल होती हैं उनके अपने होते हैं । इसलिये बाहर के लोगों के लिये वे वाकई अचरच की बात बन जाते हैं । ठीक उसी तरह बाहरी दुनिया से परिचित, शिक्षित युवा पीढी को उन रीति-रिवाज़ों की गलतियों को अपनाना भी बमुश्किल काम है । देहरादून के पहाडी इलाकों में प्रचलित एक रिवाज़ के अनुसार घर में केवल बडा भाई ही शादी कर सकता है । लेकिन उसकी औरत सबकी औरत मानी जाती है । प्रत्येक भाई को उस पर समान अधिकार । पुश्तैनी खेती के बँटवारे को रोकने केलिये बनाई गयी यह प्रथा बाहर के लोगों केलिये अक्सर मज़ाक का विषय बन जाती है । संजीव की 'हिमरेखा' कहानी का कपिल इलाहाबाद में पढाई के बाद घर लौट आया है । रिवाज़ के मुताबिक उसे अपनी भाभी के साथ रात गुज़ारना है, जिसे वह कतई नहीं मान सकता । भाभी उसके लिये माँ समान है । वह सिर्फ सात साल का बच्चा था

---

[1] क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा है, स्वयं प्रकाश, आधी सदी का सफरनामा,

[2] क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा है, स्वयं प्रकाश, आधी सदी का सफरनामा

जब भाभी घर लायी गयी थी । भाभी उसे इतनी भायी कि वह उन्हीं के हाथों खाना खाता,उन्हीं के कहने पर नहाने जाता और उन्हीं के साथ सोना चाहता था । भाभी उसके लिये माँ थी और अब उन्हीं के साथ रात गुज़ारने केलिये लोग उकसा रहे हैं, जिसे वह कैसे मान सकता है । उसका भाई भी उसको प्रेरित करता है –"जितनी मेरी है,उतनी तेरी भी । अमानत समझकर संभालता रहा अब तक तू छोटा था न, इसलिये । अब महाशु देव की कृपा से तू संभालने लायक हो गया है तो....."[1] आखिरकार वह मानने केलिये तैयार हो जाता है । उस रात भाभी बीवी बन जाती है। जबकि उसका दिमाग मानने केलिये कतई तैयार नहीं होता । "पहले के बुने सारे तर्क तार-तार हो चले हैं और वह हतप्रभ है । फिर वही वहशी आवाज़ें, कौतुक और हिकारत में पशुओं सी वह ऊटपटाँग हर्कतें । भाग खडा होता है वह भीड भेडियों सी पीछा करते हैं ।"[2] वह अपने आप से नहीं भाग सकता । वह एक कागज़ का चुटका निकालता है और उस पर यों लिखता है-तुम माँ थी, सिर्फ माँ , और उसे भाभी की ऊँगलियों के बीच फँसाता है और खेत में जाकर आत्महत्या कर देता है ।

उदय प्रकाश की 'बलि' कहानी में समान सन्दर्भ चित्रित है । 'लडकी' अपने बचपन से ही एक सम्भ्रांत मध्यवर्गीय परिवार के साथ रह रही है । उस घर से वह बहुत कुछ सीख लेती है, जो उसके गँवारूपन के सम्मुख काफी गरिमामय है । जैसे अच्छा खाना कैसे बनाया जाय, दूसरों से किस तरह पेश आय, दूसरों को कैसे खुश रखा जाय, साइकिल कैसी चलाई जाय आदि। इस तरह एक वरीय नागरिक के रूप में उसका पुनर्गठन होता है । वह अपने विरासत को पूर्णतया भूल जाती है । मगर शादी की उम्र में वह अपने गाँव लायी जाती है और एक निरे गँवार के साथ उसकी शादी रचा दी जाती है । उसके पतिदेव के सम्मुख पत्नी और भैंस में कोई अंतर नहीं । दोनों मार से ही काबू में आते हैं । पिटाई ज़रूरी है । कारण का

---

[1] हिमरेखा, संजीव, संजीव की कथायात्रा दूसरा पडाव, पृ. 372

[2] हिमरेखा, संजीव, संजीव की कथायात्रा दूसरा पडाव, पृ. 372

होना आवश्यक नहीं है, पत्नी की नियमित पिटाई ज़रूरी है । पत्नी को चाहिये थी कि वह पहली ही मार में रोयें या पलटकर वार करे, लेकिन 'मामी' के घर से मिली सीख उसे निश्चेत कर देती है -" लडकी को चाहिये था कि पहली चोट लगते ही दहाडे मारकर रोती या पलटकर वह भी मारती, जो हाथ में आये उसी से । इतने साल मामी के यहाँ नहीं रहती तो शायद ऐसा ही करती । लेकिन लडकी भूल चुकी थी ।"[1] पूरे एक साल की यातना के बाद वह आत्महत्या करती है ।

सांस्कृतित अंतर की व्यथा दिखाती कहानियाँ और हैं । असगर वजाहत की 'उनका डर' कहानी में प्रवासी समस्याओं को उजागर किया गया है । अहमद साहब अपनी मजबूरी अदा कर रहा है – "घर पाँच सौ डोलर भेज देता हूँ । खत आता है कि सबकुछ खर्च हो जाता है । यानी साढे तीन हज़ार खर्च हो जाता है । और मैं वहाँ पाँच सौ रुपया कमाकर क्या उन लोगों के पेट भरूँगा और क्या अपना ।"[2] ये लोग जिन परिवारों को अपने पीछे छोड आये हैं, उनके दोजख भरने केलिये इनको अपना पेट काटना पडता है । परिवार को अपने साथ बुला लेना भी उतना असान नहीं है –" बुला लें तो बच्चों को भी साथ बुलाएँ । तीन लडकियाँ और दो लडके हैं खुद के फसल के । इन सब का गुज़र मेरे एक कमरेवाले फ्लैट में तो हो नहीं सकता । तीन सौ डॉलर महीने का फ्लैट लेना पडेगा । बाकि बच्चों की तालीम और इधर-उधर में खर्च हो जायेगा। एक डॉलर नहीं बचेगा फिर परदेस में पडे रहने का फायदा?" [3]सबसे बढकर सांस्कृतिक विरासत को उतनी आसानी से हथिया लेना इनकी काबू के परे है-

---

[1] बलि, उदय प्रकाश, हंस, आगस्त 2006

[2] उनका डर, असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ, पृ.53

[3] उनका डर, असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ, पृ.53

"हमारे बच्चे उन्हीं स्कूलों में जाते हैं जहाँ अमेरिकन लडके-लडकियाँ जाते हैं। बच्चों के दिमाग पर उसी माहौल का असर पडेगा। क्या आप पसन्द करेंगे कि आप की जवान लडकी किसी लडके के साथ घर चली आये और आप से कहे कि यह हमारा बॉय फ्रेंट है जैसाकि अमेरिकी घरानों में होता है। और जनाब ऐसा होगा और ज़रूर होगा। क्या गैरण्टी है कि आपकी लडकी आपके कहने से शादी करेगी। अगर वह उसी माहौल में पली बढी तो उसी रंग में रंग जायेगी।"[1] उस आदमी का पारम्परिक भारतीय आत्मा इतना सांस्कृतिक पतन स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिये विदेश में मजबूरन वह अपने विस्थापन को भुगत रहा है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'खानाबदोश' कहानी की 'मानो' की राय में अपनी देश की सूखी रोटी भी परदेस की पकवान से अच्छी होती है। सुकिया और उसकी पत्नी मानो शहर के एक ईण्ट के भट्ठे में मज़दूरी कर रहे हैं। वे हज़ार ईण्ट की रेट से अपनी मज़दूरी लेते हैं। दिन भर का काम, रात का अन्धेरा, रिसती झोंपडी और ढिबरी की लौ की टिम-टिमाती रोशनी ही उनकी ज़िन्दगी है। फिर भी थोडा-थोडा बचाकर खुद का एक छोटा सा घर बनाने की आस उनमें गहन है।

इस बीच मालिक का बेटा सुबे सिंह की नज़र मानो पर अटकती है। मानो को पटाने केलिये उसे अपने कमरे में काम करने बुलाता है। लेकिन मानो के बदले जसदेव जाता है जो सुकिया-मानो के साथ काम करता है। इस पर सुबे सिंह बिगडता है और गुस्साकर जसदेव की खूब पीटाई करता है। पूरे भट्ठे उनके खिलाफ हो जाते हैं। उनकी मज़दूरी में कटौती होती है। एक दिन उनके बनाये पूरे ईण्टों को तोडे हुए पाकर सुगिया समझने लगता है कि वे लोग उनका घर बसने नहीं देंगे। वह मानो को लेकर अगली पडाव की तरफ एक दिशाहीन यात्रा शुरू कर देता है।

---

[1] उनका डर, असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ, पृ.55

काम की तलाश में शहर की तरफ निकलते दिहाडी मज़दूरों का संघर्ष मधुकर सिंह की 'हरिजन सेवक' कहानी में इस तरह अंकित है – शहर में हम इधर-उधर बिखर जाते थे। हमें आपस में पूछने का समय नहीं रहता था कि हम कहाँ-कहाँ काम करते हैं। शहर में जहाँ चौक है, खण्डहर है, वहाँ हम शाम को इकट्ठा होते थे और एक साथ गाँव की और चलते थे। हमारा गाँव शहर से दस मील दूर है। हम रोज़ शहर से दस मील पैदल आते और दस मील पैदल जाते थे। जब गाँव के सभी लोग सोये रहते, तब हम गाँव को छोड देते थे। और शहर में काम काज से छुट्टी मिलने के बाद नौ दस बजे रात में घर लौटते थे। हमारे बीच कुछ ऐसे भी थे जिनके पाँव सूज गये थे। बूढों और कमज़ोरों की तरह कुछ औरतें भी हमारे सिर पर मुसीबत थीं। एक बार तो ऐसा हुआ कि जब हम घर से निकले तो ज़ोरों की बारिश थी। रास्ते में कहीं छिपने का मतलब था मज़दूरी से हाथ धोना। चार-पाँच घण्टों तक हम भीगते हुए गये थे। हमारे साथ गणेसी की औरत थी उसके साथ साल भर का बच्चा भी था। वह बच्चे को घर पर छोड भी नहीं सकती थी। नतीजा यह हुआ कि शहर आते आते ठण्ड लगने से उसका बच्चा मर गया। गणेसी की बहू कलेजे पर पत्थर रख थोडी देर तक रोती-छछनती रही। फिर बच्चे को वहीं दफनाकर काम में जुट गयी "[1]मेहनतकश अवाम के सामने यही असलियत है।

बीमारी कोई गुनाह नहीं होती फिर भी उसकी वजह से समाज से अलग होने में मजबूर अवाम का चित्रण मिथिलेश्वर की 'अभी भी' कहानी में विद्यमान है। झगरू को कोठ लग चुकी है। इसलिये वह गाँव से अलग एक झोंपडी में अकेला रह रहा है। उसकी विस्थापित मानसिकता की अभिव्यंजना इस तरह हुयी है -शुरू-शुरू में झगरू गाँव से अलग सडक के किनारे एक झोंपडी में रहने केलिये अकेले आया था तब उसको सब कुछ उखडा-उखडा, अनपहचाना और भयावह लगता था। रात को वह डर जाता था। डर के कारण उसे

[1] हरिजन सेवक, मधुकर सिंह, व्यवस्था विरोधी कहानियाँ, पृ. 75

नीन्द नहीं आती थी ।तब वह झोंपडी से बाहर निकलकर सडक में आ बैठता था । फिर भजन गाने लगता था । इसी तरह रात के तीन पहर गुज़र जाते थे । फिर चौथे पहर से सडक से राहगीरों का आना-जाना शुरू हो जाता था । तब उसका एकाकीपन दूर हो जाता था । कोठी था, इसलिये लोग उसके पास ठहरते भी नहीं थे ।"[1] झगरू को एक तरह की देश निकाले की सज़ा ही दी गयी थी । लेकिन आदमी का यह प्राकृतिक गुण होता है कि हर स्थिति और हर समय के साथ वह समझौता कर लेता है तथा कहीं भी अपना संगी-साथी खोज निकालता है । झगरू ने भी ऐसा ही किया था । वह एक जंगली बिल्ली से दोस्ती कर लेता है –" जब फुगिया झगरू को खाना लेकर जाती है तब झगरू उस खाने का छोटा हिस्सा झोंपडी के बाहर दरवाज़े के पास रख देता था । वह जंगली बिल्ली नियमित आती थी और खाना खाकर चली जाती थी । फिर कुछ समय बिल्ली रुकने भी लगी थी । धेरे-धीरे एक ऐसी ही स्थिति आयी कि बिल्ली झगरू की देह में फुदकने लगी थी ।"[2] अपने विस्थापन से लडने का झगरू का यही अन्दाज़ है ।

विस्थापन वाकई लम्बी-चौडी समस्या है । यह मात्र अवाम की परिवेश तक सीमित नहीं है । जबकि काम की सिलसिले में अवाम को ही ज्यादातर इस मुसीबत से गुज़रना पडता है । विस्थापन अवांछित, निरुपाधिक या बलपूर्वक भी हो सकता है । काम की सिलसिले में अपने पले बढे माहौल से सुदूर किसी अनजान इलाकों में जाने की मजबूरी स्वैच्छिक विस्थापन है । केक, खानाबदोश, उनका डर जैसी कहानियाँ उदाहरण है । 'कूडा', 'अभी भी' जैसी कहानियों में विस्थापन बलपूर्वक होता है । इनमें विस्थापन अवाम पर थोपा गया है , चाहे वह विकास के नाम पर हो या सांक्रमिक बीमारी की वजह । 'पार्टीशन',

---

[1] अभी भी, मिथिलेश्वर, प्रतिनिधी कहानियाँ, पृ.16

[2] अभी भी, मिथिलेश्वर, प्रतिनिधी कहानियाँ, पृ.16

'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है' जैसी कहानियों में एक दिन अचानक कोई अपने ही मिट्टी पर पराया हो जाता है । इधर विस्थापन ज्यादातर मानसिक तौर पर है । 'हिमरेखा', 'बलि' जैसी कहानियाँ भी देखते ही देखते कहीं का न हो जाने की संवेदना प्रदान करती है ।

विस्थापन, चाहे वह किसी भी प्रकार का हो, अवाम उसे बडी सहजता से अपना लेते हैं । प्रत्येक देश, काल, प्रतिकूल वातावरण में अपने लिये अनुयोज्य साथी ढूँढने में वे सफल निकलते हैं । हालाँकि जहाँ कहीं वे आशाहीन हो जाते हैं , जब कभी उम्मीद खो बैठते हैं, उधर आत्महत्या की आड लेकर अपनी जीवन लीला समाप्त करने में भी उन्हें दोबारा सोचने की ज़रूरत नहीं है, बलि कहानी में ऐसी संवेदना अनुगूंजित है । जबकि अवाम का सबसे भव्य और भरोसेमन्द साथी आखिर मेहनत एवं आत्मबल ही है ।

अस्सियोत्तर कहानियों में वृद्धजन संघर्ष

वृद्धावस्था ऐसा एक मुकाम है जहाँ पहूँचकर मनुष्य स्वयं फालतू होने लगता है । शारीरिक कमज़ोरियाँ एक तरफा उन्हें मुख्य धारा से अलग कर देती हैं तो दूसरी तरफ अपनी बुनियादी ज़रूरतों की खातिर दूसरों पर निर्भर होना उनमें हीनग्रन्थी को भी जन्म देती है । अस्सियोत्तर कहानियों ने वृद्धजनसंघर्ष को भी अनदेखा नहीं किया है ।

"अभी हाथ पैर चलते हैं, ईमानदारी से मेहनत का कमाया खायेंगे ।"[1] असगर वजाहत की 'बच्चोंवाली गाडी' का अगनू यही फैसला है अपने बुढापे के आगे । तीस साल की चपरासीगिरी से सेवानिवृत्त होकर वह खुद का धन्धा शुरू करना चाहता है । 'बुढापा जवानी सब अगनू केलिये बराबर' है । वह दो बडे थैले खरीद लेता है और उसमें छोटे-छोटे

---

[1] बच्चोंवाली गाडी, असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ, पृ.59

राशन का सामान भरकर उन्हें अपने कन्धों पर लटकाते हुए पूरी बसती का चक्कर काटता है; लोगों की फर्माइश के अनुसार सामान बेचता है । वह पुराना सामान नहीं बेचता,ग्राहको की माँग को अतृप्त भी नहीं छोडता । जो सामान उसके पास नहीं है उसे वह अन्य दूकानों से खरीदकर ला देता । ग्राहकों को खुश रखने की खातिर उनसे वही दाम लेता जो उसका भाव होता है । लेकिन उसकी मेहनत और ईमान्दारी का कद्र किये बिना समाज उसका खूब उपभोग करता है । सामान मंगवाना, बर्तन धुलाना, बच्चों को स्कूल से लिवा लाना, कॉलेज में टिफिन बॉक्स दिलवाना आदि वे उससे बेगारी वसूल लेते हैं । धीरे-धीरे अगनू पूरे मोहल्ले का नौकर बन जाता है, जो केवल एक ही चाय में घर का पूरा सामान ला देता था । इस तरह अगनू का कारोबार डूबता चला जाता है और आखिरी दम तक काम करते-करते वह मर जाता है ।

हृदयेश की 'जो भडक रहे हैं' कहानी में एक सत्तर साल के बूढे का चित्रण हुआ है जो बेंच-कुरसी बुनने का अपना खानदानी कारोबार सम्भालता है । हालांकि ज़माना बदल चुका है। बुनी हुई कुरसियाँ अब 'औट ओफ फैशन' हो चुकी है । इसलिये बूढे के सामने काम की मन्दी आ पडी है । वह ज़माने को कोसता है जिसने काम की इतनी मन्दी ला दी कि उससे बेट-बहू और पोता-पोती जुदा हो गये और वह अब इतना भी नहीं कमा पाता है कि एक अकेले उसका भी पेट नहीं भर पाता । दो-दो चार-चार दिन ऐसे ही गुज़र जाते हैं । सुबह से शाम तक चक्कर लगाते टाँगें टूट जाती है और एक दमडी की भी बोहनी नहीं होती है । उम्र बडी बेदरदी से उसके जिस्म को रौंद रही है । कुछ दूर चलने या घण्टा-दो घण्टा चलने पर वह किसी दम फूले टट्टू की तरह हाँफने लगता है । उसे अपनी पुश्तैनी कारोबार छोडने की हिदायत दी जाती है, लेकिन वह नहीं जानता कि इस उम्र में दूसरा कौनसा काम कर पायेगा । 'जब जवानों को नहीं मिलती है तो कब्र में पैर लटकाए बूढों को कौन देगा ।' पहले उसका बेटा भी यही काम करता था फिलहाल वह राजगीर बन गया है । काम की ज्यादा सम्भावना की वजह सपरिवार पाकिस्तान चला गया है । वह बेटे के साथ जा नहीं पाया

।इसलिये कि उसे यह मिट्टी उतनी प्यारी है –"मगर उसे यहाँ की मिट्टी इतनी प्यारी थी कि वह उसे छोड नहीं सकता था । वह यहाँ की मिट्टी में पला है और यहीं सुपुर्देखाक हो जाना चाहता है । यहीं उसकी बीवी की कब्र है और उसकी बगल में ही सो जाने की उसकी ख्वाहिश है ।"[1]

वह बूढा इनसान अपनी बीवी की कब्र पक्का बनवाना चाहता था । मगर पेट भरने के लायक भी पैदा न हो तो फिर बचाया कैसे जाये ? कभी-कभी नौबत यहाँ तक आती कि उसे एक या दो जून भूखे ही रहना पडता था । चाहता था कि वह अपनी मैयत केलिये भी कुछ पैसे छोड जाये, ताकि कफन वगैरह केलिये चन्दा न हो और उसकी लाश किसी केलिये बोझ न बने। ज़िन्दगी भर वह अपनी बीवी को अपने हाथों से पैदा कर खिलाया है । तो मरने पर उसकी निशानी कायम रखने केलिये उसकी कब्र को पक्का बनाने का पैसा भी वह अपना पैदा हुआ ही खर्च करना चाहता है, हालांकि यह सपना उसके बूते के बाहर हो चुका है । फिर भी उम्मीद है। इसलिये कहानी के अंत में काम तलाशता घर-घर झांकता वह बूढा घिसटता हुआ चला जाता है।

संजीव की 'प्रेतमुक्ति' कहानी में एक बूढे कर्मठ इनसान का चित्रण हुआ है । कुनबे का प्रधान निजी लाभ की खातिर इलाके की एकमात्र नदी के बीच बान्ध बनाये रखा है । इस वजह जंगल की आबोहवा, जीव-जंतुओं का आवास, आदिवासियों की खेती सब उजडी हुई है । प्रधान की खेती में दिहाडी मज़दूरी के अलावा उन मासूमों का कोई चारा ही नहीं रह गया है । काम करें तो भी क्या, बदले में केवल नाममात्र मज़दूरी या एक या दो वक्त की दाल-रोटी ही नसीब। उसका बेटा मुखिया के आतंक से बच निकलकर शहर गया हुआ है और मज़दूरी करता है । बाँध की वजह से ज़मीन बंजर हो रही है, ढोर-डाँगर, पशु-पक्षी-आदमी सभी पानी केलिये तरस रहे हैं । सबकी भलाई बाँध को तोडने में है । तिलेसर महतो उधर आये

[1] जो भडक रहे हैं, हृदयेश, दस प्रतिनिधी कहानियाँ, पृ.28

सभी सरकारी अफसरों को बता-बताकर थक चुका है कि बाँध नाजायज़ है, गंगा मय्या को रोकी हुई है, सभी जानवर-पंछी-आदमी मरनेवाले हैं । जबकि उधर जो भी अफसर आते हैं, उलटे मुखिया के भाई-बन्धु बन जाते हैं । अखिरकार चलित्तर महतो अकेले 'खिलाफत' लडता है । जब-कभी मौका मिलता है वह बाँध काट लेता है । मगर सीनाजोरी आखिर पकडी ही जाती है और चलित्तर महतो मुखिया द्वारा शेर की आखेट में ज़िन्दा शिकार बनकर मौत के घाट उतरा जाता है। बुढापे में भी दुगुना जोश, जो नौजवान भी रख नहीं पाते हैं, चलित्तर महतो को इलाके का इकलौता वीर साबित कर देता है ।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'अम्मा' कहानी की अम्मा बूढापे में भी मेहनत को सुखद अनुभूति की तरह महसूस करती है । वह बेटे से कहती है –"तेरे बापु रिटायर हुए तो जो पैसे मिले थे, उनसे सरदार का करजा उतार दिया । इब तो ज़िन्दगानी थारे ही भरोसे हैं ....जब किरणलता (उसकी बेटी) अपने जातकों को लेके आवे हैं तो उसके खाली हाथ पे कुछ रखने केलिये तो मेरे पास कुछ होणा चाहिये । कब तक तेरे से मांगूँगी....न बेट्टे ...उस सुख की खातिर काम करना पड रहा है तो आखिरी साँस तक करूँगी ।"[1] वह बूढी औरत मरते दम तक स्वाश्रय रहना चाहती है ।

अम्मा को मेहनत की रोटी ही पचती है । लेकिन बूढापे में ऐसा भी मुकाम है जहाँ आकर इनसान अपनी मेहनत करने की ताकत से वंचित हो जाता है । कहानियाँ इसको भी उजागर की हैं । डॉ. सी.बी.भारती की 'भूख' कहानी में एक बूढा आदमी पाँच सौ रुपये में अपनी फूल सी बेटी को बेच देता है । भूख के सम्मुख इनसानियत और हैवानियत का फरक वह समझ नहीं पा राहा है । अमर गोस्वामी की 'बाबुलाल का परिवार' कहानी का बूढा आँतडों से लडे-हारे भीख माँगने निकलता है । घर में बेटे-बहू तो काम करने जाते ज़रूर हैं,

---

[1] अम्मा, ओम प्रकाश वाल्मीकि, सलाम, पृ. 127

लेकिन बेटे की कमाई दारू में खतम और बहू की आमदनी चूलहे में खतम । जिस दिन दोनों के बीच झगडा होता है या बहू काम करने नहीं जाती है, घर में बच्चे-बूढों केलिये खाना नदारद । लेकिन भूख भी कभी मौका देखकर आता है क्या ? आखिरकार किसी की सलाह लिये बिना अन्धा बूढा भीख माँगने निकलता है ।

स्वयं प्रकाश की 'क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा है' कहानी का सरदार जी कोई सत्तर-साढ साल का है । चाहे जितना भी टाँग अडाए कोई, जहाँ जाना है, सरदारजी जायेंगे ही अलबत्ता।सिख विरोधी दंगे के दौरान रेल गाडी में भरी भीड के सामने वह पिटा जाता है । पैसा, टिकट, बक्सा, सामान सब कुछ आग की होली में जल-भुन जाते हैं । कपडे तक फाड दिये जाते हैं । खून से लथ-पथ है मगर सरदारजी का सैर जारी है । उसे अपने सहयात्रियों से बस इतनी ही ख्वाहिश है कि वे उन्हें केवल 'चा-चू' (चाय) का पैसा दे दे ;बिलासपूर पहूँचने पर वह भी लौटा देंगे बस –"अब पैसे पहूँच जायेंगे, पहूँच जायेंगे । बिलासपूर ही तो जाना है । सुबह तो आ ही जाएँगे । आप तो मुझे कुछ चा-चू के पैसे दे दो । बिलासपुर में वापस कर दूँगा ।"[1]

सेवानिवृत्ति बुढापे की अहम समस्या है । अपनी व्यस्त ज़िन्दगी से अचानक एक दिन उखाड दिये जाना और स्वयं हाशियेकृत होना एकतरफा मानसिक डावंडोल का कारण बन जाता है । घर में अगर बेकार बेटे और बिनब्याही बेटी पडी है तो मामला वाकई बिगडता है । कैलाश कल्पित की 'पिता' कहानी के बैजनाथ के सम्मुख समस्या समान है । बेटा सतीश बेकार है; बेटी बिट्टो की शादी पक्की है और बाप रिटायर होनेवाला है । उसकी योजना थी कि अवकाश ग्रहण करने के चार साल पहले सतीश की नौकरी अगर लग जाए तो बिट्टो के विवाह भर का पैसा जुटा लेगा । किंतु यहाँ पैसा जोडने तो दूर, एक हज़ार रुपया नौकरी के

---

[1] क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा है , स्वयं प्रकाश, आधी सदी का सफरनामा,

फ़ॉर्म माँगने में, डाक टिकटों में और रेल भाडे में खर्च हो गये बस । कहीं भी नौकरी नहीं लगी । फिलहाल बिट्टो को लडका मिल गया है । लेकिन शादी में पन्द्रह हज़ार खर्च होता है । पाँच हज़ार तो नकद ही देना है । रिटायर होने पर पन्द्रह बीस हज़ार की जुगाड लग जायेगी। लेकिन सतीश अगर नौकर नहीं हुआ तो फिर कंगाल रह जायेगा । अर्थात बैजनाथ की सारी उम्मीदें बेटे की नौकरी पर है, जो ईद का चांद दिखता है । अब ऐसा कोई मायाजाल ही चाहिये जिससे बेटे को नौकरी भी मिले लडकी की शादी भी हो जाये । दफतर का चपरासी एक तरकीब बता देता है कि काम करते करते मर जाय-"नौकरी करते हुए मर जाय, सुना है नौकरी करते हुए मर जानेवालों के लडकों को बदले की नौकरी मिल जाती है ।"[1] नतीजतन बैजनाथ दुबे वही तरकीब अपना लेता है । चलती ट्रेन के सामने कूदकर वह अपनी मौत की दुर्घटना रचा देता है । इस तरह बेटे को अपनी बपौती माफिक, पेट पालने की तर्कीब, नौकरी छोड जाता है ।

स्वयं प्रकाश की 'तीसरी चिट्ठी' जीने की अलग तरकीब प्रस्तुत करती है । कहानी की 'रजनी शर्मा' के पिता का घडी का अच्छा खासा कारोबार था । वक्त के साथ उसका कारोबार भी चौपट हो जाता है । मेकैनिकल घडियाँ 'औट डेटेड' हो चुकी है और डिज़िटल घडियों की अन्दाज़ देखते ही देखते बदल जाती है । उसकी तो मानो केवल घडियों की सुइयाँ ही चलती थी। कारोबार को मदिरा ने पूरी तरह से डुबो दिया । इधर-उधर से करज लेकर दोनों बडे बेटियों की शादी रचा दी और अब डूबते को तिनके समान घर में बच गयी छोटी लडकी रजनी, जिसकी पेट पालने तक की नौकरी लग चुकी थी । शुरू-शुरू में बेटी की कमाई का खाने में उसे खिन्न आने लगती थी, जबकि धीरे-धीरे वह उसका इतना आदी हो जाता है कि कमाऊ बेटी की शादी नहीं करना चाहता है, जैसे दुधारू गाय को बेचना किसान

[1] पिता, कैलाश कल्पित, विद्रोह की कहानियाँ, सं. गिरिराज हरण, पृ.16

को अखरता है । शादी के प्रस्तावों को बिना देखे-पलटे वह लौटाने लगता है –" किसी की नाक टेठी लगती, किसी की आमदनी कम लगती, किसी का खानदान ढंग का नहीं होता, कोई दूर नौकरी कर रहा होता । उतनी दूर कहाँ जायेगी हमारी बेटी । कोई दुख-दर्द हुआ उसको तो कैसे सम्भालेंगे ?"[1]उसकी बेटी वाकई दुधारू गाय है जिसे वह बेच नहीं सकता ।

राजी सेठ की 'योगदीक्षा' कहानी में भी समान सन्दर्भ चित्रित है । घर की कमाऊ लडकी की शादी टालकर उससे छोटियों की शादी कराने केलिये एक माँ बेचैन होती है । उसकी बडी लड्की अपनी आस्त्मा की बीमारी के बावजूद सुबह- सुबह तीन-तीन घरों में योगा की शिक्षा देने जाती है । वह उस घर के कमाऊ हाथ है । इसलिये माँ अपनी छोटी लडकियों को उन्हीं की पनाह पर नदी पार कराना चाहती है -"सुन...माँ उस सन्नाटे में कुछ ऐसी बोली जैसे कोई भेद की बात कहने जा रही हो । अब दीपी-मुन्नी केलिये दो-दो चार-चार चीज़ें बनने की फिकर ....। अगले अगहन में दोनों के हाथ पीले हो जाये, तो गोपाल की तो कोई बात नहीं ।"[2]

बुढापे में काम आने केलिये बचाके रखी संपत्ती भी कभी बुढापे का अभिशाप बन जाती है । उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का करधन' और मिधिलेश्वर की 'जी का जंजाल' कहानियाँ कुछ इस तरह की संवेदनाएँ प्रदान करती हैं । 'छप्पन तोले क करधन' कहानी की बूढी दादी से जुडकर अफवाहें फैली हुई है कि उसके पास पति द्वारा सौंपा गया छप्पन तोले सोने का करधन है, जिसे उसने कहीं छिपाया है। वह करधन घर की बदहाली में काम आ सकता है । इसलिये बहू-बेटे उसे हथियाना चाहते हैं ।वे दादी को अन्धेरी कोठरी में बन्द कर देते हैं । कभी लगातार दस-पन्द्रह दिनों तक उसे खाना नहीं दिया जाता तो कभी उसकी

---

[1] तीसरी चिट्ठी, स्वयं प्रकाश, आधी सदी का सफर्नामा,पृ. 215

[2] योगदीक्षा, राजी सेठ, नौकरी पेशा नारी कहानी के आयिने में, सं. गिरिराज शरण, पृ. 120

थाली में मिट्टी मिलाकर सामने रखे जाती है। परिवारवाले हर पल इस इंतज़ार में हैं, दादी आखिर कब मरें। वाकई दादी इतना भी नहीं बताती कि उसके पास करधन है कि नहीं। वह जानती है कि करधन की चाहत परिवार की जादू की झडी है –"अभी तो बेटा बहू दाल-भात तो ड्योढी पर रख जाती है, करधन मैं ने दे दिया तो फिर कौन सी आस रह जायेगी ? करधन हो न हो वह मेरे लिये और तुम सबकी आस केलिये ज़रूरी है बेटा।"[1]

'जी का जंजाल' कहानी की माँ के पास भी थोडा पैसा बचा है, जिसे उसके पति ने बुढापे की आसरा बतौर सौंप दिया है। अब उस पर बेटों की नज़र पडी हुई है। चारों लडके मिलकर उस रकम को चार अलग-अलग किश्तों की फिक्सड दिपोसिटों में बाँट रखे हैं। जिस तरह पैसे को बाँटा है, ठीक उसी तरह माँ की ज़िम्मेदारी को भी बाँट रखा है। चारों पुत्र महोदयों ने मिलकर यह पारी निर्धारित कर रखा है कि माँ प्रत्येक के घर में तीन महीने रहेगी। लेकिन अचरज की बात यह है कि जिसके यहाँ माँ की पारी होती है, न जाने किस मायाजाल से, उस घर में अचानक सूखा आ टपकता है। उसके यहाँ माँ बोझ बन जाती है। बहुएँ ताने देने लगती हैं और उपेक्षापूर्वक बाज़ी और अरुचिकर भोजन देते हुए चाहती हैं कि जल्द- से –जल्द उनकी पारी खतम हो जाए। लेकिन उसके पैसे के प्रति कोई घृणा का भाव नदारद। फलतः माँ भी निर्णय ले लेती है कि जीते जी अपना पैसा हर्गिज़ नहीं छोडेगी। 'उनके नाम पर रुपये हैं तब तो उनकी यह स्थिति है, अगर रुपये नहीं रहेंगे तो बहुएँ पारी पर भी उनको नहीं पूछेंगी, दुत्कार देंगी।"[2]

मेहनतकश अवाम के सामने जवानी बुढापा का कोई अंतर नहीं हैं। जवानी में महनत करता है तो बुढापे में उससे ज्यादा मेहनत करना पडता है। जवानी में तन के बल पर जीते

---

[1] छप्पन तोले का करधन, उदय प्रकाश, तिरिछ,

[2] जी का जंजाल, मिथिलेश्वर, दस प्रतिनिधी कहानियाँ, पृ. 87

हैं तो बुढापे में एकमात्र आसरा मनोबल ही है । आखिरी साँस तक कर्मरत होने की उनकी लालसा 'अम्मा', 'जो भटक रहे हैं', 'बच्चोंवाली गाडी' जैसी कहानियों में दिखाई देती हैं । भूख तथा अकाल कभी-कभार नैतिक पतन की प्रेरणा देती तो ज़रूर है- भूख, बाबुलाल का परिवार, योगदीक्षा, तीसरी चिट्ठी जैसी कहानियाँ उदाहरण हैं । घर के कमाऊ हाथों की छाया में खुदपरस्त बनते वृधजन भी मौजूद है, हालांकि खुद की बलि चढाकर पारिवार की नैया को पार कराते अनोखी वृद्धजन संघर्ष अन्यत्र दुर्लभ हैं।

पीढी परक अंतर अस्सियोत्तर परिवेश को खासियत प्रदान करती है । स्वावलंबन की अहमियत वृधजन संघर्ष को और गहाराती है । आर्थिक विरासत को पूर्णतया बच्चों पर छोडने से आज वृद्धजन हिचकने लगे हैं, मानो बच्चे भरोसेमन्द नहीं बचे हो । ऐसे माहौल में अकेलेपन का दंश ओर भी दर्दनाक होने लगता है । हालाँकि मेहनतकश अवाम के सम्मुख परिवेशगत खासियत यही है कि पेट की लडाई में उन अधूरे एहसासों की तरफ बहुत विरले ही उनका ध्यान जाता है । उनके हिस्से में आखिरी दम तक संघर्ष करना ही लिखा है और उनकी चाहत कोई दूजी नहीं है ।

शिक्षित युवा पीढी का संघर्ष

दर असल शिक्षित युवा पीढी पर उम्मीदों का बोझ है । देश को भविष्य तक ले जाने का दायित्व उन पर मानो थोपा गया है । इस वजह उनकी संघर्षचेतेना के अन्दाज़ का मूल्यांकन ज़रूरी है।इस परिप्रेक्ष्य में सामाजिक चेतना से वैयक्तिक कामनाओं की तरफ मूल्यांतरण के तीव्रगमन को अस्सियोत्तर कहानियों ने वाणी दी है ।

देवेन्द्र इस्सर की 'मफ़रूर' कहानी में संघर्ष तथा समझौते के बीच बंधी तनी डोर से ग़ुज़रते युवा मन का पृस्फुटीकरण है । गली के प्रत्येक सुनसान मोड पर एक आदमी कथावाचक से आ मिलता है और एक 'दुधारू चमकती चीज़ को कथावाचक के हाथों पकडाने की कोशिश करता है –" जब भी मैं भरे-पूरे बाज़ार से तंग सडक पर या किसी गली

में मुडता हूँ या बाइलाइन में दाखिल होता हूँ , वह मुझे मिल जाता है और रोक लेता है । मालूम नहीं कि वह कबसे मेरा पीछा कर रहा है । वह हमेशा इसी ताक में रहता है कि जब भी मैं कहीं कभी अकेला हूँ या किसी कम भीड-भाड वाली जगह या सुनसान स्थान पर हूँ, वह मुझे रोक ले । मगर मैं हमेशा उसकी दामन बचाकर निकल आने की कोशिश करता हूँ। मुझे तो यह भी सन्देह है कि वह मुझसे कभी अलग भी हुआ है ।"[1] दर असल यह उसकी अपनी आत्मा के साथ संवाद है, जो उसे सत्ता के खिलाफ 'दोधारू चमकती चीज़' यानी विद्रोह धारण करने की प्रेरणा देती है । लेकिन कथावाचक है कि मानो पूरी तरह पस्त है । उसमें लडने की कूवत शेष नहीं रह गयी है–"आज समस्त मूल्यों का भ्रम खुल चुका है । आज समस्त राजनीति सत्ता के संघर्ष में बदल गयी है । आज समस्त ऐडियोलॉजि झूठी और भ्रामक सिद्ध हो चुकी है । ....शब्द और अर्थ का रिश्ता टूट चुका है।"[2] उसकी आत्मा उसे उकसाने की कोशिश करती है लेकिन दिमाग का मायाजाल उसे वाकई मानने केलिये तैयार नहीं होता । " तुम मुझे छोड दो मेरे हालत पर दया करो, मेरे बीवी-बच्चे हैं । मुझे क्यों परेशान कर रहे हो ? मैं हर क्षण इस भय से आतंकित रहा हूँ कि न जाने तुम कब कहाँ मुझे मिल जाओ। मुझे छोड दो वरना में मर जाऊँगा ।" [3] वह हालातों से पूर्णतया समझौता कर चुका है , जबकि उसकी विद्रोही आत्मा कदापि हार नहीं स्वीकारती है । कहानी के अंत में वह अपने आप से भागते हुए चित्रित किया गया है ।

समझौता एवं संघर्ष की लडाई संघर्ष की जीत भी कहानियों में चित्रित है । नफीसा अफ्रीदी की 'आत्महंता' कहानी का वह अन्याय के सामने चुप नहीं रह सकता –"कैसी

---

[1] मफरूर, देवेन्द्र इस्सर, व्यवस्था विरोधी कहानियाँ, सं. गिरिराज शरण, पृ. 34

[2] वही

[3] मफरूर, देवेन्द्र इस्सर, व्यवस्था विरोधी कहानियाँ, सं. गिरिराज शरण, पृ. 36

धान्धली मची रखी है इन बबुओं ने । रिश्वत खाना चाहते हैं । मेरे रहते यह सब नहीं चल सकेगा ।"[1] हालांकि उसके घर की हालत काफी बिगडी हुई है । पिताजी मर चुके हैं । भाई पुलिस की हवालात में है, भाभी तपेदिक की मरीज़ होकर खाँसती रहती है लगातार और उसकी पढाई भी कगार पर खडी है । घर में पूरे सात जन और उन सबका बोझ एक अकेले उसके कन्धों पर । इसलिये वह समझौता केलिये हामी भरता है । " शायद मैं यह सब छोड दूँ । अब और कुछ नहीं हो सकेगा । एक अकेला आदमी कब तक लडता रहे ? मेरे साथ के लोग बहुत आगे बढ चुके हैं और मैं पीछडता चला गया हूँ ।"[2] वह पढाई में ध्यान देने लगता है, मगर उसे अपनी पढाई ज़ारी रखने केलिये कॉलेज में हलफनामा देना पडता है कि आइन्दा वह कोई बखेडा नहीं खडा कर देगा । लेकिन खून का खौलना आखिर किसकी बस की बात है । वह अपने आप को ज्यादा दिन रोक नहीं रख पाता है । कहानी के अंत में ठीक अपने सालाना इम्तिहान के दिन अपनी बस्ती को गिराये जाने से बचाने केलिये वह बुल्डोज़र के सामने खडा हो जाता है । और ऐलान करता है–" आज बुलडोज़ेर हमारी छातियों पर चलेंगे । हम अपनी बस्ती नहीं उजाडने देंगे । बुलडोज़रों के नीचे हमारी लाशें बिछ जायेंगी।"[3] जबकि कहानी तिरस्कार भरी संवेदना के साथ समाप्त होती है । कथावाचक अंत में इस तरह बताता है कि 'अब उसे कोई नहीं बचा सकता था'

शिवमूर्ती की 'भरतनाट्यम' कहानी में व्यवस्था से मेल जोडने में असमर्थ युवा पीढी का संघर्ष चित्रित है । 'वह' किसी के अधीन रहना नहीं चाहता; इस वजह दो-दो नौकरियाँ छोड चुका है । यद्यपि वह घर में भी नालायक है । पिता की राय में वह गधे से भी बदतर है

---

[1] आत्महंता, नफीसा अफ्रीदी, विद्रोह की कहानियाँ, सं. गिरिराज शरण, पृ.39

[2] आत्महंता, नफीसा अफ्रीदी, विद्रोह की कहानियाँ, सं. गिरिराज शरण, पृ.39

[3] आत्महंता, नफीसा अफ्रीदी, विद्रोह की कहानियाँ, सं. गिरिराज शरण,

चूँकि गधे को भी चौदह साल अगर पढाया जाये तो वह आदमी बन जाता । लेकिन उस नौजवान की बात अलग है । पिता ने ही स्थानीय प्राइवेट हाई स्कूल के मैनेजर-अध्यक्ष आदियों की चापलूसी कर-करके उसे गणित के अध्यापक की नौकरी दिलायी थी । लेकिन वह स्कूल था कि शोषण का अड्डा । 'वह' दस्तखत करता था डेढ सौ रुपये की पर्ची पर और उसे तनख्वाह मिलती थी सिर्फ पचहत्तर रुपये महीने । उसमें से पाँच रुपये प्रति माह अनिवार्य रूप से 'बिल्डिङ फण्ड' में कट जाते थे । लेकिन बात यहीं तक समाप्त नहीं होती थी । इण्टर्वेल में मैनेजर के और अध्यक्ष के बेटे-बेटियों को निशुल्क ट्यूशन पढाना पडता था । वह भी आठ पीरियडों में से एक भी वेकेंट न मिलने के बावजूद । कुछ ऐसी स्थितियाँ होती थीं जिसे झेल पाना उसकी बस की बात नहीं थी। मैनेजर और अध्यक्ष के घर में कोई उत्सव होता तो स्कूल के अध्यापकों को वहाँ व्यवस्था सम्भालने केलिये पहूँचना होता था । ऐसे मौकों पर विद्यालय के बच्चे भी दर्शक अथवा आमंत्रित के रूप में उपस्थित रहते थे । छठी-सातवें कक्षे के बच्चे भी समझने लगते थे की वे सब किराये के टट्टू है । इन सबके बावजूद स्कूल में मास्टरों के पार्टीबन्दी भी जाति के आधार पर । प्रत्येक दिन छोटी-छोटी बातों पर पार्टीपरक महाभारत । हालांकि इस पर कोई भेदभाव नहीं थी कि किसी न किसी तरह बच्चों से पैसा हडपा जाये चाहे वह गुरुदक्षिणा के आभूषण पहनाकर ही क्यों न हो। वसूले गये रुपयों का भारी हिस्सा प्राध्यापक के हिस्से में रहते थे और बची हुई रकम अध्यापकों में समान हिस्सों में बाँटे जाते थे । कथावाचक उन पैसों को छूना भी अपमान महसूस करता था और उसने खुला प्रस्ताव रखा था कि -" अधिकाँश धन जबरदस्ती वसूला गया है और उसमें से तिरस्कार और अपमान की बू आ रही है । इसलिये यह रुपया मैं छुऊँगा भी नहीं हिस्सा लेना तो दूर की बात है ।"[1] इस पर उसे इस्तीफा देना पडता है ।

---

[1] भरतनाट्यम, शिवमूर्ति, केशर-कस्तूरी, पृ. 80

उसकी दूसरी नौकरी सचीवालय में लगी थी । उधर उसे अपने साथियों में केवल कूपमण्डूकता ही दिखी थी । दिल्ली में रहते हुए भी वे कभी कुतुब-मीनार, राजघाट या शांतिवन नहीं देखे थे । सबकी दुनिया नितांत सीमित थी, दफतर और परिवार बीच में कुछ नहीं । अनुशासन और व्यवस्था के नाम पर सब अपने बॉस के हाथों की कठपुतली बने रहते थे । बॉस के बातचित-व्यवहार का तरीका था भी बहुत भयावह । उधर बॉस की गुड-बुक में होना इस बात पर निर्भर नहीं था कि आप कितने हार्डवर्कर हैं, बल्कि इस बात पर कि आप कितनी चाप्लूसी कर लेते हैं, उनसे कितना ज्यादा डरते और कितनी कम बातें करते हैं । उसके घर में कितनी बार सलाम करने जाते हैं और उनके बच्चों के जन्म-दिन पर कैसा उपहार ले जाते हैं । कथावाचक समझौता करने की कोशिश करता ज़रूर है लेकिन उससे सम्भव नहीं हुआ था । एक बार डाँट-फटकार सुनते-सुनते उसका होश उड गया था और गुस्से में उसने बॉस की नाक तोड दी थी । इस तरह दूसरी नौकरी से भी मिली छुट्टी । फिलहाल वह बेकार है, बीवी-ब्च्चों के सबसे छोटी ख्वाहिश को भी पूरा कर नहीं पा रहा है ; अतः वह घर में फालतू बन गया है। आखिरकार उसकी बीवी किसी गैर के साथ भाग चली जाती है और वह सुध-बुध खोकर अपनी ज़मीन में भरतनाट्यम करने लगता है ।

संजीव की 'अल्लाहरखा, दर्गाह और मूरतें' कहानी में साँप्रदायिकता के खिलाफ आवाज़ उठाते तीन शिक्षित युवकों का चित्रण हुआ है । रामलगन, याकूब और कंवलजीत, तीन जोशीले नौजवान सांप्रदायिक दंगे के दौरान आतंकित गलियों में जाकर भीड को नेह का सन्देश प्रदान करते हैं । रामलगन कहता है –" देश एक दरिया है जिसमें कहाँ कहाँ से पानी आकर सदियों से समाता रहा है । कई हमलावर जातियाँ आयीं – आर्य, यूनानी, शक, हूण, तुर्क, मुगल और यॉरोप के लोग । हार-जीत, हैसियत और चालाकियों के हिसाब से मुगलों से पहले भी लोग फिरकों और जातियों में तकसीम होते रहे और उनके बाद भी । मगर और कौमों को कमोबेश मिलकर साथ भी रहने लगी, मुसलमानों तक आते-आते हार-

जीत के मसले और कट्टरता की खोल के चलते पूरी तरह एक होने की राह में रुकावट आ गयी । पहले भी आपसी फूट का लाभ हमलावर लेते रहे, बाद में अंग्रेज़ों ने लिया और हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को उनका गुलाम बनना पडा, पर जाते जाते देश तकसीम कर गये हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में । दुख की बात है कि हम फिर उस फूट की कगार पर ला खडे किये जा रहे हैं । हम अपने हिन्दू भाइयों से कह रहे हैं कि कट्टरता छोड दें । सच तो यह है कि हम जिसे भारतीय संस्कृति कह लेती है, वह कोई अकेली चीज़ नहीं, बल्कि अलग-अलग पानी से बनी साझे की संस्कृति है । आज कोई नदी से कहे कि यह पानी लौटा दे तो यह मुमकिन है ?"[1] याकूब बोलता है-" हम अपने मुसलमान भाइयों से भी अपील करते हैं कि कट्टरता छोड दें । जोश में आकर सिर्फ हिन्दुओं को नीचा दिखाने की खातिर पाकिस्तान की हिन्दुस्तान के ऊपर जीत की जश्न मनाना उन्हें खुद शक के कठघरे में खडा कर रहा है कि वे दिल से हिन्दुस्तान को अपना वतन नहीं मानते हैं और पाकिस्तान को अपना वतन मानते हैं । हमें मालूम हैं कि सारे के सारे मुसलमान ऐसे नहीं, ये सिर्फ चन्द मनचलों की करतूत हैं । लेकिन बाकी लोग ऐसी करतूतों की मुखालफत केलिये कब सामने आयेंगे ? कान खोलकर सुन लीजिये न पाकिस्तान आप को जन्नत बखशने जा रहा है न अरब के इस्लामी देश । सो पानी में रहना है तो पानी बनकर रहे, पत्थर बनकर नहीं मिल सकते पानी में । याद रखिये मज़हब और धरम की चाभी ऐंठनेवाले और हैं और पिटनेवाले सूरदास और नूरे कोई ओर । आपको मज़हब के नाम पर बाँटकर रोटी, रोज़ी और इज्जत की बुनियादी लडाई से आपको अलग कर देने की साजिशें हैं "[2] आगे कँवलजीत ज़ोर से कहता है –" ज़रा सोचिये भगवान और खुदा ने इतनी बडी कायनात बना दी है, कहीं भी बना ले मज़ार, कहीं भी बना ले मन्दिर, लेकिन इस टोले पर ही क्यों ? सालों साल न यहाँ न किसी ने दिये जलाये, न कभी किसी ने एक धूपकाढी सुलगाई । खुराफात से सर उठाते ही मुसलमानों ने इसे आदम

---

[1] अल्लाहरखा, दरगाह और मूरतें, संजीव, संजीव की कथा यात्रा:दूसरा पडाव, पृ. 103

[2] अल्लाहरखा, दरगाह और मूरतें, संजीव, संजीव की कथा यात्रा:दूसरा पडाव, पृ. 105

साहब की मजार बताना शुरू किया, हिन्दुओं ने पुराना मन्दिर । जब तक यह मज़ार मन्दिर नहीं थे लोग मिल्लत से रहते रहे, इनके आते ही एक-दूसरे के खिलाफ हो गये । सोचिये जिसे आप परवरदिगार और घर-घर व्यापी बताने नहीं थकते, उसे ही नफरत का बायस बनाना क्या उसकी तौहीन नहीं हैं ? या तो आपका ईस्वर, खुदा, रूह और आत्मा का फलसफा मनगढंत है, या आप उसे मानते नहीं । खुदा और ईस्वर केलिये अपनी हर भडास को उनका हुक्म बताकर भोले-भाले लोगों को उल्लू न बनाए ।" [1] लेकिन कहानी के अंत में तीनों की मौत अनिवार्य बन जाती है ।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' कहानी में जातिपरक भेदभव के खिलाफ लडने में हरीश सफल हो जाता है । हरीश की शादी हो रही थी । उसकी सास 'राँघडों' के घर में काम करती थी जो समाज में श्रेष्ठ जाति मानी जाती है । गाँव-देहात के कायदे-कानून के अनुसार हरीश को विदाई के पहले राँघडों के घर में सलाम केलिये जाना था । यह रस्म नजाने कितनी सदियों से निभाया जा रहा था । लेकिन हरीश इस रिवाज़ को तोडना चाहता है । हरीश का ससुर जुम्मन गाँव के खास शख्सियत चौधरी के सामने गिडगिडाकर अपनी गुलामी स्वीकारता है-"चौधरीजी मेरी लाज रखो मैं तो थारा गुलाम हूँ ....मेरा तो जीना मरना सब थारे ही गल है । जो कहोगे करूँगा । बस करके बेटी को बिदा हो जाण दो । मैं थारे पाँव में नाक रगडूँ ।"[2] जबकि हरीश साफ बता देता है कि वह अपरिचितों के घर सलाम केलिये नहीं जायेगा–"मैं अपरिचितों के घर सलाम करने नहीं जाऊँगा।"[3]कहानी में

---

[1] अल्लाहरखा, दरगाह और मूरतें, संजीव, संजीव की कथा यात्रा:दूसरा पडाव, पृ. 104

[2] सलाम, ओम प्रकाश वाल्मीकि , सलाम, पृ. 16

[3] सलाम, ओम प्रकाश वाल्मीकि , सलाम, पृ. 16

हरीश का सगे साथी उपाध्याय है, जो वरिष्ठ जातीय है । इस तरह कहानी पूरी तरह जातिपरक भेदभाव को काटती है ।

"यही इस देश की विशेषता है। यहाँ बस दो ही तरह के लोग हैं ।कुछ लोग ऐसे हैं जो सिर्फ बहस करते हैं और कुछ लोग ऐसे हैं जो सिर्फ खामोश रहते हैं । तीसरे प्रकार के लोग यहाँ है ही नहीं । तब क्या खाक होगा क्रांती ।"[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह की 'दूसरे मोर्चे पर' कहानी के अजय के पास प्रत्येक बात को लेकर अपना अलग दृष्टिकोण है । वह एम.ए.का छात्र है । अपने कॉलेज की तरफ जाते हुए रेल गाडी में कथावाचक से उसकी मुलाकात होती है । ट्रेन में युवा पीढी की नयी संवेदनाओं के बारे में वह कथावाचक से बताता है –" कानून आखिर किस चिडिया का नाम है । कानून तो वही है जो रोज़ बनाया जाय और रोज़ तोडा जाय ।फिर यह जनकपुर का धनुष तो नहीं कि सिर्फ भगवान राम के तोडे ही टूटेगा ।" [2] वह विस्वविद्यालय में नकल करने की अनुमती केलिये आन्दोलन चलाता है इसलिये की शिक्षा प्रणाली में समयोचित बदलाव लाना आवश्यक है –" हमारे यहाँ योग्यता का निर्धारण डिग्रि से होता है, इसलिये लोग डिग्री चाहते हैं ।नौकरियाँ अब योग्यता पर विचार न करके प्रमाण पत्रों पर ही विचार किया जाता है । अतः योग्यता प्राप्त करके कोई क्या करेगा ? जिसकी ज़रूरत है, लोग उसी को हासिल करना चाहते हैं । अगर आज यह नियम बना दिया जाये कि हर विभाग में नियुक्तियाँ योग्यता पर होगी तो सब काम छोडकर लोग पढना शुरू कर देंगे । लोग गाडी में बिना टिकट क्यों चलते हैं ? इसलिये की टिकट लेने पर भी उन्हें बैठने को जगह नहीं मिलती । समय से वे कहीं पहूँच नहीं सकते । इस स्थिति से लडते-लडते मन में पहले विद्रोह उत्पन्न हुआ ; जब कष्ट ही सहना है तो टिकट क्यों लें ? सरकार गाडियों की

---

[1] दूसरे मोर्चे पर, अब्दुल बिस्मिल्लाह, रैन बसेरा

[2] दूसरे मोर्चे पर, अब्दुल बिस्मिल्लाह, रैन बसेरा

मात्रा क्यों नहीं बढाती ? या सीटों की संख्या के अनुसार टिकट वितरण की व्यवस्था क्यों नहीं की जाती ।"[1] अजय के पास प्रत्येक विषय पर अपना अलग दृष्टिकोण है।

असगर वजाहत की 'केक' काहानी का डेविड साहब सामाज से वाकई निराश है । उसकी राय में बगैर चार सौ बीसी किये कोई समाज में बडा नहीं बन सकता –" भाई साहब यह तो दावा है कि इस देश में बगैर चार सौ बीसी किये कोई आदमी की तरह नहीं रह सकता । आदमियों की तरह रहने केलिये आपको ब्लैक मार्केटिंग करनी पडेगी, लोगों को एक्स्प्लॉयट करना पडेगा ।"[2] डेविड साहब राजधानी जीतने की कामना में आया हुआ था, अपनी पढाई के बाद सीधे दिल्ली जैसे महानगर में । जबकि महीने में दो सौ की प्रूफ रीडरी की नौकरी से बढकर कुछ हासिल नहीं कर पाया । अपनी आमदनी की बचत से एक पॉल्ट्री फ़ार्म खोलना चाहता है और उसे मालूम है कि यह उसकी अनहोनी ख्वाहिश है । हालाँकि पॉल्ट्री फ़ार्म से मिलनेवाला मुनाफा और आराम की बात रट-रट कर वह अपनी असमर्थता को आनन्द में तब्दील कर देता है –" ज्यादा नहीं सिर्फ दो हज़ार रुपये से शुरू करे कोई ।चार सौ मुरगियों से शान्दार फ़ार्म चालू हो सकता है । चार सौ अण्डे रोज़ का मतलब है कम-से – कम सौ रुपये रोज़ । एक महीने में तीन हज़ार रुपये और एक साल में छत्तीस हज़ार रुपये .....चार साल में लखपति फिर अण्डे मुर्गीखाने का आराम अलग ।" [3] सपने की बात अलग है लेकिन हकीकत तो यही है कि वह अपनी सीमित आमदनी में शादी-ब्याह की बात तक सोच नहीं सकता –" मैं शादी कैसे कर लूँ आँटी ? दो सौ पचहत्तर रुपये इक्कीस पैसे से एक पेट नहीं भरता । एक ओर लडकी की जान लेने से क्या फायदा । मेरी ज़िन्दगी तो गुज़र ही जायेगी ।

---

[1] दूसरे मोर्चे पर, अब्दुल बिस्मिल्लाह, रैन बसेरा

[2] केक, असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ,पृ. 20

[3] केक, असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ,पृ. 20

मगर मैं यह नहीं चाहता कि अपने पीछे एक गरीब औरत और दो-तीन प्रूफ रीडरों को छोडकर मर जाऊँ, जो दिन रात मशीन की कान फ़ाड देनेवाली आवाज़ में बैठकर आँखें फोडा करें।"[1]

अस्सियोत्तर परिवेश में शिक्षित युवा पीढी अपने परिवेश के साथ वाकई संघरषरत है। समाजिक हालात उनकी उम्मीदों को पछाडने केलिये हर कहीं मौजूद हैं। पुरानी मान्यताएँ उनकी सामने गतिरोध खडा करती है। जबकि युवा पीढी उन्हें पार लगाने की जोश कायम रख पाते हैं। मूल्य शोषण के माहौल में भी मूल्य के प्रति ये बडी आस्था रख पाते हैं। हालाँकि प्रत्येक कहानी में ऐसी एक वातावरण घिरे रहता है, जो प्रतिपल युवा पीढी की उम्मीदों के कनकौए का आसमान झीन लेता है। लेकिन कहानीकारों की आशावादी दृश्टिकोण फुट्कल विद्रोहों को पेश करने में सफल है।

अस्सियोत्तर कहानियों में बालजन संघर्ष

बालजन अवाम की एक ओर मज़बूत पहलू है। ज्यादातर कहानीकारों ने इन छोटे नागरिकों की ओर से मूँह मोडा है किंतु अस्सियोत्तर परिवेश में चन्द अनोखी कहानियाँ हैं जो बालजन संघर्ष को द्योतित करती हैं।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'कहाँ जाये सतीश' कहानी के सतीश के सामने अपनी पढाई जारी रखना एक बडी समस्या है। बाप ने उसके लिये नगर पालिका में नौकरी ढूँढ रखा है। बाप रिटायर होनेवाले थे इसलिये अपनी जगह सतीश की भरती कराना चाहता था। लेकिन सतीश पढना चाहता था इसलिये वह घर छोडकर शहर भाग आया है। शहर में वह जिस घर में रह रहा था, वह वरेण्य विभागों का था। सतीश की भंगी होने की असलियत उन्हें पता नहीं था। जब पता चला, वह घर से निकाल दिया जाता है। आगे

---

[1] वही

उसका एकमात्र आसरा बल्ब का कारखाना था जहाँ वह 'पार्ट टेम' काम करता रहता है । पर उन लोगों को तो सतीश के काम से ही मतलब था उसकी पढाई या रहने की समस्या उनके जिम्मे के बाहर थी । इसलिये वह उधर से भी निकाल दिया जाता है । आखिरकार पढाने की अपनी आस-आकांक्षा सहित वह खुली सडक पर आ जाता है ।

चित्रा मुदगल की 'बेईमान' कहानी में रेल गाडी में पत्रिकाएँ बेचने वाले एक छोटे बच्चे का चित्रण हुआ है । वह गाँव छोड कर शहर भाग आया हुआ है । बाबु भाई के किताबों की दूकान में पत्रिका बेचने का काम करता है । प्रत्येक बिक्री पर बाबु भाई उसे बीस पैसा देगा । अगर बिक्री के दौरान पत्रिकाएँ कहीं गँवा दी जाय तो पैसा उसके हिसाब से कट जायेगा । बाबु भाई का यही अन्दाज़ है । लेकिन गाडी में शरीफ पोशाकों की बेईमानी और टिकट बाबुओं की लूट-खसोट की वजह उसका हिसाब अक्सर खाली ही रहता है । आगे पीछे कुछ भी नहीं;उसके मन में बस एक ही कामना पली हुई है कि अपने फ़टे पुराने निकर के बदले एक बक्कलवाली नया निकर खरीद पाये । लेकिन बीस पैसे के हिसाब से उसके निकर का बनना दूर की बात है । आखिर वह बेईमानी की राह उतरता है । एक यात्री से मिली पचास रुपये की रकम लौटाए बिना वह अपनी बक्कलवाली निकर का हिसाब कायम रखता है- "उसके मन में हिसाब-किताब चल रहा है । पचास में से बाबु भाई की सात देकर बचे तैंतालीस ! तैंतालीस में से गाडीवाले नुक्सान हुए चौदह कट गये तो बचे उनतीस ....पता नहीं क्यों पत्रिकाओं का गट्ठर एकाएक बक्कलवाली निकर में बदल गया ।" [1]

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'रिहाई' कहानी में एक छोटे बच्चे का चित्रण हुआ है –छुट्कू। छुटकू का पिता मिट्ठन और माई सुगनी लाला के गोदाम में बन्धुआ मज़दूर थे । उनका खान-पान रहन-सहन सब गोदाम के भीतर ही था । सच मानो तो गोदाम ही उनके लिये कायनात

[1] बेईमान, चित्रा मुदगल, आदि-अनादी-3

था, एकदम कारागार के समान । उनके आजीवन गुलामी के बदले रूखी-सूखी रोटी और करारा अन्धकार ही उनको नसीब थे । आखिर धान से भरे बोरों के नीचे कुचलाकर मिट्ठन मरता है ; बन्द किवाड पर पीट-पीटकर सुगनी भी मरती है । लेकिन बेटा छुट्कू बदला लेता है । वह सारे गोदाम को आग लगा देता है और लाला के माथे पर पत्थर मारकर अपना विद्रोह प्रकट करता है । अपनी आज़ादी वह बलपूर्वह छीन लेता है ।

चित्रा मुदगल की 'मामला आगे बढेगा अभी' कहानी के मोट्या भी शोषण नीति के खिलाफ करारा कदम उठा देता है । मोट्या सक्सेना साहब की गाडी की धुलाई करता है । काम से सुस्ताने पर गृहस्थी में मेम साहब का हाथ बटाता है । बीमारी की वजह से अचानक दो तीन दिन मोट्या काम पर नहीं आ पाता है । लेकिन सक्सेना साहब इस पर बिगडता है और उसके एक हफ्ते की मज़ूरी काटकर उसे नौकरी से निकाल देते हैं । गाली-गलौज और मार-पीट ऊपर से मानो मुफ्त हो । सक्सेना साहब के सामने मेम साहब, जिसे 'ममी' बुलाने केलिये वह बहाना खोजा करता था, चुप्पी साधती है । अंततः उसे एहसास होता है कि मालिक के घर में उसका बखूब शोषण् हो रहा था । इस सच्चाई के सामने वह आपे से बाहर होता है और बडे चमकीले लोहे की सरिये से सक्सेना साहब की गाडी की अच्छी धुलाई कर कचरे का डिब्बा बना देता है ।

असगर वजाहत की 'ऊसर में बबूल' कहानी का सिड्कू अपने नाकाम पिता के सर पर लाठी दे मारता है । उसका पिता मढकू नंबरी का हलवाहा है । उस नाते से नंबरी जब चाहे मढकू के घर पधार सकता है और उसकी औरत पर अपना अधिकार जता सकता है । मढकू पूर्णतया पस्त है । नंबरी के खिलाफ एक लफ्ज़ भी बोलने की मरदानगी उसमें नहीं बची है । लेकिन बेटे सिड्कू की रवैया अलग हैं। जहाँ कहीं मौका मिलता है, नंबरी को नुक्सान पहूँचाता रहता है । वह नंबरी के बैलों को धत्तूरा खिलाता है ताकि वे पगला जायें और

नंबरी को नुकसान पहूँचाये । वह नंबरी के गुड से भरी ग़ाडी को तालाब में डुबो देता है और रोकने आये पिता का माथा फोड देता है ।

पंकज बिष्ट की 'टुंड्रा प्रदेश' कहानी में दो जून की रोटी की खातिर जाडे की बर्फीली रात में अपनी ढेली ढेलते हुए यात्रियों के इंतज़ार में खडे लडके का जीवन संघर्ष चित्रित है । वह इस उम्मीद में खडा है कि कोई ना कोई यात्री उस रास्ते अवश्य गुज़रेगा और उसके हाथों से भुने हुए चने खरीदकर अपनी मंज़िल की तरफ बढेगा । इससे उसके पास कहने केलिये भी सही, थोडा रकम बचेगा ही । लेकिन जाडे की ठंड को वह सह नहीं पाता है । घर जाने में भलाई थी लेकिन इतनी कम बिक्री में वह घर कैसे जा सकता था । बस एकाध ग्राहक ही चाहिये था । पचास-पचास कर सौ ग्राम भी मूँगफली बिक जाये तो काम बन जायेगा । तब एक आशाजनक राशी के साथ वह घर जा सकता है । उसको बुला लाने केलिये माँ छोटे भाई को भेजी थी । मगर उसका मन नहीं करता कि घर जाकर आराम करे । बहरहाल ठण्ड से बचने केलिये वह छोटे लडके का पहिया जला देता है । मगर छोटे के आँसू देखकर वह तरस खाता है और घर चला जता है । वह जिस एकाध ग्राहक के प्रति प्रतीक्षारत था, वह कभी नहीं आता है ।

बालजन समस्या को सीधा देखते हैं और समझते हैं । बडी सहजता से प्रतिक्रिया भी जाहिर करते हैं । इसलिये सही गलत के प्रति आशंका उनके सामने कतई नहीं हैं । माँ की दलाली करते पिता के माथे पर एवं माँ-बाप के खूनी के माथे पर पत्थर दे मारने की नसीहत उन्हें समाज से सहज भाव से मिली है । बेईमान समाज में बेईमानी कैसे बरती जाये, उन्हें यह सिखाने की ज़रूरत नहीं । वे बडी स्वाभाविक ढंग से उसे अपनाते हैं । आगामी पीढी का पूर्वाभास इन बच्चों के व्यवहार में छिपा है, जो काफी हद तक आशंकाजनक है ।

निष्कर्ष

अस्सियोत्तर परिवेश में विस्थापन एक अहम मुद्दे के रूप में उभर रही है । बहतर उम्मीदों की खातिर अपने पले-बढे माहौल से सुदूर कई अंजान इलाकों में जा बसने केलिये अवाम आजकल मजबूर हो रहे हैं । लेकिन बहाव के खिलाफ लडने से बढकर उसके साथ बहने में ये ज्यादा समर्थन दे रहे हैं । सारी मामला-बखेडों से बचकर एक पल ही तो सही अपनी कुडी में सपरिवार चैन की नीन्द सोने में इनकी बडी आकाँक्षा है, जिससे अपना महनत सार्थक निकले ।

बच्चे समस्या को सीधा देखते हैं और समझते हैं । इसलिये उनकी प्रतिक्रिया में सहजता गुंजायमान है । लेकिन युवा पीढी अब भी मूल्य एवं आदर्श के प्रति आस्था रखते हैं । वे लडते खुद की लडाई हैं लेकिन उनकी लडाई के केन्द्र में जो चेतना निहित है वह समाज सापेक्ष है । बूढापा कोई नैतिक लडाई को आस्था नहीं दे पा राही है । अवाम के सम्मुख बुढापे की अंतिम और अनोखी लडाई दो जून की रोटी केलिये या परिवार की खातिर हैं । पेट की यह लडाई उनके लिए मानो कोई सुख की अनुभूति है । उस सुख की खातिर आखिरी दम तक महनत करते रहने के लिये वे हरदम, हर पल दिलो-जान से आमादा हैं ।

****

उपसंहार

उपसंहार

अवाम की परिकल्पना का आधार आर्थिक, शारीरिक व मानसिक, सामाजिक एवं सँस्कृतिक पिछड़ापन है। अपने जीवन की बुनियादी ज़रूरतों जैसे अन्न, कपड़ा, मकान आदि की खातिर नित संघर्षरत जनसाधारण ही अवाम है। वह पूरे समाज में निस्सारता, निरीहता, सादगी एवं निहत्थेपन का पुंज है, जो कहीं भी नियंता नहीं लेकिन हर किसी क्षेत्र की आधार शिला है।

साहित्य में अवाम की उपस्थिति प्रमुखतः सहानुभूति एवं विद्रोह की संवेदनाओं के साथ हुई है। ज़ाहिर है कि साहित्य में अवाम के रूपायन में सृजनकार की खास भूमिका रहती है, जो अवाम की जय-पराजय को निर्धारित करती है। गोया अवाम की साहित्यिक एवं सामाजिक अभिव्यक्ति में बुनियादी फरक है। समाज में संघर्षरत अवाम अस्मिताहीन हाशिये पर खड़ा है, लेकिन साहित्य में वह अस्मितासीन व्यक्तित्व है जो लड़ाई लड़ सकता है।

अवाम की संघर्षचेतना में कार्यरत दर्शनों में मार्क्सवाद, अम्बेद्कर वाद, नारीवाद आदि की खास भूमिका हैं। मार्क्सवाद के अनुसार समाज वर्गों में विभजित है। सबसे अंतिम स्तर निम्न वर्ग का है जो अपनी मेहनत से सब कुछ पैदा करते हैं। इनकी बनायी गयी सामग्रियों का उपभोग उच्च वर्ग एवं मध्य वर्ग में होता है। और श्रम का लाभ उच्च वर्ग तक सीमित रहती है। इस तरह समाज में निम्नवर्ग का शोषण होता है। मार्क्सवाद संगठित होने और निरंतर संघर्ष करने का आह्वान देता है। वर्ग संघर्ष के फलस्वरूप जो नया समाज उपस्थित होगा, वह समता पर केन्द्रित होगा। पूँजी पर किसी व्यक्ती का अधिकार नहीं होगा बलकि पूँजी पूरे समाज की संपत्ती मानी जायेगी। मेहनतकश वर्ग को तब तक संघर्ष करना चाहिये जब तक समतासंपन्न समाज कायम नहीं होता। मार्क्सवाद अवाम को कड़ी मेहनत का सन्देश प्रदान करता है।

अम्बेद्कर वादी दर्शन जातिगत विभाजन के खिलाफ़ आवाज़ उठाता है। भारत के विशेष सन्दर्भ में जातिपरक विभाजन एक गम्भीर समस्या है। भारत की सनातन परम्परा

में श्रम का विभाजन जाति के आधार पर हुआ है । सबसे निम्नतम श्रेणी के काम करने वाले लोग शूद्र कहे जाते थे । कालोपरंत ये लोग अछूत बन गये । दलित चिंतन इस अमानवीयता पर विचार विमर्श करता है । जातिप्रथा का आधार मनुस्मृति जैसी वेदकालीन पोथियाँ हैं । दलित चिंतन इन पौराणिक ग्रन्थों के उद्धरणों को शोषण के इरादे में गठ गयी साजिश साबित करता है । बरसों की गुलामी दलितों की मानसिक, बौद्धिक एवं सामाजिक विकास को बाधा पहूँचायी है । अपनी हीन भावना से स्वयं उबरने के खातिर भारतीय संविधान में आरक्षण की सुविधा की प्राप्ति दलित चिंतन की खास उपलब्धि है ।

नारीवादी दर्शन का प्रखर स्वर प्रतिशोध का नहीं, बल्कि प्रतिरोध का है। नारी चिंतन् मौजूदा पुरुसषसत्ता के खिलाफ़ आवाज़ उठाती है । घर की चार दीवारियाँ नारी की गुलामी के कट्घरे हैं । नारी को चाहिये कि वह उस बन्धन से निकल आये । पुरुष की साया बनकर आजीवन बेमोल परिश्रम की सनातन परम्परा को ठुकरा देना चाहिये । उसकी खातिर नारी को शिक्षित होना चाहिये और अपने मनःमस्तिष्कों से पुरुषवादी मूल्यों को तथा अपनी हीनभावना को निकाल देना चाहिये । नारीवाद आर्थिक स्वावलंबन को अस्मिता के लिये अहम मुद्दा मानता है । अर्थिक स्वावलंबन से स्त्री, सहज ही पुरुष वर्चस्विता से उबर सकती है । नारीवाद 'सावित्री'नुमा अन्दाज़ को पीछे छोड्ने का आह्वान देता है ।

पहला अध्याय : हिन्दी कहानियों में अवाम का संघर्ष-पूर्व पीढ़ी

प्रेंचन्द के प्रारंभिक दौर की कहानियाँ आदर्शवादी है, लेकिन धीरे-धीरे वे यथार्थवाद को अपना लेते हैं । वे कला एवं यथार्थ का समन्वय चाहते थे । उनकी कहानियों के पात्र शोषण के माहौल से अवगत हैं, विरोध करने में काबिल हैं, लेकिन तत्कालीन जीवन यथार्थ की तरह अपने विद्रोह में पराजित हो जाते हैं । ठाकुर का कुआँ की 'गंगी', मृतक भोज की 'कावेरी', सवा सेर गेहूँ का 'शंकर' आदि उदाहरण हैं । लेकिन अंतिम दौर तक आते आते विद्रोह का नकारात्मक अन्दाज़ भी विद्यमान है, जो 'कफन', 'पूस की रात'जैसी कहानियों में दिखायी देता है ।

यशपाल की कहानियों में यथार्थवाद की प्रखरता है । उनकी कहानियों में कल्पना और विचार भी शरीक है । ज़्यादातर कहानियाँ विचाराभिव्यक्ति के लिये गठी हुई महसूस होती हैं । फिर भी अवाम के जीवन यथार्थ की बहुआयामी प्रस्फुटीकरण उनकी कहानियों में मिलता हैं । दुख,दुख का अधिकार, परदा, दुखी-दुखी, हिंसा, कोयलेवाली मोटरवाली, आदमी का बच्चा, अभिशप्त जैसी कहानियाँ उदाहरण हैं ।

फणीश्वरनाथ रेणू की कहानियाँ अवाम के रागात्मक जीवन की दस्तावेज़ हैं । उनके पात्र जीवन की अभावग्रस्तता को सहजता से अपनाते हैं । इसलिये उनके सम्मुख कोई समस्या गम्भीर नहीं दिखती। रसप्रिया, तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुल्फाम, संवदिया, उच्चाटन, एक आदिम रात्री की महक, आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं ।

भीष्म साहनी की कहानियों के मानव सहज मानव है । इसलिये अवाम के जीवन संघर्ष सहज ही चित्रित है । अपने यथार्थवादी अन्दाज़ की वजह उनका अवाम ज़्यादातर सहानुभूति के दायरे में आते हैं । वाङ्चू, सागमीट, अमृतसर आ गया है, पाली, चीफ की दावत आदि प्रमुख कहानियाँ हैं ।

कमलेश्वर की ज़्यादातर कहानियाँ मध्य वर्गीय समस्याओं पर केन्द्रित हैं । फिर भी अपनी ज़िन्दगी जीने में मजबूर आम जनसंघर्ष का चित्रण हुआ है । माँस का दरिया, देवा की माँ जैसी कहानियाँ उदाहरण हैं ।

अमरकांत की 'ज़िन्दगी और जोंक' कहानी में जीने की अदम्य आकाँक्षा चित्रित है । ज़िन्दगी चाहे जितनी भी उपेक्षा भरी हो अमरकांत का अवाम उसे जीना चाहते हैं । दोपहर का भोजन, डिप्टी कलेक्टरी, नौकर, मौत का नगर, फर्क, घर, मकान जैसी कहानियाँ उदाहरण हैं ।

शेखर जोशी की कहानियाँ अलग किस्म की हैं । उनकी कहानियों में मेहनतकश अवाम व्यवस्था का विरोध करते हैं । मूल्य सम्बन्धी अपना स्पष्ट विचार रखते हैं । कहानी ऐसे व्यक्तियों पर केन्द्रित होती हैं, जो आदर्शवान होने की खातिर समाज में तिरस्कृत है ।

मेहनतकश अवाम का बडा हिस्सा मौकापरस्ती की राह पकड़ते हुए चित्रित हैं। प्रतिकूल माहौल में उनके नायक स्वयं चुप्पी साधने में मजबूर हो जाते हैं। यह गत्यंतरण का मोड़ है। नौरंगी बीमार है, उस्ताद, हलवाहा, बदबू, कविप्रिया आदि प्रमुख कहानियाँ हैं।

पूर्व पीढी की कहानियाँ सहानुभूती की फोर्मुला पर लिखी गयी हैं। उनमें अवाम का जीवन संघर्ष ही ज़्यादातर चित्रित हैं। मौजूदा व्यवस्था के खिलाफ़ या शोषण के खिलाफ कोई खास प्रतिक्रिया करने में वे असमर्थ हैं। सनातन सामाजिक मूल्य की उनमें गहरी पैठ है। परिवर्तन को अपनाने में वे नाकाबिल भी। इसलिये ज़्यादातर वे चुप्पी साधते हैं।

अस्सियोत्तर परिवेश

अस्सियोत्तर परिवेश काफी घटना बहुल रहा है। भारत की संवैधानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एकता को ठेस पहूँचाते हुए सांप्रदायिक दंगे, भ्रष्टाचार, विघटनवाद आदि की अनेक मिसाल सामने आयी। ऑपरेशन ब्लूस्टार, इन्दिरा गान्धी की हत्या, राजिव गान्धी वध, सिख विरोधी मारकाट, अयोध्याकांड, चरार-ए-शरीफ पर हमला, संसद पर हमला, गोध्रा कांड, बेस्ट बेकरि हत्या कांड, अक्षर धाम मन्दिर पर हमला, कार्गिल की लडाई आदि प्रमुख खटनाएँ हैं। विघटनवाद को प्रवेग देते हुए छत्तीसगढ़, उत्तराँचल एवं झारघंड आदि नये राज्यों का निर्माण हुआ। भ्रष्टाचार के नये-नये अध्यायों को इतिहास में जोडते हुए अनेकों घटनायें पर्दे के बाहर आयीं। जे.एम.एम.मुकदमा, यूरिया घोटाला, सेंट किट्स झूठी अभिलेखा, तेहल्का मुकदमा आदि प्रमुख घट्नायें हैं। विवेच्य काल सीमा में कई प्राकृतिक दुर्घटनाएँ भी घटित हुई जैसे भोपाल विषवायु त्रासदी, महाराष्ट्र में भूचाल, गुजरात में प्लेग की वापसी, उडीसा में तूफानी हमला, गुजरात में भूचाल, सुनामी का हमला आदि।

आर्थिक उदारीकरण के नाम पर आयातित सामग्रियों को कर मुक्त कर दिये गये। उपभोग वाद को गम्भीर मौका मिला। किसानों पर इसका बुरा असर हुआ। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दलालों के बहकावे में आकर अपनी पुश्तैनी खेती एवं बीजों को छोड़कर बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बेचे गए बीजों को बोने लगे। नतीजतन पारम्परिक खेती खतम

हुयी । नये रोपे बीज कीडों से लड़ने में नाकाम हुए । उसे रासायनिक खाद भी बड़ी मात्रा में चाहिये । किसान कर्ज़ लेने के लिये मजबूर हुए । फसल की मात्रा कम बनी रही । हर साल खेती केलिये बीज दोबारा खरीदना पडा । इस तरह् कर्ज़ बढता गया और आमदनी घट्ती गयी । मजबूरन किसान शरणार्थी बनकर शहर की तरफ चलने लगे । आसराहीन हो आत्महत्या करने लगे ।

जनसंचार माध्यमों को छूट दी गयी । पाश्चात्य संस्कृति का गहरा असर समाज पर पड़ने लगा । पत्रिकाओं के गुटसापेक्ष राजनीती की वजह अवाम हाशिये पर होने लगा । आर्थिक बढोत्तरी के दावे के बावजूद मुद्रास्फिति हाथ से फिसलती चली गयी । अभिजन एवं आमजन के बीच अंतर बढ़ता चला गया । महंगाई से भ्रष्टाचार एवं अराजकवृत्ति को बढावा मिला ।

अस्सियोत्तर परिवेश पूरी तरह् अवाम के खिलाफ है । अवाम समाज में अपने आप को असुरक्षित महसूस करने लगे । मूल्य संबन्धी अवधारणा को बदलने में वे मजबूर हो गये । समाज के प्रति प्रतिबद्ध कहानीकार इस बदली हुई संवेदना को परखने लगे । नतीजतन ऐसी कहानियाँ उभर आयी जो अवाम के पक्ष में हैं ।

दूसरा अध्याय-किसान-मज़्दूरों का संघर्ष

इस अध्याय में किसान तथा मज़्दूरों के संघर्ष पर केन्द्रित कहानियों पर विचार किया गया है ।

ज़मीन से जुड़ी संवेदना बदल चुकी है । अब ज़मीन बिकाऊ बन गयी है । उजड़ी खेती, बढ़ता कर्ज़, कृषकों की आत्महत्या अब आम बात बन गयी है । अस्सियोत्तर कहानियाँ इस बदहालत का विरोध करती हैं । नीलामी हुए अपने ही बैलों को चुराकर अपनी ज़मीन खोदने वाले युवा किसान का चित्रण नरेन्द्र निर्मोही की 'पर्नोट' कहानी में दिखायी देता है । अपने बैलों को बेचने में मजबूर किसान के आत्मसंघर्ष तथा विद्रोह को कैलाश बनवासी की

'बाज़ार में रामधन'कहानी में देख सकते हैं। अपनी पुश्तैनी संपत्ति को बेचना उसे अखरता है। इसलिये हर बार वह बैलों को बिना बेचे बाज़ार से घर लौट्ता है।

खेती के साथ उससे जुडाते रिश्तों के उजड्ने की कहानियाँ भी हैं। 'छप्पन तोले का करधन', फज़र की नमाज़, हरिहर काका आदि उदाहरण हैं। संजीव की 'हिमरेखा'', 'आरोहण' अदि कहानियाँ मानव और मिट्टी के बीच गहन आस्था दिखाती हैं। असगर वजाहत की 'ऊसर में बबूल' कहानी प्रेमचन्द के घीसु-माधव की याद दिलाती है। कहानी का किसान ज़मीन्दार के साथ अपनी बीवी को बाँटने में मजबूर है, इसलिये कि उसका चूल्हा मालिक के भीख पर जलता है। लेकिन किसान का बेटा ज़मीन मालिक की खेती उजाड़ देता है। अपने पिता का माथा फोड्ने में उसे कोई गलती नहीं महसूस होती।

नयी पीढ़ी की नयी संवेदना है, जो ज़मीन के साथ भी है और उसके खिलाफ भी। पुरानी पीढ़ी अब भी मिट्टी की रख-रखाव में संघर्षरत है लेकिन नयी पीढ़ी अक्सर खेती छोडने की सोचती है। फिर भी 'पर्नोट' जैसी अनोखी कहानियाँ खेती के लिये युवा पीढ़ी का संघर्ष दिखाती है।

गाँव के प्रतिकूल वातावरण ने शहर की तरफ किसानों के बहाव को बढ़ावा दिया है। लेकिन शहर की हालत भी दूजी नहीं है। काम एक, और करने वाले अनेक। उन्हें रोज़ी-रोटी की फिक्र है। किसी भी तरह मज़दूरी से भिडे रहने केलिये वे मजबूर हैं, चाहे वह शोषित होकर भी क्यों न हो। बेईमानी उन्हें हजमने लगती है। मूल्य की नयी व्याख्यायें देने लगते हैं। संजीव की चुनौती कहानी का मज़दूर खुला प्रस्ताव रखता है कि आज बेईमानी की रोटी ही पचती है। पिछली पीढ़ी में मूल्यों की गहरी पैठ थी। इसलिये शोषण को झेलने के अलावा उनको और कोई चारा नहीं था। यश्पाल की 'आदमी का बच्चा', अमरकांत की 'नौकर', मौत का नगर, मकान, भीष्म साहनी की 'साग-मीट' जैसी कहानियाँ उदाहरण हैं। लेकिन शेखर जोशी तक आते-आते संवेदना बदलती है। मज़दूर विरोध अदा करते हैं लेकिन सहकर्मियों को प्रतिकूल पाकर चुप होने लगते हैं। जितेन्द्र भाटिया की 'शहादतनामा' में

आदर्शवान मज़दूर की कत्ल होती है और समझौतावादी तथा मौकापरस्ती मज़दूर के नज़रिये से कहानी आगे बढ़ती है । अस्सियोत्तर प्रारम्भिक कहानियों में संवेदना फिर बदलती है । कहानीकार मूल्य की पुनरस्थापना करते है । मज़दूर अपने ही साथियों का खून पीनेवाले भूखे-रीछों के खिलाफ़ लड़ते हैं । संजीव की 'भूखे-रीछ' कहानी में एक मज़दूर दूसरे दलाल मज़दूर का हाथ जला देता है । संजीव की 'चुनौती', उदय प्रकाश की'टेप्चू'आदि अपराजित मज़दूरों के नितसंघर्षों के दस्तावेज़ हैं । लेकिन यह उम्मीद भी अस्थायी साबित होती है । संजीव की 'हलफनामा' कहानी में मज़दूर को झूठी मुकदमे में फंसाकर अदालत तक खींच लाने में उपभोगवादी संस्कृति सफल होती है । और आविष्कार कहानी में आकर वह संघर्षरत मज़दूर लड़ाई में आशा छोड़ता है और अपने ही फैक्टरी को गिराने की ठेके के पीछे लाइन लगाने लगता है । फिर भी कहानियों की मूल संवेदना अवाम की खातिर है । ऐसी दिलासा देती हैं मानो फिर भी उम्मीद है कोई आमूल गत्यन्तरण की ।

कारखाना मज़दूरों के संघर्ष के अलावा इस अध्याय में दिहाडी मज़दूर, घरेलू नौकर, कूडा-कचरा बीनने वाले लोग, सामान-सब्जी वगैरह बेचने वाले, रिक्षा चालक आदि मेहनतकश अवाम के संघर्ष भरी ज़िन्दगी का अध्ययन अलग से हुआ है ।

तीसरा अध्याय- अस्सियोत्तर कहानियों में दलित संघर्ष

इस अध्याय में कहानियों में चित्रित दलित संघर्षों पर विचार किया गया है । दलित कहानियाँ दलित चेतना का निदर्शन हैं । ये सचेत दलित मन की कामनाओं का अंकन करती हैं। यह अध्याय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, शारीरिक व मानसिक आदि पाँच बुनियादी स्तरों में दलित संघर्ष को परखने की कोशिश है । राजनीतिक शोषण के अंतर्गत मोहनदास नैमिशराय का 'अपना गाँव', सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया', सूरजपाल चौहान की 'साजिश', पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की 'प्रतिरोध', गौरीशंकर नागदंश की 'जंगल में आग', दयानन्द बटोही की 'सुरंग', ओम प्रकाश वाल्मीकी की 'ब्रह्मास्त्र' जैसी कहानियों पर विचार किया गया है ।'सिलिया' कहानी में भोपाल के एक जानेमाने युवा-नेता दलितोद्धार की

खातिर दलित कन्या से शादी करना चाहता है । शर्त सिर्फ इतना है कि लड्की कम से कम मेट्रिक हो । गाँव में सिलिया पर दबाव बढ्ता है, इसलिये कि वही इलाके की एकमात्र दलित कन्या है जिसने मेट्रिक पास की है । लेकिन सिलिया तथा उनके माता-पिता साजिश समझ पाते हैं । वे प्रस्ताव ठुकरा देते हैं ।

सूरज पाल चौहान की 'साजिश' कहानी में ट्रेंस्पोर्ट के कारोबार की खातिर लोण माँगने आये नत्थू को बैंक मैनेजर पिगरी लोण लेने को प्रेरित करता है । इसलिये कि सुअरों को पालना नत्थू का पुश्तैनी धन्धा है । लेकिन बैंक मैनेजर का इरादा कुछ और हैं । ये अछूत अपने खानदानी धन्धा अगर छोड दें तो आनेवाली सवर्ण पीढियों के घरों की गन्दगी कौन साफ करेगा? मौजूदा सामाजिक गुलाम वृत्ती को कायम रखने का यह प्रयास नत्थू एवं उसकी पत्नी के सम्मुख असफल होती है । वे दलितों को इकट्ठा कर बैंक मैनेजर के खिलाफ लड्ते हैं ।

धार्मिक कुप्रथाओं के खिलाफ आवाज़ उठाती दलित कहानियाँ अनेक हैं । धर्म एक सनातन परम्परा है । इसलिये जन साधारण के मन में धर्म की गहरी पैठ है । अक्सर यह शोषकों के हाथों का बर्छा है । कभी गलत जानकर भी समाज के रिवाज़ों की खातिर उसे मानने में मानव मजबूर हो जाता है । ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'ब्रह्मास्त्र' कहानी का 'अरविन्द' सवर्ण है और 'कंवल' दलित डोम । दोनों में गहरी मित्रता है । लेकिन अरविन्द की बारात में डोम के जाने की मनाही है । फैसला शादी करानेवाले पण्डित का है, जिसे कौन टाल पाता है । आखिर कँवल के बिना बारात निकालने में अरविन्द मजबूर हो जाता है । फिर भी पण्डित की शोषणनीति पर काफी कीचड ओढा गया है । सूरजपाल चौहान की 'बस्ति के लोग', 'कारज', संजीव की 'जब नशा फडता है' आदि अन्य प्रमुख कहानियाँ हैं ।

दलितत्व के पीछे आर्थिक शोषण का विशाल दायरा है । इसे उकेरने में दलित कहानियाँ सफल हैं । ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'पच्चीस चौका डेढ सौ' कहानी के 'सुदीप' का पिता बरसों से शोषित है । पच्चीस चौका डेढ सौ का गलत पहाडा सिखाकर चौधरी उनके

श्रम तथा मज़दूरी हडप रहा हैं। अनपढ गँवार उसे कैसे समझ सकता है ? लेकिन बेटा सुदीप पढता है और नौकरी पाकर अपनी पहली तनख्वाह को पच्चीस-पच्चीस के अलग-अलग चार पुलिन्दे बनाकर पिता की गलती सुधारता है। उसे आजीवन गुलामी से मुक्ति दिलाता है। यह समूल परिवर्तन की तरफ इशारा करती है। रत्नकुमार साँभरिया का 'डंक',ओं प्रकाश वाल्मीकि की 'रिहाई' आदि अन्य मिसाल हैं।

दलित जीवन में शारीरिक शोषण एक हकीकत है। कहानियों मे इसका विरोध प्रकट है। कुसुम वियोगी का 'अंतिम बयान'और कुसुम मेखवाल का 'अंगारा'में बलात्कार के शिकार औरतें बलात्कारी के 'पुरुषत्व'को ही काट गिराती है। बी.एल.नायर की'चतुरी चमार की चाट'में दलितत्व की हीनता बोध पर विचार किया गया है। हीनताबोध की वजह चतुरी अपनी चाट की ढेली पर अपना नाम लिखा देता है ताकि किसी सवर्ण का धर्म गलती से भी न भंग हो जाये। प्रेम कपाडिया का 'हरिजन', कावेरी की 'सुमंगली',गौरीशंकर नागदंश की 'जंगल में आग'जैसी कहानियाँ कुछ और मिसाल हैं।

दलित कहानियाँ, सक्रिय विद्रोह की कहानियाँ है। सवर्ण संस्कृती के खिलाफ अपना विद्वेष पूरी ऊष्मलता के साथ कहानियों में उतारने में कहानीकार सचेत है। वे ईण्ट का जवाब पत्थर से देना ज्यादा पसन्द करते हैं। फिर भी समस्या की सही समझ दिलाती कहानियों की कमी नहीं है। अपना अलग समाज पालने की चिंता जितनी सबल है, उतनी शिक्षा और आरक्षण की सुविधा से ओहदे प्राप्त दलित ब्राह्मणों की आलोचना करने की कोशिश भी। आखिरकार दलितों का संघर्ष समता के लिए है; समाज में इंसान होकर जीने केलिए हैं।

चौधा अध्याय- अस्सियोत्तर कहानियों में नारी का संघर्ष

दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ नारी का शोषण नही होता। लेकिन इस अध्याय में निम्न मध्यावर्गीय एवं निम्नवर्गीय नारियों पर केन्द्रित कहानियों को ही चुना गया हैं, जो अवाम की परिकल्पना के अंतर्गत अती हैं। नारी समाज वर्गपरक, जातिपरक, लिंगपरक

आदि तीनों प्रकार से शोषित है । अस्सियोत्तर परिवेश में संघर्षरत नारी जीवन के कई मिसाल विद्यमान है। यह अध्याय उनके बहुस्तरीय संघर्ष का अध्ययन है । परम्परा एवं रूढियों के खिलाफ संघर्ष, पुरुषवर्चस्विता के खिलाफ संघर्ष, यौन शोषण के खिलाफ संघर्ष, परिवार में संघर्षरत औरत, भ्रष्टाचार के खिलाफ नारी का संघर्ष, भूख से संत्रस्त नारी मन का संघर्ष आदि शीर्षकों में यह विभक्त है ।

पति चाहे जितना भी निकम्मा निकले, उसके लिये रोटी परोसना ये औरतें अपना फर्ज़ मानती हैं । मार-पीट तथा अपमान की हद पार होने पर अपने लिए दूसरा पति ढूँढना इनके लिये कोई बडी बात नहीं । मत्स्येंद्र शुक्ल की'चाल', राकेष वत्स की'सावित्री', नमिता सिंह की 'दर्द'जैसी कहानियाँ उदाहरण हैं । परिवार इनके लिये बोझ नहीं बल्कि अहम हिस्सा है । घर का काम फिर बाहर का काम; उसके बाद दोबारा घर का काम । इस तरह काम से काम की तरह उनकी ज़िन्दगी गुज़रती है । लेकिन उन्हें कहीं कोइ अतिरिक्त श्रम व शोषण का एहसास नहीं । पति की मार मानो उनके जीवन का एक हिस्सा ही हो । जब कभी पिटाई सीमा लांघती है, या तो ये पलट्कर वार करती हैं या दूसरा घर ढूँढ लेती हैं । परिवार एवं बच्चों से अलग उनका कोई संघर्ष विरल है । लेकिन परिवार में माँ-बाप या साँस-ससुर द्वारा शोषण ये गलत मानती हैं । रामदरश मिश्र की 'मुक्ति', उदय प्रकाश की 'बलि', राजी सेठ की 'योगदीक्षा', शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर'जैसी कहानियाँ उदाहरण हैं ।

यौन शोषण निम्नवर्गीय नारीजीवन की दर्दनाक हकीकत है । घर के भीतर और बाहर नारी का बलात्कार होता है । अस्सियोत्तर कहानियाँ इस भीषण नृशंसता के खिलाफ विद्रोह छेड देती हैं । शिवमूर्ती की 'तिरिया चरित्तर' कहानी की विमली बलात्कारी ससुर को जलाने दौडती है । चित्रा मुदगल की 'जब तक बिमलाएँ हैं' कहानी की बिमला अपनी नन्ही छोरी के बलत्कारी को अदालत में सज़ा दिलाती है ।'अंगारा', 'अंतिम बयान' जैसी कहानियों में दमित नारी अपने-अपने बलात्कारियों के पुरुषत्व काट फेंकती हैं । चन्द

अनोखी कहानियाँ ऐसी भी है जिनमें पुरुष की आदिम क्षुधा को शाँत करती विद्रोही नारी स्वयं वेश्यावृत्ति अपना लेती हैं । गोविन्द मिश्र की'खुद के खिलाफ', संतोष श्रीवास्तव की'यहाँ सपने बिकते हैं' आदि उदाहरण हैं । भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज़ उठाती औरतों का चित्रण भी मयस्सर है जैसे संजीव की 'धनुष-टंकार' की 'सुरसती'। वह मैनेजमेंट की उपभोगनीति के खिलाफ अनशन करने बैठती है। लेकिन यूनियान वालों को मैनेजमेंट के चेले पाकर निर्धारित समय के पहले ही वह अनशन तोड देती है । शिवमूर्ति की'कसाईबाडा','अकाल दण्ड',मृदुला गर्ग की 'अगली सुबह',मनोष राइ की'शिलान्यास' आदि अन्य मिसाल हैं ।

औरत सब कहीं शोषित हैं । लेकिन उच्च वर्गीय तथा मध्यवर्गीय औरतें और निम्न वर्गीय मेहनत्कश औरतों के बीच बुनियादी फरक है । उच्च वर्गीय एवं मध्यवर्गीय औरतों के लिए संघर्ष, जीवन का एहसास दिलाती है यानी संघर्ष ही जीवन है । लेकिन निम्नवर्गीय मेहनतकश अवाम के सामने जीवन स्वयं एक फैला हुआ संघर्ष है । रोज़ी-रोटी की चिंता पल-पल सताती है। फिर भी जीवन की कठिनाइयों को ये बडी सहजता से अपना पाती हैं । मौके पर विरोध करती है, बेमौके में छुप्पी साधती हैं । कठिनाइयों को ये औरतें मेहनत से जीत लेती हैं । वही मुक्ती का मंत्र है जिनकी पूँछ पकड्कर इनका गुज़ारा हो सकता है ।

पाँचवाँ अध्याय संघर्ष के कुछ और आयाम

बेहतर उम्मीदों की खातिर अपने पले-बडे माहौल से दूर कहीं जमने केलिये मजबूर आवाम के संघर्ष बहुस्तरीय हैं । मत्स्येन्द्र शुक्ल की'कूडा'कहानी में कूडा-कचरा बीननेवाले लोगों के संघर्षमय जीवन चित्रित है । सडक के किनारे जहाँ भी थोडा जगह खाली मिले इनके लिये वही बसेरा हैं । समाज के सभ्य प्राणियों को उनके बदबूदार जीवन शैली बर्दाश्त नहीं । इसलिये हर कहीं से निकाल दिये जाते है ये लोग । फिर भी ये जीवन को जीने योग्य मानते है । जब तक तन में बल है तब तक मन में हल है ।

भारत-पाक विभाजन का ज़खम अभी तक भरा नहीं है । साम्प्रदायिकता अब भी अहम मुद्दा है। देखते-देखते कोई अपने ज़मीन पर पराया हो सकता है । स्वयं प्रकाश की'पार्टीशन', 'क्या तुमने कहीं कोइ सरदार भिखारी देखा है',अदि कहानियाँ इस दुरवस्था का पर्दाफाश करती है । सांस्कृतिक अलगाव की वजह कहीं का न होते अवाम की हकीकत संजीव की'हिमरेखा',उदयप्रकाश की'बलि'आदि कहानियों में मिलती है ।

अवाम के सामने बुढापा अभिशाप समान है । हाँफ-हाँफकर थकता बदन, बेकार बेटा, शादी की उम्र की लडकी और सेवानिवृत्ती से हाथ से फिसलती नौकरी ! कैलाश कल्पित की 'पिता' कहानी के 'बैजनाथ दुबे' को अपनी मौत स्वयं रचने केलिये इतनी वजह काफी थी । सेवानिवृत्ती के दो दिन पहले वह चलती रेल गाडी के सामने कूद्कर आत्महत्या करता है ताकि अपनी जगह बेटे को नौकरी मिले । संजीव की 'प्रेत मुक्ति', अमर गोस्वमि की 'बाबुलाल का परिवार', स्वयं प्रकाश की 'तीसरी चिट्ठी', डॉ.सि.बि भारती की 'भूख' जैसी कहानियाँ पारिवारिक बोझ को उठा पाने में असमर्थ वृद्धजन जीवन की कहानियाँ हैं । उन्हें आराम कहाँ ! हृदयेश की 'जो भडक रहे हैं',असगर वजाहत की 'बच्चोंवाली गाडी' आदि पेट की राह में वृद्धजन संघर्ष को प्रस्तुत करती हैं । उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का करधन', मिथिलेस्वर की 'हरिहर काका', 'जी का जंजाल' जैसी कहानियाँ परिवार में फालतू बनते बुढों की करुण संघर्ष को दर्शाती हैं । शारीरिक कमज़ोरी तथा समाज की उपेक्षा भरी दृष्टि बाधा डालती है फिर भी आम वृद्धजन अपनी आखिरी साँस तक मेहनत करते रहने के पक्ष में हैं ।

अस्सियोत्तर कहानियों में मूल्य तथा यथार्थ के बीच फँसते शिक्षित आम युवा पीढी का संघर्ष अलग से चित्रित है । नफीसा अफ्रीदी की'आत्महंता', शिवमूर्ति की 'भरतनाट्यम', संजीव की 'अल्लाहरखा दर्गाह और मूरतें', ओम प्रकाश वाल्मीकी की 'सलाम', असगर वजाहत की 'केक', अब्दुल बिस्मिल्लह की 'दूसरे मोर्चे पर', उदय प्रकाश की 'पोल गोमरा का स्कूटर' आदि कहानियाँ उदाहरण हैं। समाज के सम्मुख स्वयं पराजित होकर भी शिक्षित

युवा पीढी कहानियों में मूल्य को ही चुनते हैं। खुद्परस्ती समाज उनके उम्मीदों को पछाडने में हर कहीं मौजूद है।

बच्चों के संघर्ष पर केन्द्रित कहानियाँ भी लिखी गयी हैं। ओम प्रकाश वाल्मीकी की 'कहाँ जाये सतीश', 'रिहाई', चित्रा मुद्गल की 'बेईमान', 'मामला आगे बढेगा अभी', असगर वजाहत की 'ऊसर में बबूल', पंकज बिष्ट की 'टुण्ड्रा प्रदेश' आदि उदाहरण हैं। बच्चे शोषण को सीधा देखते हैं। सरल ढंग से समझते हैं। इसलिये उनकी प्रतिक्रिया सहज है। माता-पिता के खूनी का और बीवी की दलाली करते पिता का सिर फोडने में उन्हें किसी की नसीहत की ज़रूरत नहीं। बेईमान समाज में बेईमानी कैसे करनी है, यह बताने की ज़रूरत नहीं।

समय के साथ सँवेदना बदलती है। कहानियाँ यह साबित करती हैं। प्रेमचन्द की 'पूस की रात' कहानी के 'हल्कू' की हार को नरेन्द्र निर्मोही के 'पर्नोट'का 'सत्तो' जीत लेता है। सवा सेर गेहूँ के 'शंकर' और उसके बेटे की निस्सहायता ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'पच्चीस चौका डेढ सौ' कहानी के 'सुदीप' की समझदारी में तब्दील हो जाती है।'कफन' के निर्लज्ज 'घीसू' के माथे पर असगर वजाहत की 'ऊसर में बबूल' का बेटा 'सिडकू' लाठी दे मारता है।'चीफ की दावत' की ममतामयी माँ अपने गहने बेचकर बेटों को पढाती है, लेकिन 'छप्पन तोले का करधन', 'जी का जंजाल' कहानियों की माएँ जीते जी अपनी सँपत्ति बेटों के नाम करने से डरती हैं। अमरकांत की 'डिप्टी कलक्टरी' के पिता इस उम्मीद में जीते हैं कि बेटा आज नहीं तो कल डिप्टी कलक्टर बन जायेगा। लेकिन कैलाश कल्पित की 'पिता' कहानी के पिता उम्मीद खो चुके हैं। वे आत्महत्या कर अपनी नौकरी बेटे को दिलाते है। मार्कण्डेय की 'महुए का पेड' की बूढी दादी कटे हुये महुए के पेड के सामने से काशी चली जाती हैं। लेकिन मधुकर सिंह की 'कटहल का पेड' की धनेसर महतो अपने रोपे पेड' जिसे वह अपना नहीं कह पाती, स्वयं काट गिराती है। कमलेश्वर की 'माँस का दरिया' कहानी

की 'जुगनू' जीवन को पहाड समझने में मजबूर थी, लेकिन जगदम्बा प्रसाद दिक्षित की 'मुहब्बत' कहानी में उसे सच्चा आशिक मिलता है जो 'वो टाइप का आदमी नहीं है'।

भीष्म साहनी की 'साग-मीट', अमरकांत की 'नौकर' कहानियों की 'जी हुज़ूरी की मजबूरी' मृदुला गर्ग की 'उसका विद्रोह' में आकर बदलती है । उस कहानी का नौकर बर्तन धोते हुए ऊँची आवाज़ में गाना गाता है, जिसकी उस घर में कडी मनाही है । शेखर जोशी की 'बदबू' की समझदार चुप्पी को संजीव की 'चुनौती' कहानी का मज़दूर 'कामतानाथ' तोड्ता है। इस तरह अस्सियोत्तर कहानियों में विद्रोह का नया अन्दाज़ द्रिष्टिगोचर है । लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी है ।

अमरकांत की सिद्धेस्वरियों की परम्परा लगातार कहानियों में मौजूद है । नीरजा माधव की 'चुप चन्देरा रोना नहीं', अमर गोस्वामी की 'बाबू लाल का परिवार', नमिता सिंह का 'दर्द', ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'अम्मा' जैसी कहानियाँ उदाहरण हैं । रेणू की 'तीसरी कसम' का हीरामन चित्रा मुदगल की 'जिनावर' कहानी में आकर उपभोगवादी बनता है । अमरकांत के 'कर्मपरायण नौकर' की परम्परा उदयप्रकाश की 'हीरालाल का भूत' कहानी में कायम है।'बदबू' कहानी के समझदार मज़दूर संजीव की 'आविष्कार' कहानी तक आते आते अपना ही कार्खाना गिराने के लिए लडता है । और असगर वजाहत की 'ऊसर में बबूल' कहानी का 'सिडकू का पिता' प्रेमचन्द के घीसू-माधव की याद दिलाता है ।

जाहिर है कि अस्सियोत्तर कहानियों में प्रमुखतः दो शैली की सँवेदनाएँ मौजूद है-एक सहानुभूति की दूसरी विद्रोह की । एक जीवन संघर्षों पर ज़ोर देती है तो दूसरी उससे उबरने की संभावनाओं पर अतः प्रतिक्रिया पर ज़ोर देती है । दोनों परस्पर पूरक हैं । दलित तथा नारी केन्द्रित कहानियों में ज्यादातर मेहनतकश अवाम का विद्रोहात्मक तेवर चित्रित है । वर्गपरक शोषण पर तथा वृदध्जन, शिक्षित युवाजन, बालजन समस्याओं पर केन्द्रित कहानियाँ ज्यादातर जीने की लडाइयों को वाणी देती हैं ।

अस्सियोत्तर प्रारंभिक दौर की कहानियाँ जितनी सक्रिय हैं उतनी शेष की नहीं। अन्तिम दौर तक आते आते विद्रोह का अन्दाज़ बदल जाता है। स्वयं प्रकाश की 'अविनाश मोटू उर्फ आम आदमी' के अविनाश मोटू को दलाली का पैसा नहीं पचता है, पर वह दूसरों का लेना मना नहीं करता। उदयप्रकाश की 'और अंत में प्रार्थना' के डॉ दिनेश मनोहर वाकणकर स्वयं गद्दारी नहीं कर सकता पर दूसरों को करने दे सकता है। स्वयं प्रकाश की 'बाबूलाल तेली की नाक' कहानी का बाबूलाल समाज में उपहास बनकर जीना अपनी नियति मानता है। अपने साथ कम अन्याय होने के वास्ते वह खुशी मनाता है। ये कहानियाँ ऐसी समवेदना देती है मानो मौजूदा माहौल वैयक्तिक आदर्शों का हो।

दलित कहानियों को छोडकर बहुत विरले ही कहानियाँ संगठित मोर्चे पर उम्मीद रखती हैं। लेकिन कहीं कहीं दलित कहानियाँ भी अपना अलग समाज गठाने की संवेदना प्रस्तुत करती है जैसे मोहनदास नैमिशराय का 'अपना गाँव'। लेकिन उधर भी दलित समाज से अलग होते दलित ब्राह्मणों के चित्रण अनेक हैं। ओम प्रकाश वत्मीकी की 'सलाम' कहानी में जातिगत विभाजन के भीतर साँप्रदायिक विभाजन की समस्या चित्रित है। अन्य कहानियाँ ज्यादातर फुट्कल वैयक्तिक प्रतिरोधों को प्रश्रय देती है जो चिंतनीय है।

संक्षेप में मेहनतकश अवाम के प्रति प्रतिबद्ध साहित्यकारों की एक परम्परा कहानी जगत में मौजूद है जिन्होंने परिवर्तन को सूक्ष्मता से महसूसकर उन्हें अवाम के हित में कहानियों में उतारे हैं। ऐसे पात्रों को प्रस्तुत किया है, जो अवाम के साथ सीधा सम्बन्ध रख पाते हैं। अभिव्यक्ति के अन्दाज़ चाहे अलग अलग हो, मूल संवेदना एक है-मेहनतकश अवाम एवं उनके जीवन के संघर्ष। अतः वर्गगत, जातिगत, लिंगगत विभाजनों से परे मेहनतकश अवाम का बुनियादी संघर्ष आखिर जीने के लिये है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ सूची

1. अमरकांत की कहानियाँ — अमर कृतित्व
सी-862,गुरु मृतंग बहादूर नगर
इलाहाबाद,(यु.पि), 1998

2.आदि-अनादि-1 — चित्रा मुदगल
सामयिक प्रकाशन
जटवाडा, नेतजी सुभाष मार्ग,दरियागंज
नई दिल्ली-110002, 1998

3.आदि-अनादि-2 — चित्रा मुदगल
सामयिक प्रकाशन
जटवाडा, नेतजी सुभाष मार्ग,दरियागंज
नई दिल्ली-110002, 1998

4.आदि-अनादि-3 — चित्रा मुदगल
सामयिक प्रकाशन
जटवाडा, नेतजी सुभाष मार्ग,दरियागंज
नई दिल्ली-110002, 1998

5.आधी सदी का सफर्नामा — स्वयं प्रकाश
यात्रा बुक्स 203 आशादीप,9 हेली रोड,
नई दिल्ली-110001

6.इतिकथा अथकथा — महेश कटारे
साहित्यवाणी
28, पुराना अल्लपुर
इलाहाबाद-299006, 1989

7.उनका डर तथा अन्य कहानियाँ — असगर वजाहत
शिल्पायन, 10295,लेन नं.1,
वेस्ट गोरखा पार्क, शहादरा,
दिल्ली-1100032, 2004

8.और अंत में प्रार्थना — उदय प्रकाश
राधाकृष्ण प्रकाशन प्र. लि
2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002, 1998

9.कथांतर — (सं) डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, डॉ. गिरीश रस्तोगी
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1.बी
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई
दिल्ली-110002

10.कर्फ्यू तथा अन्य कहानियाँ — नमिता सिंह
शिल्पायन, 10295, लेन.नं.1
वेस्ट गोरखा पार्क, शहादरा,
दिल्ली-1100032

11.केशर कस्तूरी — शिवमूर्ति
राधाकृष्ण प्रकाशन प्र. लि
2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002,

12.ग्राम्य जीवन की कहानियाँ — सं.गिरिराज शरण
प्रभात प्रकाशन, चावडी बाज़ार
दिल्ली-110006,1986

13.चर्चित कहानियाँ — पंकज बिष्ट
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

14. तिरिछ — उदय प्रकाश
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002,1989

15.दस प्रतिनिधि कहानियाँ — भीष्म साहनी
किताबघर प्रकाशन,
4855-56/24, अंसारी रॉड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002, 2005

16. दस प्रतिनिधि कहानियाँ — मिथिलेश्वर
किताबघर प्रकाशन,
4855-56/24, अंसारी रॉड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002, 2006

17. दस प्रतिनिधि कहानियाँ — भीष्म साहनी
किताबघर प्रकाशन,
4855-56/24, अंसारी रॉड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002, 2006

18. दूसरी औरत की कहानियाँ — सं. चित्रा मुदगल
प्रभात प्रकाशन, चावडी बाज़ार
दिल्ली-110006,1986

19. नवें दशक की कथायात्रा — सं.धर्मेन्द्र गुप्त
सहित्य सहकार 29/62-बी,गली नं. 11,
विश्वास नगर, दिल्ली-110032, 1998

20. नारी उद्पीडन की कहानियाँ — सं.गिरिराज शरण
प्रभात प्रकाशन, चावडी बाज़ार
दिल्ली-110006,1986

21.नौकरी पेशा नारी कहानी के आईने में — सं. पुष्पपाल सिंह
सामयिक प्रकाशन,
जटवाडा, नेतजी सुभाष मार्ग,दरियागंज
नई दिल्ली-110002, 1984

22.पॉल गोमरा का स्कूटर् — उदय प्रकाश
राधाकृष्ण प्रकाशन प्र. लि
2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

23.प्रतिनिधि कहानियाँ — मोहन राकेश्
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1.बी
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई
दिल्ली-110002

24.फणीश्वरनाथ रेण-चुनी हुई रचनाएँ	सं.भारत यायावर वाणी प्रकाशन,21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002,1990
25.मानसरोवर	प्रेमचन्द सरस्वती प्रेस्स, इलाहाबाद, वाराणसी, दिल्ली
26.यशपाल की संपूर्ण कहानियाँ	यशपाल लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-1, 1993
27.रेत में उगे गुलाब	सं.महेन्द्र शर्मा संजीव प्रकाशन नई दिल्ली, 3613, दरियागंज-110002' 1990
28.विद्रोह की कहानियाँ	सं.गिरिराज शरण प्रभात प्रकाशन, चावडी बाज़ार दिल्ली-110006,1986
29.व्यवस्था विरोधी कहानियाँ	सं.नरेन्द्र मोहन और बदीउज्जमाँ ज्ञानगंगा, 205-सी, चावडी बाज़ार, दिल्ली, 110006,1995
30.रैन बसेरा	अब्दुल बिस्मिल्लाह वाणी प्रकाशन,21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002,1989
31.शहादतनामा	जितेन्द्र भाटिया पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वास नगर' शहादरा, दिल्ली-32
32.सच तो यह है	उषा महाजन कल्याणी शिक्षा परिषद3320-21 जटवाडा, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, 2004

33.समकालीन हिन्दी कहानियाँ — सं.ऋषिकेन, राकेश रेनु
परिभाषा प्रकाशन, धर्म भवन
शंकर चौक, हुमरा,
सीतामठी,843301,
1992

34.सलाम — ओम प्रकाश वाल्मीकि
राधाकृष्ण प्रकाशन प्र. लि
जी-7,जगतपुरि,दिल्ली-
110031,2000

35.सिद्धार्थ का लौटना — जितेन्द्र भाटिया
आधार प्रकाशन प्र.लि
एस.सी.एफ.267,सेक्टेर 16
पंचकूला-134113 (हरियाना)

36.संगति-विसंगति — चित्रा मुदगल
नेशनल पब्लिषिंग हाउस
2/35, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002, 2008

37.संजीव की कथायात्रा : पहला पडाव — संजीव
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002,2008

38. संजीव की कथायात्रा : दूसरा पडाव — संजीव
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002,2008

39. संजीव की कथायात्रा : तीसरा पडाव — संजीव
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002,
2008

40. हरी बिन्दी
मृदुला गर्ग
सामयिक प्रकाशन,
जटवाडा, नेतजी सुभाष मार्ग,दरियागंज
नई दिल्ली-110002, 2006

41.23 हिन्दी कहानियाँ
सं. जैनेन्द्र कुमार
लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा
गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-1

आलोचनात्मक ग्रंथ सूची

42.अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य
मीरा गौतम
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002,

43. आधुनिकता के आईने में दलित
सं.अभयकुमार दुबे
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002,
2008

44. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ
नामवर सिंह
लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा
गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-1,

45. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास
डॉ. बच्चन सिंह
लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा
गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-1,1986

46. औरत कल, आज और कल
आशाराणी व्होरा
कल्याणी शिक्षा परिषद3320-21
जटवाडा, दरियागंज, नई दिल्ली-
110002, 2005

47इतिहास और वर्ग चेतना
ग्यार्ग लूकाज़
प्रकाशन संस्थान 4715/21
दयानन्द मार्ग, दरियागंज,नई दिल्ली
110002

48.उदारीकरण की राजनीति	राजकिशोर वाणी प्रकाशन,21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1998
49. कथा साहित्य के सौ बरस्	विभूति नारायण राय शिल्पायन, 10295, लेन.नं.1 वेस्ट गोरखा पार्क, शहादरा, दिल्ली-1100032
50. कहानी के नये प्रतिमान्	कुमार कृष्ण वाणी प्रकाशन,21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002,
51. कहानी समकालीन चुनौतियाँ	शंभु गुप्त वाणी प्रकाशन,21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2009
52. किसान आंदोलन दशा और दिशा	किशन पटनायक राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1.बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
53. किसान की गरीबी का राज़	ब्रह्मदेव शर्मा प्रकाशन संस्थान 4715/21 दयानन्द मार्ग, दरियागंज,नई दिल्ली 110002
54. जनवादी कहानी-पूर्व पीढी से पुनर्विचार तक	रमेश उपाध्याय वाणी प्रकाशन,21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2000

55. जीना है तो लडना है	वृन्दा कारात सामयिक प्रकाशन, जटवाडा, नेतजी सुभाष मार्ग,दरियागंज नई दिल्ली-110002, 2007
56. जीवन की तनी डोर ये औरतें	नीलम कुलश्रेष्ठ मेधा बुक, एक्स-11, नवीन शहादरा, दिल्ली-110032, 2005
57. दलित साहित्य उद्देश्य और वैचारिकता	बाबुराव बागुल
58. नयी कहानी की भूमिका	कमलेश्वर शब्दकार 2203, गली डकौतान तुर्कमान गेट, दिल्ली-110006, 1978
59. नयी कहानी पुनर्विचार्	मधुरेश नेशनल पब्लिषिंग हाउस 2/35, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2008
60. नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति	सं. डॉ.देवीशंकर अवस्थी राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1.बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
61. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास्	गीता सोलंकी भारत पुस्तक भंडार, 343-ई, सोनिया विहार, दिल्ली 110094 2007
62. नारीवादी विमर्श	राकेश कुमार् आधार प्रकाशन प्र.लि एस.सी.एफ.267,सेक्टेर 16 पंचकूला-134113 (हरियाना)

63. निम्न वर्गीय प्रसंग-1 — सं. शाहीद अमीन, ज्ञानेन्द्र पाण्डे
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1.बी
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई
दिल्ली-110002,1995

64. बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ् — प्रभा खेतान
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

65. भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ — सच्चिदानन्द सिन्हा
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

66. मनुस्मृति — पी. टी. हरगोविंद शास्त्री
चौखंबा संस्कृत सीरीज़ ऑफीस
पॉस्ट बॉक्स नं. 1007
के. 37/99, गोपाल मन्दिर लेन,
गोल घर के पास, वाराणसी

67. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य — रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

68.वैश्वीकरण या पुनःऔपनिवेशीकरण् — नीरजा जैन
गार्गी प्रकाशन 127, न्यू आवाज़ विकास
कॉलनी, सहारनपूर-2470001, 2004

69. सदी के प्रश्न — जितेन्द्र भाटिया
भारतीय ज्ञानपीठ, इंस्टिट्यूशन अरिय,
लोदी रोड, नई दिल्ली-110003,2004

70. समकालीन कहानी का समाजशास्त्र — देवेन्द्र चौबे
प्रकाशन संस्थान 4715/21
दयानन्द मार्ग, दरियागंज,नई
दिल्ली110002

71. समकालीन कहानी की पहचान	डॉ. नरेन्द्र मोहन प्रवीण प्रकाशन महरौली, नई दिल्ली-110030, 1987
72. समांतर कहानी में यथार्थ बोध	रेखा वसंत पाटील जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, (यु. पी), 2811001
73.समकालीन कहानी समांतर कहानी	डॉ. विनय दि माक्मिलन कंपनी ओफ इन्दिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1977
74. समकालीन महिला लेखन्	डॉ. ओम प्रकाश शर्मा पूजा प्रकाशन 1-7,विजय चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092, 2002
75. समकालीन विचारधाराएँ और साहित्य	डॉ. राजेन्द्र मिश्र तक्षशिला प्रकाशन, 23/4761, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
76. समकालीन साहित्य चिंतन	सं. डॉ. राम दरश मिश्र, डॉ. महीप सिंह, प्रभात प्रकाशन, चावडी बाज़ार दिल्ली-110006
77. समकालीन हिन्दी कविता में आम आदमी शोपिंग	मृदुल जोशी क्लैसिकल पब्लिशिंग कंपनी 28, सेंटर, कर्मपुरा, नई दिल्ली, 110015, 2001
78. समकालीन हिन्दी कहानी आम आदमी के सन्दर्भ में	मीनाक्षी पाहवा के. के पब्लिकेशंस, 109, 4853/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002

79. समकालीन हिन्दी कहानी — बलराम
दिनमान प्रकाशन 3014,
चर्खेवालान, दिल्ली-110006,2004

80. समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास् — डॉ. अशोक भाटिया
भावना प्रकाशन 109-ए, पडपडगंज,
दिल्ली, 110091, 2003

81. साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी — डॉ. सौमंगल सुमन कप्पीकेरे
विकास प्रकाशन, 311-सी, कानपूर-208027, 2002

82. साहित्यिक निबन्ध — डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त,
लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा
गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-1,

83. संस्कृति के चार अध्याय — राम्धारी सिंह् दिनकर
लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा
गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-1,

84. स्त्री अस्मिता- साहित्य और विचारधारा — जगदीश चतुर्वेदी, सुधासिंह
आनन्द प्रकाशन 176-178,
रवीन्द्र सरणी, कोल्कत्ता

85. स्त्री उपेक्षिता — सिमोन द बोअर, प्रभा खेतान
सरस्वती विहार जी. टी रोड,
शहादरा, दिलशाद गार्डेन,दिल्ली-110095

86. स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने — रमणिका गुप्ता
शिल्पायन, 10295,लेन नं.1,
वेस्ट गोरखा पार्क, शहादरा,
दिल्ली-1100032,

87. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास् — डो.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
राजपाल एंड सण्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली
1996

88. हिन्दी आलोचना के वैचारिक सारोकार — डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

89. हिन्दी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति — वीणा यादव
अकादमिक प्रतिभा 42,एकता
अपार्ट्मेंट, गीता कॉलनी, दिल्ली-
110031

90. हिन्दी कथासाहित्य का इतिहास — डॉ. हेतु भरद्वाज
पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलनी,
चौडा रास्ता, जैपूर-302003,2005

91. हिन्दी कहानी का विकास् — मधुरेश
सुमित प्रकाशन, बी-43, गोविन्दपुर,
इलाहाबाद, 2000

92. हिन्दी कहानी परंपरा और प्रगती — डॉ.हृदयपाल
वाणी प्रकाशन,21-ए,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

93. हिन्दी कहानी समकालीन परिदृश्य — डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (यु.पी)
281001, 2005

94. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास् — हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1.बी
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई
दिल्ली-110002

95. हिन्दी साहित्य का इतिहास् — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा,
वाराणसी

96. हिन्दी साहित्य का इतिहास् — सं. डॉ नगेन्द्र
मयूर पेपेर बेग्स, ए-94, सेक्टेर नं.4,
नोएडा-201331

97. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास् — लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा
गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-1

98. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास — लक्ष्मी नारायण अग्रवाल
अनुपम प्लासा-1,ब्लॉक नं.40,
संजय प्लेस, अगरा-282002

अंग्रेज़ी सन्दर्भ ग्रंथ सूची

99. Dilectical materialism — Maurice Cornfort
National book agency P.L
12. Brooklin chaterjee street
Culcutta

100. Historical materialism — Zoyaa ferbeshkinaa, Ludmilaa
Yokovleva,Dmitri Zerkin
Progress Publishers, Moscow

101.Indias Foreign Policy Since Independence — V. P. Dutt
National book trust, India
A-5, Green Park,NewDelhi-
110016, 2007

102. Women Farmers of India — Maithreyi Krishnaraaja,
Areenaa Kunji
National book Trust

मलयालम सन्दर्भ ग्रंथ सूची

103. India Charitrathile Avismaraneeya Sanbhavangal — Dr.Radhika. C.Nair
D.C. books, kottayam,

104. Gatum Kanacharadukalum — M.P.Veerendra Kumar
Matrubhoomi Books,Kalicut

105. Bharateeyata	Sukumar Azheekode D.C.Books, Kottayam 686001
106. marksisathinte Adistana Thatvangal	Prof.P.V.K.Kurup Kairali Books P.L, Talikkavu Road Kannur
107.Marks, Engels,Marksism	Lenin Progress Publications Kalicut-4
108. Marks Engels Thiranjedutha Kritikal Volume-1&2	Prabhat book hause thiruvanantapuram
109. Nalloru Varalchaye Ellavarum Ishtappedunnu	P. Sainath Mathrubhoomi Books Kalicut
110. Lokavyapara sangadhanayum Oorakkudukkukalum	M.P.Veerendra Kumar P.A.Vasudevan Mathrubhoomi Books Kozhikode
111. Stree Vimochanam : Charithram Siddhantam Sameepanam	Nayana Books, Payyannoor, kerala

पत्र पत्रिकाएँ

1.कथन	अप्रैल-जुन-	2006
2. कथाक्रम	जंवरी-मार्च-	2007
3.कथाक्रम	अप्रैल-मई	2007
4. कथादेश	अप्रैल्	2007
5. दलित साहित्य		2002

6. दलित साहित्य		2004
7. चिंतन सृजन	अक्तूबर-दिसंबर	2006
8. दस्तावेज़	70	
9. दस्तावेज़	71	
10. दस्तावेज़	76	
11. मधुमति	अप्रैल-मई	2003
12. मधुमति	अप्रैल-मई	2004
13. वर्तमान साहित्य	जनुवरी	2007
14. वर्तमान साहित्य	फरवरी	2007
15. वर्तमान साहित्य	मार्च्	2007
16. वर्तमान साहित्य	जुन	2007
17. वर्तमान साहित्य	सितंबर्	2007
18. वर्तमान साहित्य	जनुवरी	2008
19. वर्तमान साहित्य	मार्च्	2008
20. वर्तमान साहित्य	आगस्त्	2008
21. वर्तमान साहित्य	जनुवरी	2009
22. वर्तमान साहित्य	मार्च	2009
23. वर्तमान साहित्य	अप्रैल	2009
24. वर्तमान साहित्य	मई	2009
25. वर्तमान साहित्य	जुलाई	2009
26. वर्तमान साहित्य	मार्च	2009
27 वर्तमान साहित्य	अप्रैल्	2009
28. वर्तमान साहित्य	आगस्त्	2010
29. वसुधा	58, जुलाई	2003

30. वसुधा	59-60 अक्तूबर्	2003
31. वागर्थ	फर्वरी	2002
32. विकल्प	2 जुन	1997
33. विकल्प	4 मार्च्	1999
34. विचार दृष्टि	अप्रैल-जुन	2007
35. साक्षात्कार	जुन-जुलाई	2005
36. सक्षात्कार	जुने-आगस्त्	2006
37. समयांतर	फर्वरी	2008
38. संबोधन	अक्तूबर	2005
39. हंस	जुलाई	1999
40. हंस	सितंबर्	2000
41. हंस	जनुवरी	2002
42. हंस	सितंबर्	2003
43. हंस	जनुवरी	2006
44. हंस	फर्वरी	2006
45. हंस	मार्च	2006
46. हंस	जुलाई	2006
47. हंस	आगस्त	2006
48. हंस	अक्तूबर	2006
49. हंस	नवंबर	2006
50. हंस	अप्रैल्	2007
51. हंस	जुन	2007
52. हंस	सितंबर	2009

अंग्रेज़ी पत्रिकाएँ

53. Front Line	November17, 2006
54. Front Line	June 1, 2007
55. Front Line	September 7, 2007
56. Front Line	March28, 2008
57. Front Line	December 4, 2009
58. Front Line	December 18, 2009
59. Front Line	April 9, 2010
60. India Today	February 19, 2007
61. India Today	June 17, 2007
62. Out Look	December 11, 2006
63. Out Look	February 12, 2007
64. Out Look	April 9, 2007
65. Out Look	November 12, 2007
66. Out Look	September 3, 2007
67. Out Look	August 4, 2008
68. Out Look	November 9, 2009
69. Out Look	December 7, 2009
70. The Week	June 24, 2007

मलयालम पत्रिकाएँ

71. Malayaalam Varika	June 1, 2007
72.. Malayaalam Varika	December 14, 2007
73. Malayaalam Varika	December 21, 2007
74. Malayaalam Varika	September 5, 2008
75. Mathrubhoomi	May 27, 2007

76. Mathrubhoomi	June 10, 2007
77. Mathrubhoomi	December 15, 2007
78. Mathrubhoomi	April 13, 2008
79. Mathrubhoomi	Februari 1, 2009
80. Mathrubhoomi	March 1, 2009
81. Madhyamam	March 23, 2009
82. Madhyamam	March 30, 2009
83. Madhyamam	June 14, 2010

****